

काव्यमाला. २१.

श्रीसातवाहनविरचिता

गाथासप्तशती ।

गङ्गाधरभट्टविरचितया टीकया समेता ।



जयपुरमहाराजाश्रितेन महामहोपाध्यायपण्डितदुर्गाप्रसादतनयेन
पण्डितकेदारनाथेन, मुम्बापुरवासिपणशीकरोपाह-
लक्ष्मणात्मजवासुदेवशर्मणा च संशोधिता ।

(द्वितीयावृत्तिः)

मुंबय्यां

तुकाराम जावजी

इत्येतैः स्वीये निर्णयसागरालयचालये मुद्रयित्वा प्रकाशिता ।

शाकः १८३३, सितानन्द १९११.

(भस्म प्रग्न्यस पुनर्मुद्रणादिमिषये सर्वेषां निर्णयसागरमुद्रायचालयाभिपते-
रेवाधिकारः)

मूल्यं सार्धं रूप्यकः ।

गाथानुक्रमणिका ।



अइ उज्जुए ण	७७७	अज्जाइ णीलकयुज्ज	७७७
अइकोवणा वि सासु	५१९३	अज्जाएँ णवण	५१९३
अइ दिअर किं ण	६७०	अणुऊल विअ वोत्तु	६१२३
अइदी हराईं बहुए	७७४	अणुणअपसा	(विण्णस्स) ३१७७
अउलीणो दोसुइ	३१५३	अणुदिअइ	(परक्कमस्स) ३१६६
अकअणुअ षणवण	६१९९	अणुमरणपत्थिआए	७१३३
अकअणुअ तुज्ज	५७४५	अणुवत्तण	(हालस्स) ३१६५
अकअइ पिआ	(इइराअस्स) ११४४	अणुहुत्तो करकसो	७१५७
अगणिअजणाववाअ	५१८४	अणुगगामपउत्पा	७१८७
अगणिअसेस	(गैतलद्धिअस्स) ११५७	अणुणण कुसुम	(अणुराअस्स) २१३९
अगपाइ छिवइ	७१३९	अणुणमहिला	(अणिइअस्स) ११४८
अग्राण तणुआरअ	(मिहरस्स) ४१४८	अणु पि किं पि	६१९
अधासण्णविवाहे	७१५५	अणुणह ण सीरइ	(अणवरथस्स) ४१४९
अच्छउ ता जणवाओ (वाहवस्स)	३११	अणुणार्णे वि होन्ति	५१७०
अच्छउ दाव मणहरं	२१६८	अणुणावराहकुविओ	५१८८
अच्छीहिं ता थइस्स (नस्सीहस्स)	४११४	अणुणासआईं	(मअरदअस्स) ११२३
अच्छेरे व णिहिं	(रामस्स) २१२५	अणुणेषु पहिअ	७१२९
अच्छोहिअवत्थ	(गुणइस्स) २१६०	अणुणो को वि	५१३०
अज्जअ गाह	(मिअन्नस्स) २१८४	अणुणोणकउवस्स	७१९९
अज्ज कइमो वि	(हालस्स) २११९	अत्ता ताह रमणिअ	(कुमारिलस्स) ११८
अज्ज गओति अज्ज	(पवरसेणस्स) ३१८	अत्थकस्सण	७१७५
अज्ज मए गतव्व	(सुवरिअस्स) ३१४९	अइसणेण पुत्तअ	(बहुरसस्स) ३१३६
अज्ज मए तेण	(कैल्लाणस्स) ११२९	अइसणेण पेम्म	(सामिअस्स) ११८१
अज्ज पि ताव एक	६१२	अइसणेण महिला	(सामिअस्स) ११८२
अज्ज मोहणसुहिअ (जण्णन्दसारस्स)	४१६०	अइच्छिणेच्छिअ	(मअरदस्स) ३१२५
अज्ज झि हासिआ	(हालस्स) ३१६४	अन्तो हुत्त उज्जइ	(णाइइपिस्स) ४१७३
अज्ज वि बालो (विधिनिगहस्स)	२११२	अधअरओरपत्त	(अणुराअस्स) ३१४०
अज्ज व्हेअ पउत्थो अज्ज (अमीअस्स)	२१९०	अपहुप्पन्त	(उअहिस्स) ५१११
अज्ज व्हेअ पउत्थो उज्जा (असरिअस्स)	११५८	अण्णच्छ दपहाविर	(पवरसेणस्स) ३१२
अज्ज सहि केण	(केसवस्स) ४१८१		

अप्यत्तपत्तभ	(मउहस्स ^१) ३।४१	अहरमहुषाण	७।६१
अप्यत्तमणुदुक्खो	(.....) २।५७	अइव गुणव्विअ	(चन्दहस्सिस्स) ३।३
अप्पाहेइ मरन्तो	७।३२	अह सम्भाविअमग्गो	(मोजअस्स) १।३२
अग्गन्तरसरसाओ	७।२३	अहसरसदन्त	(अहअस्स) ३।१००
अमअमअ	(हालस्स) १।१६	अइ सा तहिं तहिं	४।१८
अमिअ पाउअकव्व	१।२	अइ सो विलक्खहि	(हालस्स) ५।२०
अम्बक्खे भमरउळ	६।४३	अहिजाममाणिणो	(सुळोगस्स) १।१८
अम्हे उज्जुअसीला	७।६४	अहिणवपाउत्तसि	६।५५
अलिअपसुत्त	(चन्दसामिणो) १।२०	अहिलेन्ति सुर	(वसन्तस्स) ४।६६
अलिअपसुत्तव	७।४६	आअण्णाअहि	६।१४
अलिहिज्जइ पड्डअळे	७।९०	आअण्णेइ अउअणा	(महस्स) ४।६५
अवमाणिओ वि	(अवन्तिवम्मस्स) ४।२०	आअम्बन्तकबोल	२।९२
अवरउज्जमु	(माउराअस्स) ४।७६	आअम्बलोअणाण	५।७३
अवरह्मागअजामा	७।८३	आअरपणामिओठुं	(वज्जविआरस्स) १।२२
अवराहेहिं वि	(जभराअस्स) ४।५३	आअस्स किं णु	१२।८७
अवलम्बइ मा	(दुद्धस्स) ४।८६	आउच्छणविच्छाअ	५।१००
अवलम्बिअमाण	(रेवाए) १।८७	आउच्छन्ति सिरेहिं	७।८०
अवइत्थिऊण	(देवस्स) २।५८	आक्खेवआई	३।४२
अविअङ्गपेक्खणिज्जेण	(वज्जस्स) १।९३	आणत्त तेण तुमं	७।८५
अविङ्गपेच्छणिज्ज	(किरिसत्तिअस्स) १।९९	आम अस्स इ	(पालितस्स) ५।१७
अविरलपडन्तणव	५।३६	आमजरो मे मन्दो	(कालस्स) १।५१
अविहत्तसधिवन्धं	७।१३	आम बइला वण्णाली	६।७८
अविहवलक्खणवलअ	६।३९	आरम्भन्तस्स पुअ	(वज्जहस्स) १।४२
अव्वो अणुणअ	(सीहस्स) ४।६	आरुहइ गुणअ	६।३४
अव्वो दुक्कर	(सरलस्स) ३।७३	आलोअन्त दिसाओ	६।४६
असमत्तगुहअक्खे	६।३७	आलोअन्ति पुलिन्दा	(हंलिअस्स) २।१६
असमत्तमण्डणा	(कौलिराअस्स) १।२१	आवण्णार्इ कुलाइ	५।६७
असरिसचित्ते	(मण्डहिक्खस्स ^२) १।५९	आसण्णविआहदिणे	५।७९
अइ अइआआहो	(अहअस्स) ४।१	आसायेइ परिअणं	(अलकारस्स) ३।८३
अइअ लब्बा	२।२७	इअरो अणो ण	(बाहवराअस्स) ३।११
अइअ विओअत्तणुई	५।८६	इअ सिरिहाल	७।१०१

१. 'मकरन्दस्स' चे. २. 'कलिराजस्स' चे. ३. 'मुग्घदीपस्स' चे. ४. 'शा-
ल्लिवाहनस्स' चे. ५. 'हालिकस्स' चे.

ईसं जनेन्ति	(माहवसेणस्स)	४१२७	एकं धिअं स्यागुणं	६१९२
ईसामच्छररहिण्हि		६१६	एकं पहरविण्णं (पैह्हिए)	११८६
ईसाल्लओ पई	(अरिकेसरिस्स)	२१५९	एकल्लमओ दिग्गीअ	७११८
उअअ सहिउण		५१९०	एकेअभवइवेठण (अरिकेसरिणो)	३१२०
उअ ओण्हिअइ		७१४०	एकेण वि वडवी	७१४०
उअगअचंवत्थि		७१४४	एको पडुअइ यणो (हालस्स)	५१९
उअ णिचल	(बोदितस्स)	११४	एको वि कालयारो (कालसारस्स)	११२५
उअ भोम्मसाअ		११७५	एहिं वारेइ जणो (सिरिसुन्दरस्स)	७१९६
उअरि हरदिद	(पवरसेणस्स)	११६४	एसाइयिअ मोहं (मोजअस्स)	५११०
उअ सममविकित्तं		५१६१	एत्थ चउत्थं विरमइ	४११०१
उअ सिन्धवपव्वअ		७१७९	एत्थ णिमअइ	७१६७
उअह तहकोडराओ		६१६२	एत्थ मएरमिअब्बं (गुणमन्दिअस्स)	४१५८
उअह पडलन्तरो	(पालितस्स)	११६३	एइहमेत्तम्मि जए (विरिराअस्स)	४१३
उकिरप्पइ	(हालस्स)	२१२०	एइहमेत्ते गामे	६१५३
उअगरअरुसाइअ		५१८२	एसो मामि जुवाणो (मन्दसुअजस्स)	३१९४
उअभरए ण तूखइ		५१७६	एइ इमीअ णिअच्छइ	६१७९
उअसि पिआइ	(ईसाणस्स)	३१७५	एइह सो वि पउत्थो (विरिधम्मअस्स)	११७७
उअन्तमहारम्भे	(मत्तगइन्दरस्स)	४१८२	एहि ति वाहरन्तम्मि	६१३
उअइ नीससन्तो	(अणत्तस्स)	११३३	एहिपि तुमं ति (अल्लस्स)	४१८५
उअच्छो पिअइ	(भाइअस्स)	२१६१	ओसरइ धुणइ सार्हं	६१३१
उअपणत्थे वजे	(माणइन्दस्स)	३११४	ओसहिअजणो (मन्दरस्स)	४१४६
उअपहपहाविहजणो		६१३५	ओ हिअअ ओहि	५१३७
उअपाइअइव्वाणं	(पालितस्स)	३१४८	ओ हिअअ मडइ (महाएवस्स)	२१५
उअपेक्खायअ	(विसम)सेणस्स)	४१३९	ओहिदिअहागमा (पुण्णमोजअस्स)	३१६
उअकुत्तिआइ	(वच्छस्स)	२१९६	अण्डन्तेण अकण्डं	७१६३
उअमूलेन्ति व	(विजयमइणो)	२१४६	अण्डुअआ (अअलीहरस्स)	४१५२
उअावन्तेण ण होइ		६१३६	अत्थ गअं रइविम्वं	५१३५
उअावो मा दिअउ		६११४	अं तुअयणु (पालितस्स)	३१५६
उअवइइ णवतण		६१७७	अमल मुअन्त	७१४१
एएण धिअ	(अड्डिअस्स)	५१४	अमलाअरा ण (मिअअस्स)	२११०
एअअमपणिरक्खण		७११	अरमरि कीस ण	६१२७
एअअमसदेसा	(.....)	४१४२	अरिमरि अआल (अअरन्दस्स)	११५५

धुरणाहो विवध	५१४३	सैन्धवविगणा	११७७
कलहन्तरे वि	(हालस्स) ४१२१	खरपवणरभगल	६१८३
अल किर खर	(निपेटस्स) ११४६	खरसिप्पिर	(पसण्णस्स) ४१३०
कस्स करो बहु	६१७५	खाणेण थ पाणेण	७१६२
कस्स भरिसि त्ति	(सुरहिवच्छस्स) ४१८९	खिण्णस्स उरे	(अवन्तिवम्मस्स) ३१९९
कहँ णाम तीअ	(सवरसत्तिस्स) ३१६८	खिप्पइ हारो	५१२९
कहँ मे परिणइआले	६१६८	खेम कन्तो खेम	५१९९
कहँ सा गिण्व	(पण्ड्यअकुमारस्स) ३१७१	गअकलहकुम्म	(कहराअस्स) ३१५८
कहँ सा सोहग्गयुण	५१५२	गअगण्डरथल	(गन्धराअस्स) २१२१
कहँ सो ण	(सङ्करस्स) ५११३	गअवहुवेहव्वअरो	७१३०
कह तपि सु इण	(सेहणाअस्स) ७१९७	गज्ज मह विअ	६१६६
कारिममाणन्दवड	५१५७	गन्ध अग्घाअन्तअ	६१६५
कि किं दे	(गअसिंहस्स) १११५	गन्धेण अप्पणो	(विअहस्स) ३१८१
किं ण भणिओ तिं	(महुराहस्स) ४१७०	गम्मिहिस्सि तस्स	७१७
किं दाव कभा	(रिवाए) ११९०	गहजजुहाउलि	४१८३
कि भणइ म सहीओ	७११७	गहवइ गओ	(विअङ्कइन्दस्स) ३१९७
किं वअत्ति	(महिन्दस्स) ११९	गहवइणा	(सचसामिणो) २१७२
किं ववत्ति किं अ	६११६	गहवइसुओ	(हालस्स) ४१५९
कीरन्ती विवअ	(सरस्स) ३१७२	गामगुणिअडि	६१५६
कीरमुहसच्छ	(सूरणस्स) ४१८	गामगिधरम्मि अत्ता	५१६९
कुसुममभा वि	(हालस्स) ४१२६	गामणिणो सग्घासु	५१४९
के उव्वरिआ के	५१७४	गामतरणीओ	६१४५
केण मणे भग्ग	(मिअहस्स) २१११	गामवडस्स	(खण्डस्स) ३१९५
केत्तिअमेत्तं होहिइ	६१८१	गिअन्ते मज्जल	७१४२
केलीअ वि रुत्ते	(पावच्छीस्स) २१९५	गिअो दवगिग	(वैद्दावहीए) ११७०
केसररअ	४१८७	निरसोत्तो त्ति	६१५१
कैअवरहिअ	(गमस्स) २१२४	गेअच्छडेण	(अहअस्स) ४१३४
कोरथ जअम्मि	(विलासस्स) ४१६४	गेअह पलोअह	(हरितउस्स) २११००
कोसम्मफिसल	(गजस्स) १११९	गेह व वित्ताइहिअ	७१९
खणभङ्गरेण येम्मेण	५१२३	गोतक्खलण सोऊण	५१९६
खणमेत्तं पि ण	(हालस्स) २१८३	गोलाअडिअ	(अविअकणस्स) २१७

१. 'लम्पस्स' चे. २. 'विनवायितस्स' चे. ३. 'अनुरागस्स' चे. ४. 'अलि-
कस्स' चे.

गोलाणइए	(गरवाहणस्स) २।७१	ज ज पुलएमि दिव	६।३०
गोलायिसमो	२।९३	ज जं सो णिज्जा (वैसन्तभस्स)	१।७३
घरिणिघणत्थण	(इविद्धभस्स) ३।६१	ज तणुआमइ सा	७।११
घरिणीए	(हालस्स) १।१३	जन्तिअ गुल	६।५४
घेत्तूण चुण्ण	(कान्तफरस्स) ^१ ४।१२	ज तुज्ज सई (अणुलच्छीए)	३।२८
घमुपुडाइअवि	७।६६	जम्मन्तरे वि चलणं	५।४१
चत्तरघरिणी	(मैहिलस्स) १।३६	जस्स जइ विअ (अद्धराभस्स)	३।३४
चन्दमुद्धि	(गग्गराभस्स) ३।५२	जइ विन्तेइ परि	७।२८
चन्दसरिस	(वाहवराभस्स) ३।१३	जइ जइ उण्वहइ (... ..)	३।९२
चलणोआसणि	(भमरस्स) २।८	जइ जइ जरा (पोटिसस्स)	३।९३
चावो सहावसरल	५।२४	जइ जइ वाएइ (ससिप्पहाए)	४।४
चिक्किपल्लसुत्त	(सुलोहस्स) ४।२४	जाएज यणुदेशे (असमसाहस्स)	३।३०
चित्ताणिअइ	(वैण्डहिक्कम ^२) १।६०	जाओ सो वि (चन्दस्स)	४।५१
चिरहिं पि अ	(पावच्छीलस्स) २।९१	जाणइ जाणावेउं (गौमउज्जस्स)	१।८८
चोराणें कामुआणें	७।९८	जाणि वअणाणि	७।४९
चोर सभअसत्तणइ	६।७६	जारमसज्जणसमुच्चव (हालस्स)	५।८
चोरिअरअसद्धाणइ (यम्हअन्तरस्स)	५।१५	जाव ण कोसवि	५।४४
छजइ पडुस्स	(सुन्दरस्स) ३।४३	जिविअ असानअ (हालस्स)	३।४७
छिज्जन्तेहिं	(माणिकराभस्स) ४।४७	जिविअसेसाइ (अवशाहस्स)	२।४९
जइ कोसिओ	७।७२	जीहाइ कुणन्ति	६।४१
जइ चिक्कल	(वैदुराभस्स ^३) १।६७	जुज्जचवेडामोडि	७।८४
जइ जूरइ जूरउ	७।८	जे,जे गुणिणो	७।७१
जइ ण छिवसि	५।८१	जेण विणा (रोहाएँ)	२।६३
जइ भमसि भमसु	५।४७	जे णीलभमर	५।२२
जइ लोकणिन्दिअ	५।८०	जेत्तिअमेत्त (मुदसीलस्स)	१।७१
जइ सो ण वल्लहो (सुसीलस्स)	४।४३	जेत्तिअमेत्ता (पालितस्स)	४।९३
जइ होसि ण (मुद्धराभस्स)	१।६५	जे सँमुहागअ (वाहवराभस्स)	३।१०
जं जं आलिहइ	७।५६	जो कह वि (वैलाइचस्स)	२।४४
जं जं करेति ज जं (कलणसीहस्स)	४।७८	जो अस्स विहव (वाहवराभस्स)	३।१२
ज ज से ण मुहाअइ	७।१५	जो तीए अहर (दामोअरस्स)	२।६
ज ज पिहुल (कुलउत्तस्स)	४।९	जो वि ण जाणइ	५।३८

१. 'मत्तोअय' चे. २. 'मुग्घदीपस्स' चे. ३. 'धीरस्स' चे. ४. 'वसलक्कस्स' चे. ५. 'आमकूटस्स' चे. ६. 'वल्लईपितस्स' चे.

ओ सीसग्नि	४१४२	भिभववधारोवि	५१४२
शञ्ज्ञावाउत्तिपिअघर (जअसेणस्स)	२१७०	मिक्कण्ड दुरारोह	५१६८
शञ्ज्ञावाउत्तिपि (राअहत्थिणो)	४१५५	मिक्कमाहि	(पुण्डरीअस्स) २१६९
ठाणम्मट्ठा परि	७१५२	मिक्किव जाआ	(हीरिआल्हस्स) ११३०
उज्जसि उज्जसु	(हालस्स) ५११	मिद् उहन्ति कहिअ	(देवएवस्स) ५११८
ण अ दिहिं नेइ	७१४५	मिहामत्तो	(हालस्स) ४१७४
णअणम्मन्तर	(हालस्स) ४१७१	मिहालस	(हालस्स) २१४८
णइअरस	(पैवणराअस्स) ११४५	मिप्पच्छिमाइ	(तिरिवलस्स) २१४
ण कुणन्तो विअ	(अद्वराअस्स) ११२६	मिप्पण्णसस्सरि	७१८९
णक्खक्खुडिअ	(महाराअस्स) ४१३१	मिच्चुत्तरआ	(सहुणकलसस्स) २१५५
ण गुणेण	(समरिणसस्स) ४१३०	मिच्चुअणसिप्प	६१८९
णक्खणसलाहणणि	(गुवरस्स ?) २११४	मीआई अअ	(धणजअस्स) ४१२८
ण छिवइ हत्थेण	६१३२	मीलपडपाउअग्गी	६१२०
णन्दन्तु सुरअमुइ	(हालस्स) २१५६	मीलामुक्कम्पिअ	(रोएवस्स) ४१६१
ण सुअन्ति	(हालस्स) २१४७	मूण हिअअ	(महाएवस्स) ४१३७
णलणीसु ममसि	७११९	मूमेन्ति ये पदुत्त	(मौधवीए) ११९१
णवक्कम्पिण	७१९२	मेउरकोटि	(अणजस्स) २१८८
णवपण्व विसण्णा	६१८५	मोहलिअयण्णो	(मअरन्दसेनस्स) ११६
णवल अपहरं	(पेणामस्स) ११२८	तइआ कअग्घ	(माअजस्स) ११९२
णववहुपेम्म	(कणउत्तस्स) २१२२	तइ बोलन्ते	(हालस्स) ३१२३
ण विणा सम्मावेण	(भोजअस्स) ३१८६	तइ सुइअ	(मणोरहस्स) ४१३८
ण वि तइ अइ गरुण	५१८३	तइविणिहिअग्ग	(हालस्स) ४१९१
ण वि तइ अणालवन्ती	६१६४	तइअठिअ	(माणस्स) ११२
ण वि तइ छेअ	(अणुलच्छीए) ३१७४	तणुण वि	(भाउलस्स) ४१६२
ण वि तइ पडम	(भाणुसत्तिणो) ३१९	तं नमह जस्स	(गिर्लससस्स) २१५१
णै वि तइ विएस	११७६	तत्तो चिअ होन्ति	७१४८
णाअ व सा कवोळे	(सौमिअस्स) ११९६	तं मितं काअय्वं	(पालितस्स) ३११७
णाह दई ण	(अमुलद्धीए) २१७८	तम्मिरपसरिअहु	६१८८
णिअअणुमाण	(केल्यसस्स) ४१४५	तस्स अ सोइग्ग	(मअरदअस्स) २१३१
णिअअणिअ	६१८२	तस्स कहावण्डइए	७१५९

१. 'प्रवरराजस्स' वे. २. 'गुरस्स (१)' वे. ३. 'प्राणामस्स' वे. ४. 'भीमवि-
क्रमस्स' वे. ५. 'स्विरसाइसस्स' वे. ६. 'शालिजस्स' वे. ७. 'गजरेवस्स' घ.
८. 'कलहस्स' वे.

तह तस्स माण	(हालस्स) ५१३१	दइअकरग्गहल्लिओ	६१४४
तह तेणवि सा	७१२५	दक्खिण्णोण वि (आइवराइस्स)	११८५
तह परिमलिआ	७१३७	दहूण उण्णमन्ते	६१३८
तह माणो	(साळिअस्स) २१२९	दहूण तरुणसुरअ	६१४७
तह सोण्हाइ	(सुन्दअस्स) ३१५४	दहूण रुन्दतुण्ड	(विग्गहरस्स) ५१२
ता किं करेउ	(वम्हआरिणो) ३१२१	दहूण हरिअदीह	७१९३
ता मज्झिमो विअ	(हालस्स) ३१२४	दडरोस	(अवन्तिवम्मस्स) ४११९
ता दण्णं जा	(विरसत्तिस्स) २१४१	दरफुडिअ	(वम्हदाअस्स) ११६२
तात्तरममा	(अवटस्स) ११३७	दरपेयिरोहज्जुअलासु	७११४
तावधिअ रइ	(पुसोहेस्स) ११५	दिअरस्स	(हालस्स) ११३५
तावमवणेइ	(हरिउद्धस्स) ३१८८	दिअहं सुउक्किआ	(विच्छमस्स) ३१२६
ताविज्जन्ति	(पवाराअस्स) ११७	दिअहे दिअहे	७१९१
तामुहअयिलम्भ	७१२	दिहा वुआ	(केन्तकसुरस्स) ११९७
तीअ मुदाहिं	(हालस्स) २१७९	दिदमण्णु	(मोत्ताइलस्स) ११७४
तुज्जाणं विसैस	५१२७	दिदमूलवन्ध	(अणुलच्छीए) ३१७६
तुहो धिअ	(माउराअस्स) ३१८४	दीसइ ण वूअ	६१४२
तुज्जाअराअ	३१८९	दीसन्तो णअणसुहो (राअरसिअस्स)	५१२१
तुज्ज यखइ	(सुरस्स) ११४०	दीसन्तो दिदिमुहो	७१९१
तुप्पाणणा	(अलक्कस्स) ३१८९	दीसलि पिआणि	५१८९
तुद दंसणेण जणिओ	७११०	दीहुहपउर	२१८५
तुद दंसणे सअइ	६१५	दुक्खं देन्तो (विरिउत्तिअस्स)	१११००
तुद मुइसारिच्छ	(राहइध्मिणो) ३१७	दुक्खेहिं लम्मइ	४१५
तुद विरहुआगरओ	५१८७	दुग्गअकुट्टम्भ	(तिरिपम्मअस्स) १११८
तुद विरहे	(अणत्तस्स) ११३४	दुग्गअपरमि	५१७२
ते अ जुआणा ता	६११७	दुग्गिअखेअ	(साहिअस्स) २१५४
तेण ण मरामि	४१७५	दुम्मेन्ति देन्ति	(वसन्तवम्मस्स) ४१२५
ते विरला सण्णु	(इन्दस्स) २११३	दुस्सिअिसअरअ	७१२७
ते बोळिआ	(निदवमस्स) ३१३२	इइ तुमं धिअ	(आइवसत्तिणो) २१८१
अणजइणणिअ	(सअसेणस्स) ३१३३	इअन्तरिए वि पिए	७१५८
ओअ पि ण	(इअरमिवसस्स) ११४९	देव्वमि पराहुते	(अन्धस्स) ३१४५
ओरेसुएहिं दण्णं	६१२८	देव्वाअत्तमि	(मीवएवस्स) ३१७९

१. 'त्रिलोक्य' घे. २. 'मुद्रस्' घे. ३. 'श्रमिवत्सलस्' घे. ४. 'स्थिरा-
दयस्' घे. ५. 'पउलिन्यस्' घे.

दे सुभणु पसिञ	५१६६	परिमलणमुहा	५१२८
दोअहुलअकवाल	५१२०	परिरद्धकणअ	४१९८
धण्णा सा मदि (मलअसेहरस्स)	४१९७	पसिहूएण	(विक्रमराअस्स) २१३४
धण्णा बहिरा	५१९५	पसिअ पिए	(कुविन्दस्स) ४१८४
धण्णा वसन्ति	५१३५	पसुवदणो	(हालस्स) १११
धरिओ धरिओ (माणस्स)	२११	पहरवणमग्ग	(अहराअस्स) ११३१
धवलो जिअइ	५१३८	पहियवहु विवरन्तर	६१४०
धवलो सि अइ	५१६५	पहिउलूरण	(अहराअस्स) २१६६
धाराधुवन्तमुहा	६१६३	पाअडिअ सोहग्गं	५१६०
धावइ पुरओ पासेसु	५१५६	पाअडिअणेह	(मणिराअस्स) २१९९
धावइ पिअलिअ (माऊराअस्स)	३१९१	पाअपडणार्णे सुदे	५१६५
धीरावलम्बिरीअ (वाहवस्स)	४१६७	पाअपडिअं	(हालस्स) ४१९०
धुअइ व्व (विसमराअस्स)	३१८०	पाअपडिअस्स	(दुग्गसाभिणो) ११११
धूलिमहलो वि	६१२६	पाअपडिओ ण	५१२२
पइपुरओ विअ (माअसेणस्स)	३१३७	पाणउडीअ वि	(हालस्स) ३१३७
पउरजुवणो (हालस्स)	२१९७	पाणिग्गहणे	(अणुराअस्स) ११६९
पहमइलेण छीरेक्क	६१६७	पासासथी	(भोजअस्स) ३१५
पच्चग्गप्पुल्ल	६१९०	पिअदसण	(वसन्तसेणस्स) ४१२३
पच्चसमकहावलि	५१४	पिअसभरण	(बन्धुआरिणो) ३१२३
पच्चसागअ रजित	५१५३	पिअविरहो	(वैसुआरिणो) ११२४
पअरसारि अत्ता ण	६१५२	पुच्छिअन्ती ण	५१४७
पडिवक्ख (उद्धवस्स)	३१६०	पिअइ कण्णअ	५१७६
पढम वामणविहिणा	५१२५	पुट्ठि पुससु	(पण्डिणो) ४११३
पढमगिलीणमहुर	५१९५	पुणरुत्तकरप्पालण	६१४८
पणअकुविआर्णे (कुमारस्स)	११२७	पिसुणेन्ति कामिणीणं	६१५८
पण्णिअम्बप्फसा	६१५५	पुसइ खण धुवइ	५१३३
पत्तिअ ण पत्तिअन्ति (पवरसेणस्स)	३११६	पुसउ मुहं ता	५१८१
पत्तो छणो ण (कालइवस्स)	११६८	पुसिआ अण्णा	(कलसगन्धस्स) ४१२
पप्फुल्लघणकलम्बा	५१३६	पेच्छइ अलद्ध	(विअहूइन्दस्स) ३१९६
परिओसवि (जीअएवस्स)	४१४१	पेच्छन्ति अणिसिअ	(सुरहिक्कस्स) ४१८८
परिओसमुन्दराइ	५१६८	पेम्मस्स विरो	(वैम्महस्स) ११५३

१. 'कालाधिपस्य' चे. २. 'सिरिराअस्स' चे. ३. 'ब्रह्मनारिण.' चे. ४. 'मन्मथस्य' चे.

पोटपडिण्हि	(कभइसोलीस)	१।८३	मगं विअ	७।६९
पोट भरन्ति	(अलकस्त)	३।८५	मज्झइपत्तिअस्स (मज्झलकलसस्त)	४।९९
फरगुच्छण	(सूरस्त)	४।६९	मज्झे पअणुअ	७।८२
फलसपत्तीअ	(बुवलअस्त)	३।८२	मज्झो पिओ	६।९७
फलहीवाहण	(कहिलस्त)	२।६५	मण्णेआअण्णन्ता	७।४३
फालेइ अच्छमअ	(कालसीहस्त)	२।९	मण्णे आसाओ विअ	६।९३
फुहन्तेण वि	(राअवग्गस्त)	३।४	मन्द पि ण आणइ	६।१००
फुरिए वामच्छि	(सत्तिहम्मिस्त)	२।३७	मरगअसूई	(पालितस्त) ४।९४
बलिणो पाआवन्धे	(भोजअस्त)	५।६	मणिण चइम्मन्ती	५।६३
बहलतमा	(अहअस्त)	४।३५	महमइइ मलअवाओ	५।९७
बहुआइ गइ	(अइराअस्त)	३।१८	महिलाण विअ	६।८६
बहुपुफमरोणा	(माणस्त)	२।३	महिसासहस्स	(हालस्त) २।८२
बहुवज्जहार	(अल[भ]स्त)	१।७२	महिसवखन्धपि	६।६०
बहुविहविलासरसिए		५।७७	महुमच्छिआइ	७।२४
बहुसो वि	(सुरहिवसेस्त)	२।९८	महुमासमाइआ	(सालिअस्त) २।२८
बालअ तुमाइ दिण्ण	(तुज्जअस्त)	५।१९	मा पुण पडिवक्ख	(माअज्जस्त) २।५२
बालअ तुमाहि	(हालस्त)	३।१५	मा जूर दिआ	(अलस्त) ४।५४
बालअ दे वच्च सहुं		६।८७	माणदुमपरस	४।४४
भग्गपिअसग्गम		५।९१	माणुम्मत्ताइ मए	६।२२
भजन्तस्त वि	(हालस्त)	२।६७	माणोसइ व	(वाहवस्त) ३।७०
भण को ण	(महोद्विअस्त)	४।१००	मामि सरसक्खराणें	५।५०
भण्णन्तीअ	(अत्यस्त)	४।७९	मामि हिअअ	(बोलएवस्त) ३।४६
भमइ वलितइ जूरइ		५।५४	मारोसि क ण मुदे	६।४
भम धम्मिअ	(.....)	२।७५	मालइउमुमाई	५।२६
भरणमिअणील		७।६०	मालारीए वेइहल	६।९८
भरिउअरन्त	(विसेसरसीहस्त)	४।७७	मालारी ललिउ	६।९६
भरिमो से गहिआहर		१।७८	मा वच्च पुफ	(णन्दणस्त) ४।५५
भरिमो से सअण	(उच्छेउस्त)	४।६८	मा वच्च वीसम्म	७।८६
भिच्छाअरो	(ससिराअस्त)	२।६२	मामपसूअ	(कइराअस्त) ३।५९
मुज्जु ज साहीण	(सिलोअणस्त)	४।१६	मुदे अपत्तिअन्ती	७।७८
भोइणि दिण्ण पहेण		७।३	मुइपुण्णरीअछाआइ	७।२४
मअणगिगणो व्व		६।७२	मुहपेच्छओ पई	५।९८

मुहमादण	(पेटिसस्स) ११८९	वम्पडण्णा	(कण्णस्स) ११५४
मुहविउअवि	(वम्पएवस्स) ४१३३	वणदवमसि	(हालस्स) २११७
मेहमदिसस्स	६१८४	वण्णअघमलिप्पमुहिं	६१९९
रद्वेडिदिअवि	५१५५	वण्णकमरहिअस्स	७१९२
रद्विरमअमिआओ	५१५९	वण्णन्तीहिं तुह	(सहरसतिस्स) ४१५०
रफस्सेइ पुत्तभं	७१२१	वण्णवसिए विअरवसि	५१७८
रण्णाउ तण	(अवणअरस्स) ३१८७	वन्दीअ गिहअ	(हालस्स) २११८
रत्तापडण्ण	(हालस्स) २१४०	वसइ जहिं	(वित्तिराअरस्स) २१३५
रग्घणकम्ममि	(भोमत्तामिणो) १११४	वसणम्मि	(प्रणात्तस्स) ४१८०
रमिऊण पअ	(मकरन्दस्स) ११९८	वाआइ किं भमिअउ	६१७१
रसिअजण	(हालस्स) १११०१	वाउदअसिअअ	६१७
रसिअजण	(हालस्स) २११०१	वाउलिआपरि	७१२६
रसिअजण	(हालस्स) ३११०१	वाउग्घेअसिअउलि	७१५
रसिअजण	५११०१	वाएरिएण	(पालितस्स) २१७६
रसिअजण	६११०१	वावारविसंवाअ	७१९६
रसिअ विअउ	(वद्दमिणो) ५१५	वासारत्ते उण्णअ	५१३४
राभविहदं	(वहुलस्स) ४१९६	याहरउ मं	(कुं सुमराअस्स) २१३१
रुन्दारविन्दमन्दिर	६१७४	वाहिसा पडिवजण	(रोएवस्स) ५११६
रुअ अच्चीसु	(वद्दमिणो) २१३२	वाहिअव वेअ	(वामएवस्स) ४१६३
रुअं पिउ विअ	६१७३	वादीइअरिअ	६११८
रेहइ गालन्तकेस	५१४६	विक्किणइ माह	(हालस्स) ३१३८
रेहन्ति कुमुअदल	६१६१	विआविअद	(अणुराअस्स) ५१७
रोवन्ति व्व अरण्णी	५१९४	विअसादहणालाव	७१३१
रुहालआर्णे	(अणुराअस्स) ४१११	विण्णणगुण	(सवरसतिस्स) ३१६७
रुआ वत्ता सील	६१२४	विरहकरवत्त	(साहिअस्स) २१५३
रुहुअन्ति	(मोविन्दसामिस्स) ३१५५	विरहाणलो	(अमिअस्स) ११४३
रुम्बीओ अज्जण	(वत्तस्स) ४१२२	विरहेण म-दरेण	५१७५
रुओओ जूरद जूरउ	६१२९	विरहे विस व	(हालस्स) ३१३५
वअणे वअणम्मि	(असोअस्स) ४१५६	विवरीअसुरअलेइल	७१५४
वदविवर	(उद्धवस्स) ३१५७	विसमदिअपिके	६१९५
वर्कं ओ पुलइ	(मेहणाअस्स) २१६४	वीसत्तइविअपरि	७१६
वहुचिअपेत्ति	(वप्पसामिणो) २१७४	वेविरसिण	(अग्घस्स) ३१४४

वेसोसि जीअ	६११०	सहि ईरेसि	(भैलअस्स) १११०
वोडसुणओ विअण्णो	६१४९	सहि दुम्मेन्ति	(असुलद्धीए?) २१७७
वोलीणालक्खिअ (पवरराअस्स)	४१४०	सहि साहसु सन्ना	५१५३
सवाहणसुहरस	५१६४	सा आम सुहअ	६१११
सैथणे चिन्ता	२१३३	सा तुइ सहरथ	२१९४
सकअगहिरह	६१५०	सा तुज्ज वट्ठा	(उज्जअस्स) २१२६
सक्रेत्तिओ ०४	(हालस्स) ७१९४	सा तुह वएण	(दुव्विअसुस्स) ३१६२
सख ळलहे ळलहे	६१२१	सामाइ गरअ	५१३९
सख जाणइ	(दुग्गसाभिणो) १११२	सामाइ सामलि	(..) २१८०
सख भणामि ळालअ	(देवराअस्स) ३१३९	सालोए विअ	(हालस्स) २१३०
सख भणामि भरणे	(विअहुस्स) ३१३९	साहीणपिअअमो	६११५
सख साहसु	७१८८	साहीणे वि विअ	(रैविराअस्स) ११३९
सओवणोसइ	(विहलस्स) ४१३६	सिक्करिममणिअ	(नन्दिउद्धस्स) ४१९२
सक्कागहिअजलअलि	७११००	सिहिपिच्छलुत्तिअ	(वैसैरस्स) ११५२
सक्काराओरयइओ	६१६९	सिहिपेहुणावअसा	(पोटिसस्स) २१७३
सक्कासमए जलपू	५१४८	सुअणअउरम्मि	(देवराअस्स) २१३८
सणिअ सणिअ	५१५८	सुअणु वअण	(णीलस्स) ३१६९
सत्ता सताइ	(हालस्स) ११३	सुअणो ज देस	(हैरकुन्तस्स) ११९४
सन्तमसन्त दुक्ख	६११२	सुअणो ण कुप्पइ	(अजुणस्स) ३१५०
स०भावणेह	(होलस्स) ११४१	सुअखन्तवहलकरम	५११४
सव्माव सुच्छन्ती	(सअस्स) ४१५७	सुअरजुआणअण	५१९२
समविसमणिवि	७१७३	सुप्पउ तइओ वि	(सिरिसतिस्स) ५११२
समसोक्खदुक्ख	(वट्ठुरहस्स?) २१४२	सुप्प उहु चणआ	६१५७
सरए महइदाण	(विग्गहाराअस्स) २१८६	सुइउच्छअ जण	(सगवम्मस्स) ११५०
सरए सरम्मि	७१२२	सुहपुच्छिआइ	(तिलोअणस्स) ४११७
सरसा वि सुसइ	६१३३	सुइअइ हेम	(अण्हअस्स) ४१२९
स०वयदिसा	(कमलस्स) २११५	सुईवेहे सुखल	६११
सव्वस्सम्मि वि दहे	(अच्छलस्स) ३१२९	सुरच्छलेण	(विग्गहाराअस्स) ४१३२
सव्वाअरेण मग्गइ	७१५०	सेअच्छलेण	(हालस्स) ३१७८
सहइ सहइ ति	(कुसुमाउहस्स) ११५६	सेअविअसव्वही	५१४०
सहिआहि	(वलाइअस्स) २१४५	सो अत्थो ओ	(हालस्स) ३१५१

१. 'ब्रह्मगते' घे. २. 'जाधाय' घे. ३. 'अनीकस' घे. ४. 'उजयस' घे.
 ५. 'कविराजस' घे. ६. 'वेशारस' घे. ७. 'हारकुष्ठस' घे.

सो को वि गुणाद्	६१९१	हासाविओ जणो	(अणुराअस्स) २१२३
सो णाम संभरिअइ (वाप्यइराअस्स)	११९५	हिअअं हिअए	५१८५
सो तुज्ज कए (ईसाणस्स)	११८४	हिअअ खेअ	(विकिरस्स) ३१९०
हंसेहिं व तुइ	५१७१	हिअअट्ठिअस्स	(सच्चसेणस्स) ३१९८
हत्थप्फंसेण जरम्मवी	५१६२	हिअअण्णएहिं	(मेण्डहिबस्स) ११६१
हत्थाहत्तिअ अइमह	५१८०	हिअअम्मि वसति	६१८
हत्थेसु ■ (पालितस्स)	४१७	दिअआहिन्तो पसरन्ति	४१५१
हरिहिइ पिअ (वट्ठरइस्स)	२१४३	हेमन्तिआधु	(कैन्तेसरस्स) ११६६
हल्लकलङ्गाग (कैटिलस्स)	११७९	हेत्ताकरग्गअट्ठिअ	(पोटिअस्स) ५१३
हसिअ अदिट्ठदन्तं	६१२५	होन्तपहिअस्स	(सिहस्स) ११४७
हसिअ सहरथ (अणुलच्छीए)	३१६३	होन्ती ■ निप्फल	(कुण्डपुत्तस्स) २१३६
हसिएहिं उवाकम्भा	६११३	हाणहत्तिहा	(मअरन्दस्स) ११८०

सातवाहनः ।

दीपकर्णिसूनुः सातवाहनो नाम कश्चन विद्वान्महीपतिः प्रतिष्ठानपुरे बभूव, यस्सर्मा
 चूडकथाप्रणेनृगुणाढ्य-कालापव्यासरणकर्तृशर्ववर्मप्रभृतयो मूयांसो विद्वांसो मण्ड्या-
 चकुरिति कथासरित्सागरपद्यतरङ्गस्थितकथातः प्रतीयते. 'सोऽहं दत्तो वित्तार्थी
 प्रयातो दक्षिणापथम् । शप्तः पुरं प्रतिष्ठानं नरसिंहस्य भूपतेः ॥' (१८१०८) इत्या-
 दिफासरित्सागरस्थश्लोकेभ्य एव दक्षिणापथे प्रतिष्ठानपुरमस्तीत्यवगम्यते. तच्चाधुना
 'पैठण'नाम्ना प्रसिद्धमस्ति. 'वर्तयो कुन्तलः शातकर्णि. शातवाहनो महादेवी मलय-
 वती [जघान]' इति वारस्यायनप्रणीतकामसूत्रस्य द्वादशाध्यायीपान्ते समुपलभ्यते.
 डॉक्टरपीटर्सनेन शुन्दीनगराधीशपुत्रकालयादानीये गायासप्तशतीपुस्तके 'राएण
 विरभाए कुन्तलजणवअण्णेण हालेण । सप्तसरे अ समत्त सत्तममग्गासअ एअम् ॥
 इति सप्तमं शातकम् । इति श्रीमत्कुन्तलजनपदेश्वर-प्रतिष्ठानपत्तनाधीश-शातकर्णोप-
 नामक-द्विपि(दीप)कर्णोत्तमज-मलयवतीप्राणप्रिय-कालापप्रवर्तकशर्ववर्मधीसस-मलय-
 वल्युपवेशपण्डितीभूत-स्वकभाषाप्रयत्नीकृतपैशाचिकपण्डितराजगुणाभ्यनिर्मितमस्मीम-
 षट्पद्वृत्तकथावशिष्टसप्तमांशावलोकनप्राहतादिवाक्यपञ्चक (१)प्रीत-कविवत्सल-हालाद्युपना-
 मक-धीसातवाहननरेन्द्रनिर्मिता विविधान्योक्तिमयप्राकृतगीर्णुम्फिता शुभिरसप्रधाना
 काव्योत्तमा सप्तशल्यवसानमगात् ॥' एवं समाप्तिश्च वर्तते. एतद्विलोकनेन वारस्यायन-
 स्मृत. कथासरित्सागरप्रणीतश्च सातवाहन एक एव सेनैवेय गायसप्तशती प्राचीन-
 ग्रन्थेभ्य. सञ्चिता. स च सित्ताब्दस्य प्रथमशतक आसीदित्याधुनिकानां विद्वद्-
 राणां निश्चयः, पुत्रश्चैतत्. यतः सप्तप्रवर्तक-शालिवाहन एव सातवाहन इति निर्वि-

१. राजशेखरसूरिप्रणीते ग्रन्थकोषे सातवाहनप्रबन्धे 'अपुना तु दक्षिणदेशस्थित
 प्रतिष्ठानपुरे धुङ्गकप्रामदुर्लभं वर्तते ।' इत्यस्ति. २. डॉक्टरपीटर्सनस्य वृत्तीये पोर्टा-
 क्यपुस्तके ३४९ पृष्ठे द्रष्टव्यम्. ३. 'कामगिरि समारम्भ द्वारकान्तं महेश्वरि । धीकु-
 न्तलाभिधो देशो ह्रणदेशं २२णु प्रिये ॥' इति शकिसंगमतन्त्रम्. तस्मिन्समये च गुर्जर-
 देशोऽपि सातवाहनस्यैव प्रभुत्वमासीत्, यतस्तेन सवृत्तेन स्वसचिवाय शर्ववर्मणे भद्रकच्छ-
 (मरोच)देशप्रभुत्वं दत्तमिति 'राजाहरेणनिचवैरय शर्ववर्मा सेनाभितो गुररिति प्रण-
 तेन राजा । स्वामी कृतश्च निपये भद्रकच्छनाग्नि कूलोपकृष्टविनिवेशिनि नर्मदायाः ॥'
 अस्माकथासरित्सागरपद्यतरङ्गसमाप्तिस्थश्लोकादज्ञायते. ४. अनन्तराज-कलशदेव-दुर्दे-
 वादयः कश्मीरमहीपाला अपि सातवाहनकुलोत्पन्ना आसन्निति कहणराजतरङ्गिणीतः
 कथासरित्सागरसमाप्तिस्थप्रशंसितश्च प्रतीयते. सोऽपि सातवाहनः कदाचिदय-
 मेव स्यात्.

वादैव प्रेयमरातके तस्य स्थितिः । अयं गायत्रासप्रहर्ता सातवाहनोऽन्यैः प्रज्जविनिर-
प्यभिहितः यथा—‘अविनाशिनमग्राम्यमकरोत्सातवाहनः । विशुद्धतातिभिः कोपः रक्षै-
रेव सुभाषितैः ॥’ इति हर्षचरितारम्भे बाणः कोपत्रयायमेव गायत्रासप्रहर्ता बाणस्य
विवक्षितः ‘जगत्या प्रथिता गायत्रा सातवाहनगृध्रुना । व्यधुर्धृतेस्तु विस्तारमहो विप्र-
परम्परा ॥’ अयं श्लोकः केषुचित्सूक्तिमुक्तावलीपुस्तकेषु रात्रिशेखरनाम्ना समुद्धृतो
पश्यते ‘सर्वं भण गोदावरिः पुष्पसमुद्रेण साह्यासन्ती । सालाहणकुलसरिर्चं जदं ते
कूले कुल अरिय ॥ उत्तरओ हिमवन्तो दाहिणओ सालवाहनो राधा । समभारभर-
कन्ता तेण न पण्ठए पुहवी ॥’ एतद्वाक्यद्वयं रात्रिशेखरसूत्रिप्रणीते प्रपञ्चकोपः सात-
वाहनप्रधाने समुपलभ्यते

शतानन्दसुनुमहाकविध्रीमदमिनन्दप्रणीतरामचरिताख्यमहाकाव्यस्य सप्तमसर्गा-
न्ते पञ्चदशसर्गांते च ‘नमः श्रीहारवर्णाय येन हलादनन्तरम् । स्वकोपः कविकोपा-
णामाविर्भावाय सञ्चतः ॥’ अयं श्लोकः, द्वात्रिंशत्सर्गसमाप्तौ च ‘हालेनोत्तमपूजया क-
विरूपः श्रीपालितो रालितः रयाति कामपि कालिदासकवयो नीताः शकारातिनाः ।
श्रीहर्षाः पितृत्तर गद्यवज्ये बाणाय बाणोपलः सद्यः सक्रिययाभिवन्दमपि च श्रीहारव-
र्णोऽग्रहीत् ॥’ अयं श्लोकः समुपलभ्यते एतेन श्रीपातितकविनैव धनलिप्या स्वप्न-
भोर्हालस्य नाम्नाय गायत्रासप्रहर्ता सगृहीतः स्यादित्यप्यनुमीयते सातवाहनस्यैव
हालः, शालः, सातवाहनः, एते पर्यायाः सन्तीति हेमकोपादिषु सुव्यक्तमेव

१ प्रपञ्चकोपे तु ‘महावीरस्यामिनि मोक्ष गते ४७० वर्षानन्तरं विक्रमादित्यः ।
तत्समकालीन एवाथ सातवाहनः । काण्डिकाचार्यसमकालीनोऽपि कथनं सातवाहनः,
सोऽस्मादर्वाचीनः ।’ इत्यस्ति १ ‘शालो हाले मत्स्यभेदे’ इति, ‘हालः सातवाहनपा-
थिवे’ इति च हेमानेकाथः “शलति शालः । इति वा । ‘श्यामास्या-’ इति ॥
हालः सातवाहननृपः । तत्र यथा—‘जज्ञे श्यामहीपालः प्रतिष्ठानपुरे पुरा ।’ इति,
“यथा—दिग् गते हालवसुधराधिपे ।’ इति च तटीया अनेकार्थैरेवात्तरकांमुदी-
‘हालः सातवाहनः’ इति हेमनाममाला, ‘हालवराणिहृदयः हालः । जलवादिवाह-
णः । सात दत्तमुखः वाहनमस्य सातवाहनः । सालवाहनोऽपि ।’ इति तटीया अभिधा-
नचिन्तामणि ‘सालाहणमि हालो’ इति देशीनाममाला ‘हालः सातवाहनः’ इति
तटीया, ‘शालो हालनृपेऽपि च’ इति त्रिकाण्डशेषानेकार्थः कथाघटितवागरे ॥ सा-
तेन यस्माद्भोऽभूत्सात सातवाहनम् । नाम्ना चकार कालेन राग्ये चैनं न्यवेशयत् ॥’
इति सातवाहनपदस्य निरकिरुक्तास्ति सातो नाम कथनं यक्ष कुबेरशापेन सिंहता-
प्राप्तः तेनाथ खपृष्ठेऽधिरोपितः इति कथापि तत्रैवास्ति वात्स्याननीयकामसूत्रे ॥
‘सातवाहनः’ इति तालव्यादि समुपलभ्यते नायु-भ्रातृस्य विष्णु-पुराणेषु भाग्यते च
हालमहीपतेर्नाम समुपलभ्यते इति विद्वद्भारभाण्डारकरोपाङ्ग-रामकृष्णशर्मभिः प्रणीते

सप्रद्वलपेऽस्मिन्ग्रन्थे काव्येन गाथा हालप्रणीता अपि सन्ति यतः कचित्पुस्तके चतुर्थगाथामारभ्य द्वादशगाथापर्यन्तं प्रतिगाथाप्रे तत्तद्गाथान्तर्गता 'हालस्स (हालस्य), वोडिसस्स, जुणेहस्स, मअरन्दसेणस्स (मकरन्दसेनस्य), अमरराअस्स (अमरराजस्य), कुमारिलस्स (कुमारिलस्य), सिरिराअस्स (सीराजस्य), भीमस्सामिणो (भीमस्सामिनः), हालस्स, एतानि पद्यन्तानि नामानि समुपलभ्यन्ते अग्रे च ऐतत्प्रमादेन गलितानीति भाति. एतद्ग्रन्थान्तर्गता गाथा धम्म्यालोके, तल्लोचने, सरस्तीकण्ठाभरणे, काव्यप्रकाशे चोदाहृता सन्ति कुल्लवालदेवनिर्मिता गङ्गाधरभट्टनिर्मिता चास्य टीका समुपलभ्यते, तत्र गङ्गाधरभट्टनिर्मितैव समीचीना टीकात्रयैर्दशकालौ चानिधितान्वैव.

॥

जर्मनीदेशे टीकारहितोऽयं ग्रन्थो रोमन्लिप्था चेकरपण्डितेन मुद्रितः . ॥ च तद्देशीयानामेषोपकारक इति गङ्गाधरभट्टप्रणीतटीकासमेतोऽस्माभिर्मुद्रयितुमारब्धः भविष्यति चायमतिप्रज्ञो मनोहरश्च ग्रन्थो रसिकानां हृदयावर्जर इति दृढमन्शास्महे.

अस्मन्मुद्रणाधारभूतपुस्तकानि स्वेतानि—

१. प्रथमं जयपुरराजकीयसंस्कृतपाठशालाया न्यायशास्त्राध्यापकाना ओद्योपनामरु-
ध्रीजीयनाथशर्मणा गङ्गाधरभट्टटीकासमेतं प्रायः शुद्धं 'मित्ररामाङ्गभूषाके (१६३२),
लिखितं क-खण्डम्.

२. द्वितीयमप्येतादृशमेव अलवरमहाराजाश्रितश्रीभवानन्दोदयानन्दरामचन्द्रपण्डि-
ताना नवीनं नातिशुद्धं च ख विहितम्.

३. तृतीयं कुल्लवालदेवप्रणीतटीकासमेतमस्मदीयं चास्यशुद्धं च विहितम् तच्च डॉ-
क्टर्पीटर्सनेन कोटानगरादानीतस्य पुस्तकस्य प्रतिलिखकम्.

४. चतुर्थं जयपुरराजगुरुपर्वणीकरोपाह्वनारायणभट्टाना केवलं संस्कृतच्छायामानं
प्रायः शुद्धं नातिनवीनं च घ-विहितम्.

एतत्पुस्तकाधारेणास्माभिः शुद्धान्वयेन पाठ्य-तराणि गृहीतानि सन्ति.

यक्षिणप्राचीनेतिहासनाम्नि पुस्तके २५ पृष्ठे विलोकनीयम् शातकर्णे सातवाहनस्य
विस्तरेण वर्णनं च तत् एवावधार्यम्.

१. पुस्तकान्तरे 'कुल्लवालदेव' इत्यपि नाम दृश्यते.

काव्यमाला ।

हालापराख्यमहाकविश्रीसातवाहनसंकलिता

गाथासप्तशती ।

श्रीगङ्गाधरभट्टप्रणीतया भावलेखप्रकाशिकाख्यया टीकया सुवलिता ।

नत्वा दुष्णिष्ठपदाञ्ज गङ्गाधरभट्टनिर्मिता टीका ।

सप्तशतभावलेखप्रकाशिका शोष्यता विज्ञैः ॥

अथ तत्रभवान्प्राकृतकविशुभुदशुभुदिनीनायकः क्षालिवाहनश्चिद्विद्वितगाथाकोपस्था-
पेन्नपरिसमाप्तये कृतं मङ्गले श्रोतृहितायमुपनिबध्नाति—

पशुपदो रोसारुणपट्टिभासंकन्तगौरिमुह्यन्दम् ।

गैह्मिण्यपट्टमं विज संज्ञासलिलज्जलिं नमह ॥ १ ॥

[पशुपते रोषारुणप्रतिभासंकान्तगौरीमुखचन्द्रम् ।

गृहीतार्घपङ्कजमिव संध्यासलिलाञ्जलिं नमत ॥]

पशुपदश्च इति । मामुपेक्ष्य कथमयमन्या ध्यायतीति रोषेणारुण प्रतिमया संक्रान्त
प्राकृते पूर्वनिपातानियमारसंकान्तप्रतिमं वा यद्गौरीमुख तदेव चन्द्रो यत्र तं पशुपतेः
संध्यासलिलाञ्जलिं नमतेत्यन्वयः । रक्तमुखप्रतिविम्बच्छब्देन गृहीतार्घोचितरक्तपङ्कज-
मिवेत्युपप्रेक्षा । यद्वा मानिन्याः प्रणयरोपमसहमानं नायक प्रति कृपया उत्क्रियम्—
'अनभिज्ञोऽसि प्रेमव्यवहाराणां यस्त्व प्रियाप्रणयरोपलक्षणे हर्षस्थाने कुप्यसि । न पश्यसि
किं देव्याः संध्यासलिलाञ्जलावपि प्रणयरोपम्' इति ॥

गाथाकोपविरचनप्रयोजनमाह—

अमिभं पाठअकव्वं पढिउं सोउं अ जे ण आणन्ति ।

कामस्स तत्ततन्ति कुणन्ति ते कैह्ण लज्जन्ति ॥ २ ॥

१. 'पट्टमभिभ' इति ख म-पुस्तकयोः पाठः. २. 'अमअ' इति ख-म-पाठः. ३. 'कहं'
इत्यस्मिन्पदे 'हं' इति गुर्वक्षरस्यापि छन्दोभङ्गमयाऽप्यक्षरवदुच्चारण विधेयम्, इत्यत्र प्रमाण
प्राकृतपिण्डे यथा—'अह दीहो वि अ वण्णो लहु जीहा पढइ होइ सो वि लहु । वण्णो

[अमृतं प्राकृतकाव्यं पठितुं श्रोतुं च ये न जानन्ति ।

कामस्य तत्प्रचिन्तां कुर्वन्ति ते कथं न लब्धन्ते ॥]

अभिअमिति । शृङ्गाररसनिर्भरत्वेनांहादपत्वादमृतमिवामृतं प्राकृतकाव्यमवसरे पठितुं परपठितं च श्रोतुं बोद्धुं ये न जानन्ति, अथ च-कामस्य तत्प्रचिन्तां तन्त्रवार्ता वा कुर्वन्ति ते कथं न लब्धन्ते इत्यर्थः । कामशास्त्रव्युत्पत्तिविधुरं प्रति विदग्धनाथि-
कोक्तिर्वा ॥

प्रेक्षावरप्रवृत्तये स्वमन्यस्य सक्षिप्ततां साररूपतां चाह—

सप्त सताइं कइवच्छलेण कोडीअ मज्झआरम्मि ।

हालेण विरइआइं सालंकाराणं गाद्याणम् ॥ ३ ॥

[सप्त शतानि कविरत्सलेन कोटेर्मध्ये ।

हालेन विरचितानि सालंकाराणां गायानाम् ॥]

‘सत्तेति । मज्झआरो मध्य’ । कविगाथासमूहेण तत्कीर्तिस्थापनात्कविरत्सलेन हा-
लेन शालियाहनेन सालकाराणां गायानां कोटेर्मध्ये सप्त शतानि विरचितानि । संगृही-
तानीत्यर्थः । गायालक्षणं तु—‘पठमं बारह मत्ता बीए अद्धारएहिं’ सजुत्ता । जह पठम
तह तीअं दहपघविहंसिआ गाहा ॥’ इति विश्वलोचनो बोध्यम् ॥

‘केलोलिनीकाननवदरादां दुःखाधये चार्पितचित्तवृत्तिः । मृदुवमारम्भमभिप्रार्थय-
न्मयोऽपि दीर्घं रमते रसेषु ॥’ इत्यादि कामशास्त्रादीर्घरमणार्थं नायकस्यान्यचित्तता
कुर्वेतीति पाणिदाह—

उअ निञ्जलणिप्पन्दा भिसिणीपत्तम्मि रेहइ यलाभा ।

णिम्मलमरगअभाजणपेरिदिदिदा सद्धसुत्ति व्य ॥ ४ ॥

वि तुरिभपटिओ दोतिणि वि एक्क जणैहु ॥’ इति ‘यदि दीर्घमपि वर्णं लघुहस्ता जिह्वा
पठति तदा श्लोऽपि वर्णो लघुरेव भवति । द्वौ वर्णौ त्रयो वा वर्णास्त्वरितपठितास्ता-
नेक एव वर्ण इति जानीत ।’ इत्येतदीका. एवं ‘इ’ ‘हिं’ इति वर्णद्वयम्, ‘ए’ ‘ऊ’ इति
वर्णद्वयं शुद्धम्, जवर्ण(अन्यवर्ण)मिहितं वा विकल्पेन लघु भवति, तथा रकारयुक्ते
हकारयुक्ते वा व्यञ्जने परे पूर्वोत्तरं विकल्पेन लघु भवति, इत्यादि नियमा- श्लो-
हरणा. ग्राह्यविश्लेषे द्रष्टव्याः. अस्याभिरूप्यत्र यस्य गुर्वक्षरस्य लघ्वक्षरवदुच्चारणं
भवति तदुपरि ‘एतादृशमर्थवन्दाकारं विहं स्थापितमस्ति. १. ‘कोट्यामध्ये’ इति
अ-पुस्तके, ‘कोटिमध्यात्’ इति म-पुस्तके पाठः. २. ‘द्यात्वाहनेन’ इति, ‘शात्रिवाह-
नेन’ इति च म घ पुस्तकयो- पाठौ. ३. अयं श्लोकः कुक्कोकप्रणीते शतरहस्ये (५१३)
वर्तते. ४. ‘पेरिदिमा’ इति ख-ग-पाठः.

- [पश्य निश्चलनिःस्पन्दा विसिनीपत्रे राजते बलाका ।

निर्मलमरक्तमाजनपरिस्थिता शङ्खशुक्तिरिव ॥]

उभ निश्चलेति । निश्चलोऽचलस्तद्वन्निःस्पन्दा वेगविधारणप्रयत्नवशात् । निश्चलेति पुरुषसंबोधनं वा । शङ्खशुक्तिः शङ्खशुक्तिः । तथा च यदि वेगविधारणपरोऽस्ति तदैनां बलाकां पर्यग्रन्थमनस्कतया चिरं रमस्वेति भावः । यद्वा निःस्पन्दत्वेनाश्च-
स्तत्वम्, तेन जनरहितत्वम्, तेन च सकेतस्थानमिति कथानित्कचित्प्रति व्यज्यते । अ-
थवा मिथ्या वदसि । न त्वमत्रागतोऽभूरिति व्यज्यते ॥

विपरीतरत्नप्रसङ्गे सदर्पां काचिदुद्दिश्य कथिदाह—

तावच्चिअ रइसमए महिलानं विव्रममा विराजन्ति ।

जाव ण कुवलअदेलसेछआई मंडलेन्ति णअणाइ ॥ ५ ॥

[तावदेव रतिसमये महिलानां विव्रमा विराजन्ते ।

यावन्न कुवलयदलसंच्छायानि मुकुलीभवन्ति नयनानि ॥]

तावेति । यद्वा दुरतावसानोपचाराद्यनभिज्ञतया रतान्तेऽपि वटाक्षभुजप्रक्षेपादि-
विव्रमं कुर्वन्ती नायिकां प्रति सख्याः शिक्षोक्तिरियम् । रतिसमये स्त्रीणां विव्रमस्ता-
वदेव विराजन्ते पुरुषाणां हृदयहारिणो भवन्ति यावत्पुरुषाणां नयनानि रतिप्राप्त्या
मुकुलितानि न भवन्ति । अतस्तथाविधं नायकमुपलभ्याप्राप्तरतिमुख्यादि प्राप्तरतिमु-
खादेव तावद्विव्रमया त्वया भवितव्यमिति ॥

स्वकीशोपवनरोपितस्य पुष्पफलरहितस्य दुरवकंतरोर्दोहदमन्वेपयन्तं नायकं प्रति
नायिकायाः सखी वदति—

णोहंलिअमप्पणो किं ण मग्गसे मग्गसे कुरवअरस ।

एअं तुह तुहग हसइ वलिआणणपङ्कअं जाआ ॥ ६ ॥

[दोहंदमारमनः किं न मृगयसे मृगयसे कुरवकस्य ।

एवं तव सुभग हसति वलिताननपङ्कजं जाया ॥]

णोहलिअमिति । यद्वा णोहलिअं नवफलोद्गममित्यर्थः । मदातिङ्गनेन कुरवकस्य
फलोद्गमं प्रार्थयसे आरमनः पुनरुपं फलं निमित्ति न प्रार्थयसे । अहो ते जाव्य-
मित्यभिप्रायः ॥

१. 'तावच्चिअ' इति क-पाठः. २. 'जावण्य' इति ग-पाठः. ३. 'दलसछआइ' इति
ग-पाठः. ४. 'मंडलेन्ति' इति क-पाठ. ५. 'सदृशानि' इति ग-घ-पाठः. ६. 'मुकुला-
यन्ते' इति, 'मुकुलानि' इति ग-घ-पाठौ. ७. 'दोहलिअ' इति ग-पाठः. ८. 'एवं तु
तुह' इति छन्दोमग्नपुञ्जः क-ख-पाठः. ९. 'नवदोहदमात्मनः' इति ॥ पाठः. १०. 'मार्ग-
से मार्गसे' इति ग-पाठ. ११. 'एवं यत्तु सुभग त्वा' इति क-ख-घ-पाठः, 'इयं त्वा सु-
भग' इति ग-पाठः.

वसन्तसमये गमनोद्यन नायक प्रति कान्ताया सखी गमनाक्षेपार्थमाह—

ताविज्जन्ति असोऽहिं लङ्घवणिआओ दइहविरहम्मि ।

किं सहइ को वि कस्स वि पाअपहार पडुप्पन्तो ॥ ७ ॥

[ताप्यन्ते अशोकैर्विदेग्धवनिता दयितविरहे ।

किं सहते कोऽपि कस्यापि पादप्रहारं प्रभवन् ॥]

ताविज्जन्तीति । अशोकैरननुभूतशोकत्वात्परपीडानिर्दये । अन्योऽपि न सहते किं पुनरशोक । प्रभवन्नित्यवसरप्राप्त्या समर्थो भवन् । का-तर्सेनिधौ तु सामर्थ्याभावात् ताप्यन्त इत्याशयः । तथा च वरस्त्रीचरणताडनरूप दोहद त्वमेव कारितेय मत्सखी स्व-द्विरहे लज्जावसरे सानुशयैरशोकैस्ताप्यमाना जीवितमेव जह्यादिति भावः । प्रो-पितभर्तृकाया कान्तं प्रति तासस्या लेखगायेयमिति कथितम् ॥

कस्याधिकेनचित्समुक्तेन तिलवाटिका संकेतस्थानमासीत् । ततः पक्षेपु तिलेपु संकेतस्थानात्तरं आरे प्रति धावयन्ती श्वभू प्रत्याश्रयंकपनव्यानेनाह—

अत्ता तह रमणिज्ज अहं गामस्स मण्डणीहूमम् ।

लुअतिलवाडिसरिच्छ सिसिरेण कअ मिसिणिसण्डम् ॥ ८ ॥

[श्वभू तथा रमणीयमस्माकं ग्रामस्य मण्डनीभूतम् ।

लूनतिलवाटीसदृश शिशिरेण कृत मिसिणीषण्डम् ॥]

असेति । हिमदग्धपन्नतया दण्डमाश्रयेण बालूनतिलवाटीसदृशम् । तथा च पूर्वं प-धापाहरणार्थं जनानां तत्र गतागतमासीत्, तदपीदानीं नास्तीति विजनव तस्य देशस्य सूचितम् । 'तिलक्षेत्रपद्मसर प्रवृत्तिसंकेतस्थानान्तराभावाद्दृग्मेव संकेतस्थानमित्यर्थः' इति कथितम् ॥

कस्याधिकेनचित्समं शालिक्षेत्रं संकेतस्थानमासीत् । ततः शालिपाके तदपगमं दृष्ट्वा रुदन्ती तामुद्दिश्य संकेतस्थानान्तरं सूचयन्ती सखी आह—

किं रुअसि ओणअमुही धवलाअन्तेसु सालिछेत्तेसु ।

हरिआलमण्डितमुही णडि व्य सण्वादिआ जाआ ॥ ९ ॥

[किं रोदिष्यवन्तमुखी धवलायमानेषु शालिक्षेत्रेषु ।

हरितालमण्डितमुखी नदीव शण्वाटिका जाता ॥]

किमिति । हरितालेन धातुविशेषण मण्डितमुखी नदीव । शण्वाटिकापक्षे—पीतकुमु-

१ 'असो इहिं' इति ग पाठ २ 'मनोहरस्त्रिय' इति ग पाठ, 'ललितवनिता' इति घ पाठ ३ 'पुष्पित' इति ग पाठ ४ 'गाअस्स' इति ख-पाठ ५ 'लुअ-तिलवाडिसरिस' इति ख-पाठ ६ 'हे मातसया' इति ग पाठ

मस्तयकनिकरनिविडशिखरक्षणतदनिवहनिरन्तरतया हरितालमण्डितमुखौवेत्युपमा । अथ च हरीणां मर्कटानां जालेन मण्डित मुख प्रवेशमार्गो यस्या इति निर्जनता व्यज्यते । अथवा पाकाभिमुखेषु शालिक्षेत्रेषु हर्षस्थानेष्वपि रुदितलक्षितशालिक्षेनाभिसारा कापि कयापि परिहासशीलया एवमुपहस्यते ॥

कलहान्तरितां नायिका कान्तानुवृत्त्यभिमुखीं कर्तुं सखी आह—

सहि ईरिसिन्विज गर्ह मा रुन्वसु तंसवल्लिअमुहअन्दम् ।

एआणं बालबालुक्कितन्तुकुडिलणं पेम्माणम् ॥ १० ॥

[सखि ईदृश्येव गतिर्मा रोदीसिर्यग्वलितमुखचन्द्रम् ।

एतेषां बालकर्कटीतन्तुकुडिलानां प्रेम्णाम् ॥]

सहीति । ईदृश्येवेति सनिहितमेवानुवर्तन्ते । वेष्टितमेव वेष्टयन्ति । मनागाकृष्ट्यापि नुव्यन्ति । सचावदन्यत्र दृढानुवन्धो न भवति तावदेव मानं विहाय कान्तमनुवर्तस्वेति सद्यमानुपदेशः । तत्कान्ते च निरहविधुरेयं मानिनी तदेनामनुनयस्वेति व्यङ्ग्योऽर्थः ॥

गृहीतमानायाः कस्याश्चिदनुनयार्थं चरणपतितस्य पर्युः पृष्ठमास्त्य पुत्रं दृष्ट्वा बन्ध-
विशेषस्मरणात्तस्या हास्योद्गमो जात इति कवित्सखीमाह । यद्वा कृतकलहयोर्दोषस्यो-
रानिदृशान्तमनुवन्धायागता सपत्नी सपत्न्या पृष्टा तामाह—

पाजपडिअस्स पइणो पुट्टिं पुत्ते समादहत्तम्मि ।

ददमण्णुदुण्णिआएँ वि हासो चरिणीएँ नेकन्तो ॥ ११ ॥

[पादपतितस्य पर्युः पृष्ठं पुत्रे समारुहति ।

दृढमनुदुनाया अपि हासो गृहिण्या निष्क्रान्तः ॥]

पाएति । पर्युः स्वामिनः । न तु बल्लभस्येत्यर्थः । पुत्रे समादहतीत्यनेन पुत्रवत्तया
गलितयौवनायामप्यनुरक्त इति व्यज्यते । गृहिण्या गृहस्वामिन्याः । अस्मादीना-
मौदासीन्यादिति भावः । ददमण्णुदुनाया इत्यनेन रोषोपशमाभावप्रतिपादनेन स्वाधीन-
भर्तृकायाः सौभाग्यगर्वात्पतिविषयेऽनादरः, पर्युश्च तादृशमपि सेहातिरायः प्रकटितः ॥

प्रियविश्लेषोपपत्तया कयाचिदप्रेयिता निश्चयार्थं दूती नायकमुत्कर्षयन्ती भग्नया स्वस-
खीमरण सूचयन्ती आह—

सेसं जाणइ दहुं सरिसम्मि जणम्मि जुज्जए रीओ । -

मरठ ण तुमं भणिस्सं सरणं वि सत्ताहणिजं से ॥ १२ ॥

१. 'तिरिअवल्लिअ-' इति ग-पाठः. २. 'दुण्णिआए' इति ख-पाठः; 'दुम्मिआइ'
इति ग-पाठः. ३. 'समारुहमाणे' इति ग-पाठः. ४. 'ददमण्णुदुमंतस्वया.' इति ग-
पाठः. ५. ख-ग-पुस्तकयोरेवमपि प्राप्ता व्याख्या. ६. 'गण' इति
ख-ग-पाठः.

[सत्यं जानाति द्रष्टुं सदृशे जने युज्यते रागः ।

म्रियतां न त्वां भणिष्यामि मरणमपि साधनीयं तैस्साः ॥]

सद्यमिति । यतोऽनन्यरूपस्वाधिनी स्वद्रूपमेव बहु मन्यत इत्याशयः । सदृशे जने युज्यते राग इत्यनेन रूपाभिजनादिभिरनुसूते त्वमि तस्याः समागमोत्सुक्यं युक्तमेवेति नायिकायाः सुललितरागाभ्यां नायकप्रोत्साहनम् । म्रियतामिति नेन नायकस्यानभ्युपगमे स्वीयधपातकम्, आत्मनश्च प्रार्थनामङ्गमीकृतं दर्शितम् । मरणमपीत्यादिना चानुरूपानुष्ठाना-
एवमेतद्विज्ञाया मरणे जन्मान्तरे त्वत्प्राप्तिर्भवो व्यज्यते ॥

वैष्णवादिमालिन्यस्य हृद्या गृहकृत्यपराङ्मुखी सखी प्रबोधयितुं काचिदाह—

घरिणीं महानसकर्मलमपीमलिनितेन हस्तेन ।

छित्तं मुहं हसिज्जह चन्द्रावत्यं गभं पश्या ॥ १३ ॥

[गृहिण्या महानसकर्मलमपीमलिनितेन हस्तेन ।

रुष्टं मुहं हसते चन्द्रावत्यां गतं पत्या ॥]

वरीति । यस्य यदुचितं कर्म तच्छ्रीलयतो वैरूप्यमप्यलंकारायैव भवति । यतो सप्रमपीकालिमापि मुहं पत्या सपरिहासं चक्षेणोपमीयते । अतः कुलव्रीणां गृहकृत्यप-
राङ्मुखत्वमनुचितमिति भावः ॥

कृतकारमाहतेनान्यप्रज्वलत्यग्री कुण्ठन्ती काचिरत्नामिलारं प्रकाशयमाह—

रन्धणकर्मणिउणि मां जूरसु रक्तपाटलसुगन्धम् ।

मुहमारुहं पिमन्तो धूमाह सिद्दी न प्रज्वलह ॥ १४ ॥

[रन्धनकर्मणिपुणिके मां कुण्ठ्यस्व रक्तपाटलसुगन्धम् ।

मुहमारुतं पिमन्धूमायते सिद्दी न प्रज्वलति ॥]

रन्धणेति । रन्धनपरतया त्वदनलोकनकीर्तुकोपगतमपि मां नाबलोकयसीति भावः । मा इति । तवापररुक्तेऽग्निपूजोचितस्य रक्तपाटलाकुसुमस्यैव सुरभिशीतलो गन्धो यस्य तम् । मुलेति । दोषादणतवन्मुहदिदक्षमेव धूमोद्गमचादुमाचरति । लेन्मुखमाहृतपा-
नेच्छवैवार्यं ॥ प्रज्वलति । ज्वलितस्य तत्प्राप्तिसमवादिमिति भावः ॥

१. 'जलाः' इति ग घ-पाठः. २. 'कापि मखितत्वाद्वाह्ये सासिसमर्पितगृहक-
लपराङ्मुखी' इति ख-पाठः. ३. 'मदलिण' इति ख-ग-पाठः. ४. 'कोऽपि युवा
कामुकधर्मेभ्यो समाधाय साभिप्रायं प्रकाशयन्माहतेनाप्रज्वलत्यग्री कुण्ठन्ती नायिका-
माह' इति ख-पाठः. ५. 'खिदल' इति ग-पाठः. ॥

नवोढायाः कन्याधिभूतनगर्भयोगिन्याः कान्तं प्रत्यनुरागातिशयं प्रतिपादय-
काचिदाह—

• किं किं दे पडिहासइ सहीहिँ इअ पुच्छिआएँ मुद्दाए ।

पढमुग्गअदोहँणीए णवरं दइअं गआ दिट्ठी ॥ १५ ॥

• [किं किं ते प्रतिभासते सखीभिरिति पृथाया मुग्धायाः ।

प्रथमोद्गतदोहदिन्याः केवलं दयितं गता दृष्टिः ॥]

किमिति । प्रतिभासते रोचते । दयितेऽभिलाषमेव सूचितवतीत्यर्थः । यद्वा सपत्नी ॥
सासूयस्य सपत्नीजनस्योपाकल्मषादोऽयम् । मुग्धाया इति मोहाद्गर्भायासमप्यग-
यन्त्याः । प्रथमेति । बहुप्रसूताश्च गर्भखेदखिन्नाः मुरतावासं परिहरन्ति । इयं त्वननु-
तप्रसूतिखेदा प्रियसंभोगमेव परमभिलषतीति भावः ॥

प्रोषितपतिका काचिद्विरहदाहदुःसहत्वं व्यञ्जयन्ती कान्तसमागमविषये सखीज-
स्वरयितुं चन्द्राभ्यर्थनं गच्छतेनाह—

अमअमअ गअणसेहर रअणीमुखतिलअ चन्द दे छिअसु ।

छिसो जेहिँ पिअअमो ममं पि तेहिँ विअ-करेहिँ ॥ १६ ॥

• [अमृतमय गगनशेखर रजनीमुखतिलक चन्द्र हे स्मृश ।

स्मृष्टो वैः प्रियतमो मामपि तैरेव करैः ॥]

अमएति । वैशब्दः सानुनयसंबोधने । अमृतमयेत्यनेन जगज्जीवनहेतुत्वम्, गगन-
शेखरेत्यनेनादिललोकलोचनानन्दकारित्वम्, रजनीमुखतिलकेत्यनेनायत्ताजनपक्षपातित्वम्,
चन्द्रेत्यनेनाहादकत्वं व्यञ्ज्यते । एवविधोऽपि मां निर्देयं ददस्मि, मत्कान्तं पुनरमृतकिरी-
करैः स्मृशसीत्यतोऽद्यापि नायातीति भावः ॥

सखि मुख खेदम् । अद्य श्रो वा तवागमिष्यति कान्तः । किं त्वागतोऽप्यसौ त्व-
सप्रणयरोपमुपाकल्मषैः खेदयितव्य इति सखीभिरुक्ता प्रोषितमर्तुका आह—

ऐहइ सो वि पउत्थो अहं अ कुप्पेअज्ज सो वि अणुणेअज्ज ।

इअ कस्स वि फलइ मणोरहाणं माला पिअअमम्मि ॥ १७ ॥

• [ऐष्यति सोऽपि प्रोषितो अहं च कुपिष्यामि सोऽप्यनुनेष्यति ।

इति कस्या अपि फलति मनोरथानां माला प्रियतमे ॥]

१. 'दोहलिणीए' इति ग-पाठः; 'दोहलिणी' इति ख-पाठः. २. 'एहिँ' इति
ख-पाठः. ३. 'अणुणिस' इति ग-पाठः. ४. 'आममिष्याहि' इति ग-पाठः.
५. 'अयाद' इति ग-पाठः.

एहइति । कान्तस्य निरनुकोशत्वात्, आत्मनश्च कान्तानधीरणभीदत्वात्, इयधिरं
प्रेमानुबन्धस्यासंभाव्यमानत्वाच्च सर्वमेतन्मनोरथमात्रमित्याशयेनाह—इतीति । कस्यापि
धन्यजनस्य एतत्संपत्ते । मम तु मन्दभाग्यायाः कृत एतदिति भावः ॥

कथमधुना दुर्बलोऽसीति मित्रेण पृष्ठस्य कान्तस्य बहुमहिलाकृष्टि कापि सेव्यापाल-
म्भमन्यापदेशेनाह—

दुग्गजकुटुम्बअट्टी कहँ णु मए घोइएण सोढव्वा ।

दक्षिओसरन्तसलिलेण उअह रुण्णं व पड्डएण ॥ १८ ॥

[दुर्गतकुटुम्बाकृष्टिः कथं नु मया धैतेन सोढव्या ।

दशापसरत्सलिलेन पश्यत रुदितमिव पटकेन ॥]

दुग्गएति । शोऽन्वेत्यनन्तरं इति शाङ्क्या इति शेषः । तया वैवंविधशङ्कामानेन
खेदादशागलज्वलच्छडेनाचेतनोऽपि पटो रोदिति, अयं तु विदग्धो महिषाछन्दानुसृत्या
कथं न खिप्रं स्यादिति भावः । यद्वा कापि वेश्या धनदानेन विना बहूनां ग्रामप्रधा-
नानामाकर्षणादुद्वेगं कृष्टीं प्रति सूचयन्तीत्यं कथयति ॥

कोऽयमारमनः पराधीनकृतिरवमनुरागातिशयं च नायिका प्रति ह्यापयन्नायिकापृह-
णामिवत्समन्यापदेशेनाह—

कोसम्बकिसलजवण्णअ लण्णअ उण्णामिएहिं कण्णेहिं ।

हिअअट्टिअँ घरँ वड्डमाण धवलत्तणं पाव ॥ १९ ॥

[कोशाग्रविसलयवर्णं तर्णक उल्लामिताभ्यां कर्णाम्याम् ।

हृदयस्थितं गृहं प्रमथयितुं प्राप्नुहि ॥]

कोसम्बेति । धवलत्वं श्रेष्ठतां पण्डत्वं वा । स्वेच्छाचारितामिति यावत् । अहमिव पराधी-
नकृतिर्मा भूतिरिति भावः । अथवा या वृद्धा कामयते तस्यास्त्वं तर्णक इवेति श्यायित्क-
चित्प्रसूच्यते ॥

कापि भावजिज्ञासार्थं कृतकनिग्रानिमीलिताक्षं कपोलधुम्बनपुलकिताक्षत्वेन विदित-
मिभ्यास्त्वं कान्तमाह—

अलिअपसुत्तअविणिमीलिअच्छ दे सुहअ मज्झ ओभासम् ।

गण्डपरिउम्बणापुलइअङ्ग ण पुँणो चिराइस्सम् ॥ २० ॥

[अलीकप्रसुप्तविनिमीलिताक्ष हे सुमग ममावकाशम् ।

गण्डपरिनुम्बनापुलकिताक्ष न पुनश्चिरैरिष्यामि ॥]

१. 'कुटुम्बकृष्टिः' इति घ-पाठः. २. 'हृदयेस्थितं' इति ग-घ-पाठः. ३. 'उणो'
इति ग-पाठः. ४. 'ददत्त सुमग ममावकाशम्' इति ग-पाठः. ५. 'चिरयिष्ये' इति
ग-घ-पाठः.

अलिपति । हे मुभय, ममावकाश देहीति शेषः । 'दिमु घञ मज्ज' इति कवित्पाठः ।
अत्र हे भव, ममावकाशं देहीति शोभ्यम् । केचित्तु—'दिमु हञमज्ज' इति पदच्छे-
दः । हतमप्य अङ्गविन्यासरुद्धमप्य देहि अवकाशम् । अर्यान्मम ।' इत्याहुः । गण्डेति ।
एतेन नायिकाया इक्षितज्ञानमन्योन्यानुरागश्च यूनोर्दक्षितः ॥

चेत्याह्वानार्थमागते नायकमित्रे गृहीतान्यभुजंगमाच्छादयन्ती वेश्यामाता इहि-
तरमाह—

असमत्तमण्डणाविज घञ धरं से सकोडहृष्टस ।

वोलाविअहलहलअस्स पुत्ति चित्ते ण लग्गिहिसि ॥ २१ ॥

[असमाप्तमण्डनैः प्रज गृहं तैस् सकौतुहलस ।

व्यतिक्रान्तीस्सुक्यस्य पुनरि चित्ते न लगिष्यसि ॥]

असमत्तेति । मण्डनकरणेनाय्या विलम्बो नान्यप्रसङ्गेति भावः ॥

• कश्चिन्नागरिकः कामिनीजनचित्तहरणार्थं राजसलामुखचुम्बनेनात्मनः कामुकत्वा-
तिशयं प्रकटयन्नाह—

आभरपणामिओढुं अघडिअणासं अंसंहअणिडालम् ।

वण्णपिअणुप्पमुहिण तीण परिउम्वणं भरिमो ॥ २२ ॥

[आदरपणामितौष्ठमघटितनासमसंहतललाटम् ।

वर्णचूतलितमुख्यास्तस्याः परिचुम्बनैः सरासः ॥]

आभरेति । हरिद्रादिवर्णप्रधानं पृष्ठं वर्णचूतम् । देशविशेषे राजसलामुखं विहायै वर्ण-
चूतेन लिप्यत इत्याचारः । तस्या या मया त्वयि प्राकथितसौन्दर्या । परि सर्वतः
कपोलादौ । यद्वा प्रोपितः कश्चिन्प्रियाया. स्पृष्टक नामानुरागातिशयसूचकमालिङ्गनं
सरसात्मानं विनोदयतीति गायार्थः ॥

जनसबाधेऽपि त्रिय प्रत्युद्भवाणा सखी शिक्षयितुं वापि अच्छमकामुकोपं कुल-
जायां गाम्भीर्यगुणमाह—

अण्णासआहुं देन्ती तह सुरए हरिसविअसिअकपोला ।

गोसे वि ओणअमुही अह सेत्ति पिआं ण संहपिमो ॥ २३ ॥

१. 'मण्डने विज' इति ग-पाठः. २. 'अस्य' इति ग-पाठः. ३. 'व्यतिक्रान्त-
करणस्य' इति ग-पाठः; 'व्यतिक्रान्तहलहलकस्य' इति घ-पाठः. 'हलहलक कामौ-
त्सुनयमिति देशी' इति कुलबालदेव. ४. 'असघअलिङ्गालम्' इति ग-पाठः. ५. 'तु-
प्पशब्दो देशी लिप्ते वर्तते' इति कुलबालदेव. ६. 'निटिलम्' इति घ पाठः.
७. 'सरामि' इति ग पाठः. ८. 'सहसेत्ति पिआं' इति ग-पाठः; 'अहसेत्ति पिआं'
इति कवित्पाठः । अह इयमर्थः । इय सा प्रियेति तदर्थः. ।' इति कुलबालदेव.
९. 'सहहिमो' इति ग-पाठः..

[आज्ञाशतानि ददती तथा सुरते हर्षविकसितकपोला ।

प्रातरप्यवनतमुखी ईयं सेति प्रियां न श्रद्धम् ॥]

१. अण्णेति । हर्षविकसितकपोला सती । तथा आज्ञाशतानि गृहाणाधरं मुखं चिकुरमि-
त्यादीनि ददती । गोप्ते प्रातः । अह इयं सेयमिति । प्रथमैव न भवतीत्यर्थः । लोकसमर्थं
गृहाकारतैव नायकप्रीतिहेतुः, न तु धार्ष्ट्यमिति भावः ॥

वाचित्पत्युरन्यस्यामनुरागमात्मनि चाननुरागं कुलीनतानमस्कारच्छलेनाह—

पिअविरहो अपिअदंसणं अ गरुआई दो वि दुक्काई ।

जीएँ तुमं कैरिज्जसि तीएँ णमो आहिजाईए ॥ २४ ॥

[प्रियविरहोऽप्रियदर्शनं च गुरुके द्वे अपि दु खे ।

यया त्वं कार्यसे तस्यै नम आभिजात्यै ॥]

२. विपति । करोतिरश्वानुभवार्थकः । अतएव देवदत्तो दुःखमनुभवतीत्यर्थे दुःखे करो-
तीति प्रयोगः । आभिजात्यै कुलीनतायै । कृतज्ञानादौ बन्धुजनवाभ्यर्थना धर्मे बानुस्न्धानः
कुलीनतया मानुषागतोऽपि, न तु भेदेनेत्याशयः ॥

कथमयं गमनाय कृतारम्भोऽपि न प्रस्थित इति कस्यचित्प्रश्ने तद्वयसः सपरि-
हासमाह—

एँको वि कैलसारो ण देइ गन्तुं पैआहिणवलन्तो ।

किं उण घाहाउलिअं लोअणजुअलं पिअअमाए ॥ २५ ॥

[एकोऽपि कृष्णसारो न ददाति गन्तुं प्रदक्षिणं बलम् ।

किं पुनर्बाष्पाकुलितं लोचनयुगलं प्रियतमायाः ॥]

एक इति । पक्षे व्याधाकुलितम् । किं पुनरेति । लोचनयुगलमपि यतः कृष्णसार-
मिति भावः । एतेन वान्ताग्नेहनिगडबद्धोऽयं न गच्छतीति सूचितम् ॥

अनुनीयमानमप्यनुनयमवहन्त प्रणयिनी सप्रेमदण्डमाह—

ण कुणन्तो भिअ माणं णिसासु सुहमुत्तदरिमुद्धाणम् ।

सुण्णइअपासपेरिमूसणवेअणँ जइ सिजाणन्तो ॥ २६ ॥ ।

१. 'सदृसा प्रियेति न' इति ग-पाठः. 'असौ सेति' इति घ-पाठः. २. 'कारिज्ज' इति क-पाठः. ३. 'अभिजात्यै' इति ग-पाठः. ४. 'एको वि' इति क-पाठः. ५. 'किण्णसारो' इति ख-पाठः. ६. 'पाहिणवलन्तो' इति क-पुस्तके, 'दआहिण-वलन्तो' इति च ख पुस्तके पाठः. ७. 'वलन्' इति ग घ-पाठः. ८. 'नयनयुगलं' इति घ-पाठः. ९. 'परिमुण्ण' इति ख-ग-पाठः.

[नाकरिष्य एव मानं निशासु सुखसुप्तदरविषेदाम् ।

शून्यकृतपार्श्वैरिमोषणवेदनां र्यचशासः ॥]

नेति । निशासु स्वप्नान्तया सह सुखसुप्तानां किंचिद्विबुधानां ततोऽन्याभिसारिण्या
तया शून्यकृतेन पार्श्वेन अन्परिमोषणवचनं तेन या वेदना तां यद्यशासः सा वेदना यदि
त्वया ज्ञाता भवेत्तदा त्वं मानं नाकरिष्य एवेति संबन्धः । ममैवायं दोषः । यद्यहं पति-
प्रता न स्या तदा किं त्वमेव करोषीति भावः ॥

कृतकलद्दयोर्दपत्यो रात्रिद्वलाकलनार्थमागता प्रियसखी प्रणयरोपमन्त्रार्थमाह—

पणअकुविआणं दोहं वि अलिअपसुत्ताणं माणइहाणम् ।

णिच्चलणिरुद्धणीसासर्दिण्णकण्णणं को मल्लो ॥ २७ ॥

[प्रणयकुपितयोर्द्वयोरप्यलीकप्रसुप्तयोर्मानवतो ।

निश्चलनिरुद्धनिःश्वासदत्तकर्णयोः को मल्लः ॥]

पणएति । निश्चलेति । प्रयत्नवृत्तिनि श्वासत्वेन कृतकप्रसुप्तम्, तथापिपनि श्वासाकर्णन-
तत्परतया चाभिलाषित्वं सूचितम् । को मल्ल इत्युपालम्भप्रश्नः । न कोऽपीत्यर्थः । परस्पर-
राक्षणीरणासमर्थौ वृथैव युष्माकमात्मानं खेदयथ इति भावः ॥

काबिरूरी नायिवाया देवरात्रुरक्तत्वेनासाध्यत्वं सूचयन्ती जारं प्रत्याह—

णवलअपहरं अहे जहिं जहिं महइ देवेरो दावम् ।

रोमअदण्डराई तहिं तहिं दीसइ बहूए ॥ २८ ॥

[नवलताप्रहारमन्त्रे र्यत्र यत्रेच्छति देवरो दातुम् ।

रोमाद्यदण्डराजैस्तेन तत्र दृश्यते वध्याः ॥]

प्रोपितभर्तृका प्राणेशसमीपगामिनमन्त्र्यं सखीजनं वा तदानयनत्वरार्थमाह—

अज्ज मए तेण विणा अणुहूअसुहाई संभरन्तीए ।

अहिणयमेहाणं रवो णिसामिओ वज्झपट्हो व्व ॥ २९ ॥

१. 'न पुर्वेन्त्येव' इति घ पाठः. २. 'विबुधानाम्' इति घ पाठः. ३. 'परि-
मर्षण' इति ग घ-पाठः. ४. 'यदि हि जानन्ति' इति घ पाठः. ५. 'दोए वि'
इति ख-पाठः. ६. 'दिह' इति ग पाठः. ७. 'मानान्विनयो' इति ग पाठः. ८. 'प-
वलरूपहारमन्त्रे' इति ख पाठः. ९. 'देवरो दासु' इति ख पाठः. १०. 'वसिन्ध-
सिन्महति' इति ग-पाठः. ११. 'वसिन् तस्मिन्' इति ग-पाठः. १२. 'अनुभू-
तमुत्त' इति घ पाठः.

[अथ मया तेन विना अनुमृतमुखानि संस्मरन्त्या ।

अभिनवमेघानां रसो नितामितो बभूवपटह इव ॥]

अग्नेति । गर्जितप्रवनाद्रूपोत्पन्नमुखानि संस्मरन्त्या मया मेघानां सप्तो बभूव-
पटह इव बभूवस्यानं गीदमानस्य दोषयोः गगनपटहप्रभिरिव धृत इत्यर्थः । एतेन वर्षाक्षणा-
नपट्टति तस्मिन्प्रदुर्षानं मे भरत्नसिखवगम्य ययुक्त तद्विषीयतामिति सूचितम् ॥

मामपालपुत्र प्रति हृती कल्पाधित्संगमायोऽसाहयितुं सोपायम्भमाह—

‘निक्षिप्त जायामीरक दुर्दशनं निम्बकीटसंघट्ट ।

गामो गामिणिनन्दनं तुङ्ग एकं तद् वि तनुमाह ॥ ३० ॥

[निक्षिप्त जायामीरक दुर्दशनं निम्बकीटसंघट्ट ।

गामो गामिणीनन्दनं तव हृते तथापि तनुकायते ॥]

निक्षिप्तेति । अनुरक्तहृदिनीजननेमुक्त्याभिप्रेत्य । ‘निक्षिप्त’ इति पाठे निक्षिप्त
क्रियाशब्दः । जायामीरक आर्यापरतन्त्र । अत्र एवास्त्वच्छन्दप्रचारत्वाद्दुर्दशनं दुर्लभद-
शनं । निम्बकीटसंघट्ट, तिष्ठदचित्वादगुन्दरमद्विज्ञानुरागाच्च । अभिव्यदयितया द्वयोः
साम्यम् । गामिणीनन्दनेति भयशून्यताप्रदर्शनार्थं संबोधनम् । गामो गामिणीविविधा-
विनीजनः कथं त्वासंगमः । व्यादिति चिन्तया तनुकायते दुर्बलायत इति गामिनीजनानु-
रागहृदयेन वमनीयत्वं धर्मितम् ॥

कमपि शुभदयोविदभिलाषिण विगृह्यस्मरिणमुत्साहयितुं तस्याः पत्न्यावनिच्छया सु-
सत्ताम्यतां पुरस्स च शुभनिर्गमप्रवेगतया निरपायतां हृती सुभटलुतिव्यालेनाह—

पहृदयणमग्गविसमे जाया किञ्छेण लद्धे से जिहम् ।

गामणिउत्तस्स उरे पत्ती उणं सो मुहं भुवइ ॥ ३१ ॥

[प्रहारप्रणमार्गविषये जाया कुच्छेण लभते तस्य निद्राम् ।

गामिणीपुत्रस्योरसि पत्नी पुनः सो मुहं स्वपिति ॥]

पहरेति । उरे इति उरसि पुरे वा । प्रहारप्रणमार्गविषये निद्रोपतकर्मणे तस्योरसि
जाया कुच्छेण निद्रां लभते । अनिच्छन्त्यपि अयात्तमाठिजप स्वपितीत्यर्थः । पुरपसे
तु—प्रहारप्रणमार्गविषये प्रहारगम्यो यो वनमार्गस्तेन विषये कुतंभे । पत्नी, लक्षणया पत्नी-

१. ‘निक्षिप्त’ इति ग-पाठः. २. ‘दुर्दशनं’ इति ग-पाठः. ३. ‘निक्षिप्त’
इति घ-पाठः. ४. ‘निम्बकीट’ इति ख-पाठः. ५. ‘सदृश’ इति ग-घ-पाठः.
६. ‘तनुभवति’ इति ग-घ-पाठः. ७. ‘से’ इति क-ख-पाठः. ८. ‘मुहं’ इति ख-
पाठः. ९. ‘तस्य’ इति घ-पाठः.

निवासी जन , मुखं स्वपिति । न कोऽपि जग्गार्तात्यर्थः । जाया पुन कृच्छ्रेण । बहुव-
हभत्वात्तस्य तज्जाया सावसरैव । अतस्तत्र गच्छेति जारं प्रति इतीवच ॥

अन्यनायिकानाम्ना संघोधानुनयन्त खण्डिता सविनयोपालम्भमाह—

अह सभाविअमग्गो सुहअ तुए जेण्व णवरं णिव्वुहो ।

एहिं हिअए अण्णं अण्ण चाआइ लोअस्स ॥ ३२ ॥

[अय समावित्तमार्गः सुमग त्वयैव केवल निर्व्यूढ ।

इदानीं हृदयेऽन्यदन्यद्व्याचि लोकस ॥]

अहेति । इदानीं लोकस्य हृदयेऽन्यत् वाच्यन्यत् । तत्र तु यदेव हृदये तदेव व्याचि ।
यतो मा प्रति हृदयवाद्येनापि प्रियवचसा सैवानुनीता, न त्वहमिति भावः ॥

प्रणयकुपिता काचित्पृष्ठाभिमुखमुप्त कान्तमाह—

उह्माँ णीससन्तो किँति मह परम्मुहीएँ सअणदे ।

हिअअ पलीविअ वि अणुसएण पुट्ठि पलीवेसि ॥ ३३ ॥

[उष्णानि नि श्वसन्किमिति मम पराङ्मुख्या शयनार्थे ।

हृदय प्रदीप्याप्यनुशयेन पृष्ठ प्रदीपयसि ॥]

उह्माँति । शयनैकदेशे पराङ्मुख्यास्तवचित्तामकुर्वता इति भावः । मम हृदयम-
नुशयेन सपत्नीसमुत्कर्षजनितेन प्रदीप्योष्णैर्नि श्वापैर्मम पृष्ठ किं प्रदीपयसि । तामेव
वत्प्रभासुपगच्छ । अलीढदाक्षिण्येन मामात्मानं न किं खेदयसीति भावः ॥

इती कस्याधिद्विरदिप्या अवस्था नायक प्रत्याह—

तुह विरहे चिरआरअ तिण्णा णिवखन्तवाहमइलेण ।

रहरहसिहरधएण य मुहेण छाहि विअ ण पत्ता ॥ ३४ ॥

[तय विरहे चिरकारक तस्या निपतद्वाष्पमलिनेन ।

रविरयशिखरध्वजेनेव मुखेन च्छायैव न प्राप्ता ॥]

तुहेति । चिरकारक, अश्वधिविषलङ्घनात् । छाया काप्तिरातपाभायश्च । 'छाया
सूर्यप्रभा कान्ति प्रतिविम्बमनातप' इत्यमरः । तदेव विरहविधुरामनुकम्पस्वेत्याशयः ॥

नववधू प्रति सतीरुत्तशिक्षार्थं कापि बन्धुवधूराह—

दिअरस्स असुद्धमणस्स कुल्लवहू णिअअकुडुलिहिआइ ।

दिअइ कहेइ रामाणुल्लगसोमिस्तिचरिआइ ॥ ३५ ॥

१ 'व्येअ' इति ख-ग पाठ २ 'णिव्वुहो' इति ख पाठ ३ 'एहिहिं' इति ख-
पाठ ४ 'असौ' इति घ पाठ ५ 'कीस' इति ख पाठ ६ 'पलीविअ विअ' इति
क पाठ, 'पलीअ वि उ' इति ख-पाठ ७ 'तिस्सा' इति क ख पाठ ८ 'कुलव-
हुआ' इति क पाठ ९ 'णिअकुडु' इति क ख पाठ

[देवरसाशुद्धमनसः कुलवधूर्निजककुब्जलिखितानि ।

दिवसं कथयति रामानुलससौमित्रिचरितानि ॥]

दिबरस्सेति । अयमाशयः—कुलवधूनिजककुब्जलिखितानि । विविक्तं तन विमातृजेऽपि रामे सभायेऽनुलसमनि सङ्गमणस्य चरित्राणि कथयित्वा दुष्टहृदयो देवरः प्रत्याख्येयः, न ॥ प्रकटम् । कुटुम्बविषयनादिभयादिति भावः ॥

सतां सत्यपि विनाशकारणे विनाशो न भवतीत्यसती स्वदोषप्रच्छादनार्थमाह—

चत्तरघेरिणी पिअदंसणा अ तरुणी पडत्यपइआ अ ।

असईसपल्लिआ दुग्गआ अ ण हु रण्हिअं सीलम् ॥ ३६ ॥

[चत्तरघेरिणी प्रियदर्शना च तरुणी प्रोषितपतिका च ।

अससीप्रैतिवेशिनी दुर्गता च न खलु खण्डितं शीलम् ॥]

चत्तरेति । चत्तरे राजमार्गे गृह यस्याः । प्रियदर्शना सुन्दरी । असत्याः कुलदायाः प्रतिवेशिनी । अत्र चत्तरघेरिणीत्वादे शीलखण्डनकारणस्य सख्येऽपि तदभावाद्विशेषोक्तिरलङ्कारः—‘विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावयः’ इति तत्तत्प्रकाशः ॥

नदीतटकदम्बनिकुञ्जदत्तसंकेतेन कान्तेन विप्रलम्भा नाथिका ‘तत्राहं गता, खं तु नागतः’ इति तं भावयन्ती सखीजनमाह—

तालूरभमाडलखुडिअकेसरो गिरिणरैएँ पूरेण ।

वरखुडुवुडुणिवुडुमहुअरो हीरइ कलम्बो ॥ ३७ ॥

[जलावर्तभ्रमाकुलखण्डितकेसरो गिरिण्याः पूरेण ।

दरमप्रोन्मप्रनिमप्रमधुको हियते कदम्बः ॥]

तालूरेति । तालूरो जलावर्त इति देशी । जलावर्तानां भ्रमो भ्रमणं तेनाकुलः । अत एव खण्डितकेसरः । अत्र भ्रष्टकेसरतया गलितमकरन्देऽपि कदम्बे भ्रमरहृदयेयमीदृशी दृढोद्देहता । तत्र तु अखु तावत्प्रेम्णविरानुबन्धः, संप्रत्येवाहं स्वयां छलितेति सरोव उपालम्भः ॥

दूती कामुकं प्रति कस्याधित्वप्रताया धनावसाध्यतां प्रतिपादयन्ती आह—

अहिआजमाणिणो दुग्गअस्स छाहिँ पँअस्स रक्खन्ती ।

णिअवन्धवाणँ जूरइ घरिणी विह्वेण एत्ताणम् ॥ ३८ ॥

१. ‘घरणी’ इति क-पाठः. २. ‘सहजिजा’ इति क-पुस्तके, ‘सअजिजा’ इति च ख-पुस्तके पाठः. ३. ‘सहवासिनी’ इति ग-पाठः. ४. ‘भ्रमाखण्डित’ इति ग-पाठः. ५. ‘स्फुटितकेसरो’ इति घ-पाठः. ६. ‘दरमप्रोन्मप्रनिमप्रमधुको’ इति ग-पुस्तके, ‘दरमप्रोन्मप्रनिमप्रमधुको’ इति च घ-पुस्तके पाठः. ७. ‘पदअस्स’ इति क-पुस्तके, ‘पिअस्स’ इति घ-पुस्तके पाठः.

[आभिजात्यमानिनो दुर्गतस्य छायां पत्यु रसन्ती ।

निजैवान्धवेभ्यः कुम्भवति गृहिणी विमरेनौगच्छन्त्यः ॥]

अहिआएति । 'पत्ताणम्' इति पाठे प्राप्तेभ्य इत्यर्थः । छायां महत्त्वम् । पति-
वित्तानुवृत्त्यर्थं मन्धुजनस्याप्युपहारं न बहु मन्यते । किं पुनः कामिजनस्येति भावः ॥

कामुकैजनाभियोगनिरासार्थं दूती स्वाधीनपतिकायाः सुवर्तितमाह—

साहीणे वि पिअअमे पत्ते वि रणे ण मण्डिओ अप्पा ।

दुग्गाअपउत्थवइअं सअअिअं सण्ठवन्तीए ॥ ३९ ॥

[स्वाधीनेऽपि प्रियतमे प्राप्तेऽपि क्षणे न मण्डित आत्मा ।

दुर्गतप्रोषितपतिकां मतिवेशिनीं संस्थापयन्त्या ॥]

साहीण इति । क्षणे मदनमहोत्सवादी प्राप्तेऽपि प्रतिवेशिनीं संस्थापयन्त्या अनुदिमां
कुर्वन्त्या । कदाचित्कृतमण्डनो मामवलोकयेद्यमुदिमा खण्डितचरित्रा स्यात् इत्याशाहया
या आत्मानं न मण्डयति तस्या दूरे खसीलखण्डनसाहस इति भावः । अथवा प्रतिवे-
शिनीस्थापनार्थमनया मण्डनं न कृतम्, न तु कामुकान्तरविरहप्रियेति सपीदोपप्र-
च्छादमार्थं सख्या वचनमिदमिति ॥

नायिकानुरागकथनेन इती नायकमनुकूलयितुमाह—

तुम्ह पैसइ चि हिअअं इमेहिं दिट्ठो तुमं ति अँच्छीहिं ।

तुह विरहे किर्सिआई तिए अङ्गाई वि पिआइ ॥ ४० ॥

[तव प्रसतिरिति हृदयमाभ्यां दृष्टस्त्वमित्यक्षिणी ।

तव विरहे केशितानीति तस्या अङ्गान्यपि प्रियाणि ॥]

काचिरखण्डिता बहुधा कृतश्रुतीकमनुनयन्तं नायकमाह—

सवभावणेहभरिए रत्ते रज्जिअइ चि जुत्तमिणम् ।

अणहिअए उण हिअअं जं दिज्जइ तं जणो असह ॥ ४१ ॥

१. 'अभिजाति' इति ग-घ-पाठः. २. 'निजवान्धवाभिन्दति' इति ग-पाठः.
३. 'आगच्छतः' इति ग-पुस्तके, 'गच्छन्त्यः' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४. 'उत्सवे'
इति ग-पाठः. ५. 'स्थापयन्त्या' इति घ-पाठः. ६. 'वसदिति' इति क-पाठः.
७. 'अच्छिदम्' इति ख-ग-पाठः. ८. 'किर्सिआअ' इति क-पाठः. ९. 'केशितानीति'
इति ग-पुस्तके, 'कृशानीति' इति घ-पुस्तके पाठः.

रहस्यमुपाये पृच्छन्ती । अनेन अस्तु तावद्विरहः, तव गमनसमय एव मुग्धाया जीवि-
तांश सद्विरधेति ध्वनितम् ॥

वाचित्वाधीनमर्तुं वा पत्युरनन्यपरताकथनेनान्यकामिन्यवकाशनिरासाय स्वसौम-
ग्यमाह—

अण्णमहिलाप्रसङ्गं दे देव करेसु अम्ह दइअस्स ।

पुरिसा एकन्तरसा ण हु दोसगुणे विआणन्ति ॥ ४८ ॥

[अन्यमहिलाप्रसङ्गं हे देव कुर्वन्नाकं दयितस ।

पुरुषा एकान्तरसा न खलु दोषगुणौ विजानन्ति ॥]

अण्णेति । देशब्दः साधुनयसंशोधने । हे देव, अस्माकं दयितस्यान्यमहिलाप्रसङ्गं
कुरु । खलु यस्मात् पुरुषा एकान्तरसा गुणदोषौ न जानन्ति । अन्तश्चन्द. स्वरूपवाची ।
एकरसा इत्यर्थः । यद्वा पत्युरनन्यपरताप्रार्थनेनावसरमिच्छन्त्या प्रच्छन्नरताभिलाषो जातं
प्रति सूच्यते ॥

स्वयं वृत्ती पथिकमाह—

थोअं पि ण गीसरई मज्झण्णे उह सरीरवळलुका ।

आअवभएण छाही वि पडिअ ता किं ण बीसमसि ॥ ४९ ॥

[लोकमपि न नि सरति मध्याह्ने पश्य शरीरतललीना ।

आतपभयेन छायापि पथिक तर्कि न विश्राम्यसि ॥]

थोअमिति । आतपखिन्नाः पथिका यस्यां छायायां विश्राम्यन्ति, सा अप्पेतना
छायाप्यातपभयेन बहिर्न निष्कामति, किं पुनश्चेतन इति । ततश्च मध्याह्ने कोऽपि
बहिर्न निर्मातीति विविक्कनिरपायमध्याह्नाभिसारमुखमनुभवात् इत्याशयः ॥
विरहोत्कण्ठिता ज्वरछायाछयेन विरागतकान्तोपालम्भमाह—

सुहउच्छअं जणं दुल्लहं पि दूराहि अम्ह आणन्त ।

उअआरअ जर जीअं पि णेन्त ण कआवराहोऽसि ॥ ५० ॥

[मुखपृच्छकं जनं दुर्लभमपि दूरादस्माकमानयन् ।

उपकारकं ज्वर जीवमपि नैवेद्यं कृतापराधोऽसि ॥]

१. 'देव' इति क-पाठः. २. 'विजानन्ति' इति क-पाठः. ३. 'अन्यलोप्रसङ्गं'
इति ग-पाठः. ४. 'कुरुष्वस्माकं' इति घ-पुस्तके, 'कुरुष्वस्माद्' इति च ग-पुस्तके
पाठः. ५. 'एकत्ररसा' इति ग-पाठः. ६. 'उव सरीरवळ' इति क-पाठः. ७.
'आणेत' इति ग-पाठः. ८. 'उवआरअ' इति क-पाठः. ९. 'दूरान्मम हते' इति
ग-पाठः. १०. 'दुल्लभ' इति ग-पाठः.

सुहेति । सुहृच्छ्रमशब्दोऽस्वास्थ्यवार्ताकारके । तेन लोकमयादागतम्, न ॥
 ज्ञेयादिति भावः । अस्माकं दुर्लभमपि दद्यादानयन् । अत एव दुर्लभप्रियानयनदुप-
 कारक उग्र, जीवमपि नयन कृतापराधोऽसि । एवं मां प्रत्यग्रेहे त्वयि मम, मरणमेव
 श्रेयः । तच्च त्वदर्शनपूर्वक साधयता उग्रेण ममोपकार एव कृतो न त्वपकार इति भावः ॥

रागिदता वाचितुमुग्रप्रद्वार्यमाणत कान्तं प्रति सेष्यमाह—

आमजरो मे मन्दो अहव ण मन्दो जणस्स का तन्ती ।

सुहृच्छ्रम सुहृअ सुअन्धअन्ध मा अन्धिअं छिवसु ॥ ५१ ॥

[आमज्वरो मे मन्दोऽयवा न मन्दो जनस्य वा चिन्ता ।

सुखपृच्छक सुभग सुगन्धगन्ध मा गन्धितां स्पृश ॥]

आमेति । अजीर्णोत्पन्नो उग्र आमज्वरः । त्वयि क्रोधेन रात्रौ जागरणादिति
 भावः । आमशब्दः सेष्यानुमतादिति केचित् । जनस्योदासीनस्य महुःखादु क्लितस्य
 भवतः किमनेन प्रधेनेति भावः । हे सुखपृच्छक अस्वास्थ्यवार्ताकारक, बहुवल्लभस्वा-
 सुभग, प्रियाहसकसकान्तपरिमलवत्सुगन्धगन्ध, गन्धितां संजातउदरगन्धां मां मा
 स्पृश । मदहृत्पर्शसंकान्तउग्रगन्धः सन् प्रेयस्याः कृतापराधो आ भूरित्याशयः ॥

रतिरभसात्कान्तमाक्षिप्यारब्धपुरुषायितां सौकुमार्यादस्पायासेनैव धान्तां कान्तः
 सहासमाह—

सिद्धिपिच्छलुल्लिअकेसे वेवन्तेरु विणिमीलिअद्धच्छि ।

दरपुरिताइरि विसुमरि जाणसु पुरिसाणं जं दुःखम् ॥ ५२ ॥

[सिद्धिपिच्छलुल्लितकेशे वेपमानोरु विनिमीलितार्धाक्षि ।

ईपैत्पुरुषायिते विभ्रामशीले जानीहि पुरुषाणां बहुखम् ॥]

पूर्वं निष्कासितस्य पुनरुपाजितवैभवस्य भुजंगस्य समागमाय प्रेरयन्तीं जननीं प्रति
 वैयाह—

पेम्मरस्स विरोहिअसंधिअस्स पचकरदिट्ठविल्लिअस्स ।

उअअस्स ये ताविअसीअलस्स चिरसो रसो होइ ॥ ५३ ॥

[प्रेम्णो विरोधितसंधितस्य प्रत्यक्षदृष्टव्यलीकस्य ।

उदकसेव तापितशीतलस्य विरसो रसो भवति ॥]

१. 'गन्धिते' इति क-ख-पाठः. २. 'गन्धशीला' इति घ-पाठः. ३. 'दरपुरिता-
 यिते' इति ग-मुक्तके, 'दरपुरायितशीले' इति च घ-मुक्तके पाठः. ४. 'विलभस्स'
 इति क पाठः. ५. 'सि' इति क-पाठः. ६. 'संहितस्य' इति ग-पाठः.

पेम्मस्सेति । प्रत्यक्षेति ध्रुवेऽनुमिते च विप्रिये प्रतीकारः सम्भवति । दृष्टे तु नारत्तीति भावः । पर्युपास्यमानोऽप्यसौ नानुरक्तो भविष्यति किमिहस्थाने मां प्रेरयसीति भावः ॥ बहुशोऽनुभूतेऽयं भविष्यत्यपि भूतवत्प्रत्ययो भवतीति निदर्शयन्कथिद्वन्द्या पतिसौ यैवदुमानमाह—

वज्रपट्टणाइरिक्क पट्टणो सोऊण सिञ्जिणीघोसम् ।

पुसिआइ करिमरिणें सरिसवन्दीण पि णअणाइ ॥ ५४ ॥

[वज्रपतनातिरिक्क पट्टु युवा शिञ्जिनीघोषम् ।

प्रोञ्जितानि च या सैदृशवन्दीनामपि नयनानि ॥]

वज्रति करिमरी वन्दी । अतिचमत्कारकारित्वाद्वाज्रपतनातिरिक्कम् । 'मौर्वी ज्या शिञ्जिनी शुण' इत्यमरः । आगतो मे अर्ता भवतीरपि मोचयिष्यति । तत्किमद्यापि खेनेति भावः ॥

बन्धा पाताभिलाषधोर्युवा पतिसौयामिमामिन्यास्तस्या उसाहमहापमाह—

करिमरि अआलगजिरजलआसणिपडनपडिरवो एसो ।

पट्टणो धणुरवकड्डिरि रोमअ किं मुहा वहसि ॥ ५५ ॥

[वेदि अकालगर्जनशीलपलदाशनिपतनप्रतिरथ एव ।

पत्युर्धनूरवाकौह्वणशीले रोमाश्च किं मुधा वहसि ॥]

भुजगात्तरप्ररोचनाय दुहितुः सौकुमार्यातिशयः सुरतक्षमत्वं च ह्यापयन्ती वैस्या-
माता भुजगनिदाहलेनाह—

सहइ सहइ ति तह तेण रमिआ सुरअदुर्विदग्धेण ।

पम्माअसिरीसाइ व अह से जाआई अङ्गाइ ॥ ५६ ॥

[सहते सहत इति तथा तेन रमिता सुरतदुर्विदग्धेन ।

प्रम्लानशिरीषाणीव यथासा जाता यद्गानि ॥]

सहइति । सुरतदुर्विदग्धेन सुरतावसानानभिज्ञेन ॥

नायक प्रति कस्याञ्चिदनुरागातिशयः प्रतिपादयन्ती इती भाह—

अगणिअसेसजुआणा वालअ वोलीणलोअसज्जाआ ।

अह सा भमइ दिसामुहपसारिअच्छी तुह कएण ॥ ५७ ॥

१ अच्छीहि इति ख-पाठ, 'अस्महि' इति च क-पाठ २ 'ज्याशब्दम्' इति ग-पाठ ३ 'सहज-दीना' इति घ-पाठ ४ 'करमर्यकालगर्जितजलदा' इति ग-पाठ ५ काङ्ठिणि इति ग-पाठ ६ 'रमिआ' इति क-पाठ ७ दुर्विदग्धेन इति क-पाठ ८ 'पम्माइअ' इति क-पाठ ९ 'यथा तस्या' इति घ-पाठ

[अगणिताशेषयुवा बालक व्यतिक्रान्तलोकमर्यादा ।

अथ सा भ्रमति दिशामुखप्रसारिताक्षी तव कृतेन ॥]

अगणितीति । हे बालक, स्त्रीरत्नपरिहारात् स्त्रीवधपातकाचिन्तनाच्च हिताहितान-
भिज्ञ, न गणिताः शेषास्त्वदन्ये युवानो यया सा, लज्जालागात्त्यक्तलोकमर्यादा, सा पू-
र्वोक्तसीन्द्रियार्थनेकगुणा तव कृतेन त्वदर्शनेच्छया दिक्षुक्षेपु प्रसारिताक्षी सती भ्रमति ।
यावद्दशमीमवस्था गच्छति तावदेनामनुकम्पस्वेति भावः ।

बहुवह्नमस्य साध्वी काचिन्नायिका श्वभूँ प्रति भर्तृशौर्यं प्रकाशयन्ती असतीसपत्नी-
नामभिसारसज्जता सूचयति—

अज्ज ङवेअ पउत्थो उज्जाअरओ जणस्स अज्जे अ । ५८ ।

अज्जे अ हलिहापिअराइँ गोलाणइअडाइँ ॥ ५८ ॥

[अयैत्र प्रोषित उज्जागरको जनस्यायैव ।

अयैव हरिद्रापिञ्जराणि गोर्दानदीतटानि ॥]

अज्जेति । मम पतिरयैव प्रोषितः । अर्थात्सङ्ग्रामप्रसङ्गेति लभ्यते । जनस्योज्जाग-
रोऽयैव । चोरादिभयात् अभिसरणाभियोगाच्चेति भावः । गोदावरीतीराण्ययैव हरिद्रा-
पिञ्जराणि । हरिद्रोद्धर्तिताङ्गप्रक्षालनेनासतीनामङ्गराण्यमृदणादिति भावः ॥

बन्धुवधू कुलवधूश्चिन्तार्थं सतीरतमाह—

असरिसचित्ते दिअरे सुद्धमणा पिअअमे विसमसीले ।

ण कइइ कुटुम्बविहङ्गमएण तणुआअए सोहा ॥ ५९ ॥

[असदृशचित्ते देवरे शुद्धमनाः प्रियतमे विषमशीले ।

न कथयति कुटुम्बविघटनभयेन तनुकायते स्रुषा ॥]

असरिसेति । असदृशचित्ते दुष्टचित्ते । प्रकाशयमानं यदोपावहं तद्रोष्यमिति भावः ॥
कलहान्तरितायाः सखी तत्कान्तेन तद्भावविज्ञासार्थं पृष्ट्वा तमाह—

चित्ताणिअदइअसमागमम्मि कअमण्णुआइँ भरिऊण ।

सुण्णं कलहाअन्ती सहीहिँ रुण्णा ण ओहसिआ ॥ ६० ॥

१. 'अगणिताशेषयुवका' इति ग-घ-पाठः. २. 'गोलाणइअ तद्दाइँ' इति क-मु-
स्तके, 'गोलाए तद्दाइँ' इति च ख-पुस्तके पाठः. ३. 'उज्जागरणमपि' इति ग-पाठः.
४. 'गोदावरीनया' श्रोतावि' इति ग-पुस्तके, 'गोदावर्यास्तीराणि' इति घ-पुस्तके,
'गोदायाः कूलानि' इति च ख-पुस्तके, पाठः. ५. 'शुद्धमनस्का' इति ग-पाठः.
६. 'चिन्ताणिइअ' इति क-पाठः.

[चित्तानीतदयितसमागमे कृतमन्युकानि स्मृत्वा ।

शून्य कैलहायमाना सखीमी रुदिता नोर्हसिता ॥]

चिन्तेति । कृतो मन्युर्येतानि कृतमन्युकानि । मन्युकारणानीत्यर्थः । सखीमी रु-
दिता शोचितेत्यर्थः । कार्येण रोदनेन स्वकारणीभूतस्य शोकस्य लक्षणात् 'रुदि' धातोर्-
कर्मकत्वाद्यपाधुतस्यासंगते त्वदनुयानपरायास्तस्यास्तथाविध मन्मथोन्मादमवैरप
सखीभिस्तथा प्रति शोक कृत, न पुनरुपहासकारणे सत्यप्युपहास इति भावः ॥

प्रच्छन्नरताभिलाषिण नागरिक प्रति कुलजाभिसारिका सवेदाभ्यमाह—

हिंभअण्णएहिं समअ असमत्ताइ पि जह सुहावन्ति ।

कंजजाइ मणे ण तद्वा इअरेहिं समाविआइ पि ॥ ६१ ॥

[हृदयत्रै सममसमाप्तान्यपि यथा सुखयन्ति ।

कार्याणि मन्ये न तथा इतरै र्हीमापितान्यपि ॥]

हिमपति । हृदयत्रैरिहितत्रै । इतरैरनिहितैरगूढाकारैश्च । एतेन त्वद्विधविदग्धेन
सम संकल्पसमागमोऽपि वरम्, न पुन पामरसमागम इति सूचितम् । यद्वा स्वर्ग-
दस्य पामरताप्रकाशनेन तद्विषयस्य विरागो जायते प्रत्यनुरागश्च सूचितः । अथमानुक्तो
प्रति सखीवचनः वा ॥

कोमलाम्राङ्गप्रदर्शनेन घनागम सूचयती कांता कान्तस्य गमनाक्षेपार्थमाह—

ददपु डिअसिप्पिसपुडणिलुकहालाहलाम्गळेप्पणिहम् ।

दैकम्बट्टिविणिग्गअकोमलमम्बडुर उअह ॥ ६२ ॥

[ईषत्स्फुटितशुक्तिसपुटनिर्लीनहालाहलामपुच्छनिभम् ।

पद्माग्रास्थिविनिर्गतकोमलमाग्राङ्गुर पश्यतः ॥]

दरेति । हालाहलो 'वैष्णविवा' इति प्रसिद्धो जन्तुविशेषः । 'हालाहलो मद्गर्ध्वे'
इति मेदिनीशब्धः । निम्नीनान्त हालाहलविशेषणम् ॥

१ 'कृतमन्यु' संस्कृतम् इति ग-पाठ २ 'कलहाय'ती इति ग-पाठ

३ 'न पुनर्हसिता' इति घ-पाठ ४. 'हिंभअण्णएहिं' इति घ-पाठ ५. 'सु-
हावेति' इति ख-ग-पाठ. ६ 'समाप्तान्यपि' ग घ-पाठ ७ 'निम्बट्टि' इति
क-ख-पाठ ८ 'निम्बट्ट' इति ग-पाठ ९ 'ओदनीति' प्रसिद्धो जन्तु इति
कुलशालदेव

असत्वररतप्रवृत्तये गृहस्य जनसंचारशून्यतां सूचयितुं आरं वान्यमनस्कं कर्तुं
अचिदाह—

उअह पडलन्तरावतीर्णनिजकतन्तूर्ध्वपादप्रैतिलमम् ।

दुल्लवस्यसुत्तर्गुत्येकवडलकुसुम व मक्कडमम् ॥ ६३ ॥

[पश्यत पडलान्तरावतीर्णनिजकतन्तूर्ध्वपादप्रैतिलमम् ।

दुल्लवस्यसुत्तर्गुत्येकवडलकुसुममिव मर्कटकम् ॥]

उअहेति । पडलान्तरावतीर्णं निजकतन्तौ ऊर्ध्वपादैः प्रतिलम मर्कटक सूतां प-
श्यत । ‘अथ मर्कटकं सस्यभेदे वानरत्नयो’ इति मेदिनी ॥

पुराणदेवकुलस्य निर्जनतां सूचयन्ती कुलटा आरमाह—

उअरि दरदिट्ठधैण्णुअणिलुक्कपारावआणं विरुएहिं ।

णित्थणह जाअवेअणं सूलाहिण्ण व देवेलमम् ॥ ६४ ॥

[उपरीपट्टशङ्कुनिलीनपारावतानां विरुतैः ।

निस्तनति जातवेदनं शूलाभिन्नमिव देवकुलम् ॥]

उअरीति । ईषादिति कलशस्य भग्नत्वात्किञ्चिदवशिष्टकीटकं देवकुलं निलीनानां
पारावतानां विरुतैः स्तनति । एतेन रतिसमये पारावतवतानुकारि कण्ठभूजितममन-
सिद्धम्, क्रियमाणमप्यनुपलब्धत्वादविद्वद्वमिति सूचितम् । नायकस्य दीर्घरमणार्थं
चमत्कारमुत्पादयितुं शूलाभिन्नमिवैस्तुल्यप्रेक्षणम् । तथा च कामशास्त्रम्—‘कण्ठलिनीका-
मनकदरादौ दुःखाश्रये चार्पितचित्तवृत्तिः । मृदुदुतारम्भमभिनयैश्च श्रयोऽपि दीर्घ-
रमणे रतेषु ॥’ इति ॥

‘निजमर्तुरेवाप्रियासि, तत्किं तव मया दुर्भगया’ इति निरस्यन्ती नायिका प्रति
साभिलाषं कविदाह—

जह होसि ण तस्स पिआ अणुदिअह णीसहेहिं अन्नेहिं ।

णवसूअपीअपेऊसमच्छर्पाडिक्ख किं सुवसि ॥ ६५ ॥

[यदि भवसि न तस्य प्रियानुदिवसं नि सहैरुहं ।

नवसूतपीतपीयूषमत्तमहिपीवत्सेन किं स्वपिषि ॥]

१ ‘गुच्छेक’ इति क-ख पाठ २ ‘परिलमम्’ इति ग पाठ ३ ‘खण्णुअणि-
लीण’ इति क पाठ ४ ‘दिअउलम्’ इति ग पाठ ५ ‘उपरि दरदृष्ट्याणुकनिलीन’
इति ग पाठ ६ ‘दिवलकम्’ इति क-पाठ ७ ‘ता दिअह’ इति ग-पाठ ८ ‘प-
ट्टिण्व’ इति ग पाठ ९ ‘प्रिया तद्विवस’ इति ग पाठ

जईति । यदि तस्य प्रिया न भवति तर्हि निःसहैः सुरतश्रमस्त्रिभैरत्तैरपलक्षिता त्व
नवप्रसूतायाः पीठेन पीयूषेणाभिनवदुग्धेन मत्ता महिषोवत्सेव किं स्वपिपि । 'पीयूषं
सप्तदिवसावधिधीरे तथाभूते' इति मेदिनीकोषः । 'पीयूषममृते नव्यसूतधेनोः पयस्यपि'
इति तु हैमः । सश्रमः सुरतजागर एव ते सौभाग्यं व्यनकीति भावः । पादौ महिष-
पोत इति देशी ॥

अनापवादभोता बन्धुवधू प्रोषितपतिकं कुलशामाह—

हेमन्तिआसु अइदीहरासु राईसु तं सि अविणिदा ।

चिरअरपउत्थवइए ण सुन्दरं जं दिआ सुवसि ॥ ६६ ॥

[हैमन्तिकास्त्रैतिदीर्घासु रात्रिषु त्वमसविनिद्रा ।

चिरतरप्रोषितपतिके न सुन्दरं यदिवा स्वपिपि ॥]

हेमन्तीति । अविनिद्रेति जागरहेतोः प्रियसंभोगस्याभावाभिद्राविच्छेदशून्येत्यर्थः ।

न सुन्दरम् । असतीशङ्काहेतुत्वादयुक्तमित्यर्थः ॥

कर्ममघादुत्प्लुत मम पदस्थाने तथा पदं ग्यस्तं न त्वनुरागादिति प्रिया निह्वानं
काचिदाह—

जइ चिक्खत्तमलउत्थअपअमिणमलसाइ तुह पए दिण्णम् ।

ता सुहअ कण्टइज्जन्तमङ्गमेहिं किणो वहसि ॥ ६७ ॥

[यदि कर्ममघोत्प्लुतपदमिदमलसया तव पदे दत्तम् ।

तत्सुभग कण्टकितमङ्गमिदानीं किमिति वहसि ॥]

जईति । अलसया मन्दगमनया । यदीयं तव प्रिया न भवति तदा कथमनया तव
पदस्थाने स्पृष्टे रोमाक्षस्ते जात इति भावः ॥

अत्यन्तमनुरक्तस्यापि दानविमुखस्य भुजगस्योपालम्भार्थं दुहितृशिक्षार्थं च दै-
श्यामाताह—

पत्तो छिणो ण सोहइ अइप्पहाअम्मि पुणिणमाअन्दो ।

अन्त विरसो अ कामो असंपआणो अ परिओसो ॥ ६८ ॥

[प्राप्तः क्षणो न शोभते अतिप्रभात इव पूर्णिमाचन्द्रः ।

अन्तविरस इव कामो असंप्रदानश्च परितोषः ॥]

१. 'अइदीहरायु' इति क-पाठः. २. 'हैमनीषु' इति ग पाठः. ३. 'अतिदीर्घ-
तरायु' इति क ख-पाठः. ४. 'त्वमसि विनिद्रा' इति ग-पाठः. ५. 'भयदुत' इति
घ-पाठः. ६. 'कण्टकायमानं' इति घ-पाठः. ७. 'किं वहसि' इति घ पाठः.
८. 'खणो' इति ख-पाठः. ९. 'प्राप्त उत्सवो' इति ग पाठः. १०. 'प्रभाते पूर्णिमा'
इति क पाठः. ११. 'अन्तविरसश्च' इति ग-पाठः.

पत्तो इति । प्राप्तोऽतिक्रान्त क्षण उत्सवो न शोभते । अत्र दृष्टात — अतिप्रभाते पूर्णिमाचन्द्र इव । सप्रदानरहितश्च परितोषो न शोभते । अत्र दृष्टात — अन्तविरस काम इव । एव च 'अङ्गणह्यव्व पुण्णिमाअ दो । अतविरसोव्व कामो इत्येव युक्त पाठ ॥

विज्ञा उपक्रम एव अत्र विरुद्ध च जानतीति दर्शयन्निदाह—

पाणिग्रहणे त्विअ पळ्वइँएँ णाअ सहीहिँ सोहग्गम् ।

पमुवइणा वासुइकङ्कणम्मि ओसारिए दूरम् ॥ ६९ ॥

[पाणिग्रहण एव पार्वत्या ज्ञातं सखीमि सौभाग्यम् ।

पशुपतिना वासुकिकङ्कणैःपसारिते दूरम् ॥]

पाणीति । पार्वत्या भयपरिहारार्थं वासुकेरपसारणं दृष्ट्वा तस्यामनुरागातिशयरूपं सौभाग्यं ज्ञातमिति भावः ॥

नवमेघोदयदर्शनाद्गोष्मात्तस्यावधेर्लङ्घनं तथा दधितस्यान्धवनिताप्रसक्तिं समाब्योद्विजाया प्रोषितपतिशया समाश्वासनार्थं सखी आह—

गिन्हे दवग्गिमसिमइलिआई दीसन्ति विज्झसिहराइ ।

आसमु पडत्थवइए ण होन्ति णवपाडसठ्माइ ॥ ७० ॥

[भीष्मे दधामिमघीमलितानि दृश्यन्ते विध्यशिखराणि ।

आश्वसिहि प्रोषितपतिके न भयति नवप्रावृडभ्राणि ॥]

कापि प्रथमसंगमेऽनुरागातिशयं दर्शयन्त बहुवचनं कातमादिमप्यावसानेष्वेकहयप्रणयानुदृत्यर्थमाह—

जेत्तिअमेत्त तीरई णिब्बोदुँ देसु तेत्तिअ पणअम् ।

ण अणो विणिअत्तपसाअदुँक्खसहणक्खमो सखो ॥ ७१ ॥

[यावमानं शक्यते निर्वाहुं देहि तैर्यत प्रणयम् ।

न जनो विनिवृत्तप्रसाददुःखसहनक्षयं सर्वं ॥]

जेत्तिएति । विनिवृत्तो यः प्रसादं प्रणयस्तत्र जातं यदु यत्तत्सहनक्षयं इत्यर्थः । एताननुभूतप्रणयसण्डनात्त्वदनुरक्ताह त्वया प्रणयसण्डने कृते न जीवामीति सूचितम् ॥

१ 'पाण' इति ख पाठ २ 'इय' इति ग पाठ ३ 'निर्वाहयितुं ददस्व' इति ग पाठ ४ 'तावमान' इति घ पाठ

‘प्रिये, त्रिवेवमद्यापि प्रणयवैगुह्यं तव’ इति प्रियेणोक्ता मानिनी तस्याः स्थिरभेद-
तामात्मनथानुरागमाविष्कुर्यन्ती तमाह—

यदुवल्लहस्स जा होइ चहदा फह वि पञ्चदिअहाई ।

सा किं छेट्टं मग्गई कुतो मिट्ठं अ वेहुअं, अ ॥ ७२ ॥

[यदुवल्लभस्य या भवति वल्लभा कथमपि पञ्च दिवसानि ।

सा किं पट्टं मृगयते कुतो मृष्टं च बहुकं च ॥]

यदु इति । वल्लपो यज्जभा यस्य स बहुवल्लभस्तस्य या वल्लभा भवति सा कथंचित्पञ्च-
दिवसानि मृगयते । सा विदितकान्ताभिप्राया पट्टं दिवसं किं मृगयते । नैव मृगयत
इत्यर्थः । कुतो न मृगयत इत्याशङ्क्याह—कुतो मृष्टं च बहुकं चेति । मुहृतातिशयक-
भ्यमेतत् कुतो मे मन्दभागयाया इत्याशयः । ‘वा तु क्लीबे दिवसमासरी’ इत्यमरः । यद्वा
अभिमतप्रियस्य सदा संभोगात्ताभास्तिष्ठमाना नायिका बोधयन्त्याः सख्या इयमु-
क्तिरिति ध्येयम् ॥

कापि पलायन्ययोपावकाशनिरासार्थं स्वसौभाग्यमात्मनश्च पलायनुरागमाह—

जं जं सो णिज्झाअइ अँडोआसं महं अणिमिस्सच्छो ।

पच्छाएमि अ तं सँ इच्छामि अ तेण दीसन्तम् ॥ ७३ ॥

[यद्यत्स निर्व्यायत्यङ्गावकाशं गमानिमिषाक्षः ।

प्रच्छादयामि च तं तमिच्छामि च तेन दृश्यमानम् ॥]

ज जमिति । निर्व्यायति पश्यति ॥

वल्लहान्तरितायाः सखी तत्कान्तमनुनयान् प्रोत्साहयितुमाह—

दिढमण्णुदूमिआएँ वि गहिओ दइअम्मि पेच्छह इमाए ।

ओसरइ वालुआमुट्ठि उँव्व माणो सुरसुरन्तो ॥ ७४ ॥

[दृढमण्युद्धनयोपि गृहीतो दयिते पश्यतानया ।

अपसरति वालुकामुष्टिरिव मानः सुरसुरायमाणः ॥]

दिदेति । दृढमण्युद्धनयाप्यनया दयितया दयिते गृहीतो मानः सुरसुरायमाणो वालु-
कामुष्टिरिवापसरतीत्यन्वयः ॥

१. ‘मग्गई छट्ट’ इति ग-पाठः. २. ‘बहुल’ इति ख-पाठः. ३. ‘मार्गयति’ इति
ग-पाठः. ४. ‘मिष्ट’ इति क ख-पाठः. ५. ‘अजं आसम्मि मह’ इति ग-पाठः. ६. ‘अज
पार्थे मम’ इति ग-पाठः. ७. ‘दुम्मिआएँ’ इति ग-पुस्तके, ‘दूणआइ’ इति च ख-पु-
स्तके पाठः. ८. ‘इँव्व’ इति ग-पुस्तके, ‘ओव्व’ इति च ख-पुस्तके पाठः. ९. ‘दुमेन-
स्कया’ इति ग-पाठः. १०. ‘प्रेक्षस्व’ इति ग-पुस्तके, ‘प्रेक्षस्व’ इति च घ-पुस्तके पाठः.

श्रुतासक्ता कानिचिरमणार्थं कान्तमन्यमनस्कं कर्तुमाह—

उअ पोम्मराजमरगजसंवलिआ ण्हअल्लोओ ओअरइ ।

ण्हंसिरिक्कण्ठम्मट्ट व्व कण्ठिआ कीररिञ्छोली ॥ ७५ ॥

[पश्य पद्मरागमरकतसन्निता नमस्तलादयतरति ।

नमःश्रीकण्ठम्रेव कण्ठिका कीरपङ्क्तिः ॥]

उच्यते । कीरपङ्क्तिर्नमस्तलादयतरतीति स्वन्धः । नम धियः कण्ठाद्ग्रा कण्ठिके-
वेत्युत्प्रेक्षा । कण्ठिका 'कण्ठा' इति ख्यात आभरणविशेषः । पद्मरागैर्मरकतैश्च संवलि-
तेति कण्ठिकाविशेषणम् । शुक्ला हरितवर्णत्वान्मरकतसाम्यम्, तत्पुष्पाणां च लोहित-
त्वात्पद्मरागसाम्यं दृष्टव्यम् ॥

कावि विदितदुस्वरितेन पत्न्या दुर्गन्धानाभिप्लवा आग्रहिता दूतीमन्यापदेशेनाह—

ण वि सह विअसवासो दोर्गसं मह जणेइ संतापम् ।

आसंसिअत्यविमणो जह पणइजणो णिअत्तन्तो ॥ ७६ ॥

[नापि तथा विदेशवासो दौर्गन्धं मम जनयति संतापम् ।

आशंसितार्थविमनो यथा प्रणयिजनो निवर्तमानः ॥]

णवीति । विदेशे कुप्रामे बन्धनस्थाने च वासोऽवस्थानम्, दौर्गन्धं दारिद्र्यं गतिनिरो-
धश्च मम तथा संतापनं जनयति यथा आशंसिते आश्रायेण युक्ते अर्थे धने प्रियसङ्गमे च
विमना निष्प्रत्याशा सन्निवर्तमानः प्रणयिजनः सप्रथमो बन्धुजनः कान्तप्रहितवृत्तीजनश्च ।
इदानीन्नाभिसर्तुं समयस्तेन निवर्ततेति जार प्रत्युक्तिर्वा ॥

पथिकच्छलेनालिन्दकोपितस्य चारस्य रताभिलाषं सूचयन्ती दूती कुलटाभाह—

खन्धग्गिणा वणेसुं तणेहिं गामम्मि रक्खिअओ पहिओ ।

णअरवसिओ णँडिअइ साणुसएण व्व सीएण ॥ ७७ ॥

[स्कन्धाग्निना वनेषु तृणैर्ग्रामे रक्षितः पथिकः ।

नगरोपितः खेपते सानुशयेनेव शीतेन ॥]

सन्धेति । स्कन्धाग्निना वृहत्काष्ठाग्निना । 'स्कन्धाग्निः स्थूलकाष्ठाग्निः' इति हारावली ॥
खेपते इत्यर्थे णडिअइ इति देशः । अस्या शिशिरनिशायामनन्यगतिरस्यास्य पथिस्वरा-
कस्य तमेव शरणमिति भावः । यद्वा नगरे तृणकाष्ठादेर्दुर्लभत्वान्नगरिकाणां च निर्द-

१. 'ण्हअलाहि' इति क-पुस्तके, 'ण्हअलाउ' इति च ग-पुस्तके पाठः. २. 'ओस-
रइ' इति क-पाठः. ३. 'विदेस' इति क पाठः. ४. 'दोगस व्व' इति ग-पाठः. ५. 'वि-
सुहो' इति क ख पाठः. ६. 'दौर्गन्धं वा' इति ग-पाठः. ७. 'णयिअइ' इति ग पाठः.
८. 'न नीयते' इति ग-पुस्तके, 'न खेपते' इति च घ-पुस्तके पाठः.

यत्वाच्छोतभीतस्य तव मत्सन्निधौ खाप एव शरणमिति खयद्वया पथिक प्रति साश-
याविष्करणमेतत् ॥

नागरिक कामिन्यन्तरप्रलोभनार्थमात्मनो विदग्धकामुकता दृढब्रहेहता 'च प्रकाश-
यन्माह—

भरिमो से गहिआहरधुअसीसर्पहोलिरालआउलिअम् ।

वअण परिमलतरलिअभमरालिपइण्णकमल व ॥ ७८ ॥

[सरामस्तेखा गृहीताधर्युतशीर्षप्रघूर्णनशीलत्वाकुरितम् ।

वदन परिमलतरलितभ्रमरालिप्रकीर्णकमलमिव ॥]

भरिमो इति । दशनक्षतार्थं गृहीतेऽपरे ध्रुवे शीर्षे प्रघूर्णनशीलैरलकैराकुरित परिमलेन
तरलिता इतस्ततो भ्रम-ती या भ्रमराणामालि पङ्क्तिर्या प्रकीर्णं व्याप्त कमलमिव स्थित
तस्या वदन सराम इति संबन्धः ॥

सहचरप्रलोभनार्थं विट कस्याश्चित्तौभाग्यवर्षसूचक विन्वोकमाह—

हल्लफलह्वाणपसाहिआणं छणवासरे सवत्तीणम् ।

अज्जाएँ मज्जणाणाअरेण कहिअ व सोहग्गम् ॥ ७९ ॥

[उत्साहतरलनखानप्रसाधिताना क्षणवासरे सपत्नीनाम् ।

आर्यया मज्जनानादरेण कथितमिव सौभाग्यम् ॥]

हतेति । हल्लफलमुत्साहतरलत्वम् । तेन खानप्रसाधिताना क्षणवासरे उत्सवदिवसे
सपत्नीना मध्ये आर्यया धेष्टयुवत्या मज्जनानादरेण खानावह्नया सौभाग्य कथितमिव ।
विन्वोकाख्येनालक्षारेण सौभाग्यप्रकटनादिति भावः । तल्लक्षण च साहित्यदर्पणे—
'विद्योक्तवृत्तिगर्वण वसुनीतेऽप्यनादर' इति । हल्लफलशब्दः कवुण्णजलवाचक इति
केचित् । पागन्तरे तु मार्जेन प्रसाधन तनानादरेणावश्येति व्याख्येयम् ॥

काचिद्विरादिना खानीयद्रव्येण कृतखाना केशसमार्जेनेन प्रकटितकुचबाहुमूर्ध्ना कम-
नीयदर्शनामुद्दिश्य कश्चित्सस्पृहमाह—

ह्वाणहलिदाभरिअन्तराईं जालाईं जालवलअस्स ।

सोहन्ति किलिन्धिअकण्ठएण फ काहिसी वअत्थम् ॥ ८० ॥

१ 'पहुण्णजालआ' इति क पाठ २ 'अस्या' इति ग पाठ ३ 'धूत' इति घ.
पाठ ४ 'प्रघूर्णमान' इति ग पाठ ५ 'अम्माद' इति फ र पाठ ६. 'विचिहुण्णमु
गन्धिचिक्कणजलखान' इति ग पुस्तके, 'हारिदजलखान' इति च घ पुस्तके पाठ ७
'उत्सववासरे' इति ग पाठ ८. 'इधरमुतया' इति ग पाठ 'हल्लफलशब्द कोष्णचिक्क
णमुगन्धिजले, अम्मादशब्द देशी इधरमुतयां वर्तते' इति कुलबालद्वयव्याख्यानम् ९.
'मज्जनानादरेण मार्जनानादरेण वा' इति र पाठ १०. 'किलिन्धिअ' इति फ पाठ—

[उदरपतिताभ्या दुःखं स्वीयत उन्नताभ्या भूत्वा ।

इति चित्तयतोर्मये स्तनयो कृष्ण मुख जातम् ॥]

वेदति । लोकेऽपि यः प्रथमः प्रणयश्चहुमानादिना उन्नतो भूत्वा देवशाहुर्गतं स्तन-
दरभरणज्यो भवति तस्यापि चित्तया मुखं श्यामं भवतीति ध्वनिः ॥

अभियोज्यामभियोगं प्राद्वितुं दूती जायवस्थानुरागातिशयमाह—

सो लुप्त कण मुन्दरि तह छीणो सुमहिलो हलिअउत्तो ।

जह से मच्छरिणीएँ वि दोष जाआएँ पडिवण्णम् ॥ ८४ ॥

[स तैव कृते मुन्दरि तथा क्षीणः सुमहिलो हलिकपुत्रः ।

यथा तस्य मत्सरिण्यापि दूत्यं जायया प्रतिपन्नम् ॥]

सो इति । सुमहिल इत्यनेन रूपवद्भावोऽपि त्वप्यनुरक्त इति नायिकाकृतित्वेन्यते ।
हलिकपुत्र इत्यनेनानेन धनिकत्वं च प्रकृत्यं दृश्यते । मत्सरिण्यापि दूत्यं प्रतिपन्नं
पतिभरणमयादिति भावः । तद्यदि नानुमन्यसे तदा पुण्यवधपातकं ते भविष्यती-
त्याशयः ॥

फलहातरिता विसृजते कांते सन्नहोपालम्भमाह—

वक्खिण्णेण वि एत्तो सुहज सुहावेसि अम्ह हिअआइ ।

णिक्कइअवेण जाण गओ सि का णिव्वुदी वाणम् ॥ ८५ ॥

[दाक्षिण्येनाप्यागच्छ सुभग सुखयसस्साक हृदयानि ।

निष्कैतवेन यासा गतोऽसि का निर्धृतिस्तासाम् ॥]

दक्षिण्येनेति । यासा समीपमिति शेषः ॥

पतिं प्रत्यन्ययोपावधाननिरासार्थं स्थायीनमपुत्रा साश्रितस्यापि श्रियस्योपचाराति-
शयं प्रकथयतीत्यसौभाग्यमाह—

एकं पहरुट्ठिवण्णं हत्थं मुहमारुएण वीअन्तो ।

सो वि हसन्तीएँ मए गहिओ वीएण कण्ठम्मि ॥ ८६ ॥

[एकं ग्रहरोद्धिग्रहं हस्तं मुखमारुतेन वीजयन् ।

सोऽपि हसन्त्या मया गृहीतो द्वितीयेन कण्ठे ॥]

एकमिति । ग्रहरोद्धिग्रहमेकं मदीयं हस्तं मुखमारुतेन वीजयन्त्य मयापि द्वितीयेन
हस्तन कण्ठे गृहीत इति संबन्धः ॥

१ 'आस्यते उमतेर्भूवा' इति घ-पाठः २ 'लुप्त कण' इति रा-पाठः ३ 'क्षीणो'
इति च पुस्तके, 'क्षिणो' इति च पुस्तके पाठः ४ 'तव कृतेन' इति ग-पाठः
५ 'ग्रहरोद्धि' इति घ-पाठः

केलिकलहनिष्कान्तां कान्तानुबन्धमाना नायिकां निवर्तयितुं तत्सखी आह—

अवलम्बितमाणपरम्मुद्गीर्णं एन्तस्स माणिणि पिअस्स ।

पुट्टपुल्लउग्गमो तुह कहेइ संमुहट्ठिअं हिअअम् ॥ ८७ ॥

[अवलम्बितमानपराङ्मुख्या आगच्छतो मानिनि प्रियस ।

पुष्टपुल्लकोद्गमस्तव कथयति संमुखस्थितं हृदयम् ॥]

अवेति । अवलम्बितेन मानेन पराङ्मुखा. न तु पारमार्थिकेनेति भावः । तव पु-
ष्टपुल्लकोद्गमः समुत्पन्नं हृदयमागच्छते प्रियाय वक्ष्यतीति सम्बन्धः । तदलीकरोपमि-
तञ्जेल्याशयः ॥

दीर्घोद्गटरोपा मानिनी शिक्षयितुं सखी मानिन्यन्तरङ्गुतिमाह—

जाणइ जाणावेउं अणुणअविह्विअमाणपरिसेसम् ।

अैइरिक्कम्मि वि विणआवलम्भणं सच्चिअ कुणन्ती ॥ ८८ ॥

[जानाति ज्ञापयितुमनुबन्धविश्रावितमानपरिशेषम् ।

विजनेऽपि विनयावलम्बनं सैवं कुर्यती ॥]

जाणइति । विजनेऽपि एकान्तेऽपि रतिसमये इति यावत् । विनयावलम्बनं कटा-
क्षभुजप्रक्षेपायकरणात् धातुपरिहारे कुर्यती सैव अनुबन्धेन विश्रावितस्य दूरीकृतस्य
मानस्य परिशेषमवशेषं ज्ञापयितुं जानाति । नान्येत्यर्थः । मानिनी मानावस्थायामपि
प्रियमेवानुवर्तते न तु स्वमिव पारभवतीति भावः ॥

एकस्यामेवानुरक्तं बहुवचनं नायकमुद्दिश्य कापि कृष्णव्याजेनाह—

मुहमारुएण तं कहु गोरअं राहिआएँ अवणेन्तो ।

एताणँ बह्वीणं अण्णाणँ वि गोरअं हरसि ॥ ८९ ॥

[मुखमारुतेन त्वं कृष्ण गोरजो राधिकाया अपनयन् ।

एतासां बह्वीनामन्यासामपि गौरवं हरसि ॥]

मुहेति । हे कृष्ण, त्वं मुखमारुतेन राधिकाया गोरजधक्षरजोऽपनयन् । चतुःप्र-
विष्टरजोऽपनयनच्छलेन सुम्यमित्यर्थः । एतासां पुरोवर्तिनीनामन्यासामपि बह्वीना

१. 'पुट्टि' इति ख-पाठः. २. 'उग्गमो' इति क-पाठः. ३. 'समुहट्ठिअ' इति
क-पुस्तके, 'समुहट्ठिअ' इति च ख-पुस्तके पाठः. ४. 'विह्विअ' इति क-पाठः.
५. 'दीर्घाये वि' इति ख-पुस्तके, 'पइ रिक्कम्मिअ' इति च ग-पुस्तके पाठः. ६. 'अ-
तिरिक्कमेव' इति ग-पाठः. 'पइरिक्कम्मोऽतिरिक्के' । पइरिक्कति विजने देशइति केचित् ।
तदा पइरिक्कम्मि वि इति पाठः । विजनेऽपीत्यर्थः । इति कुलवालेदेव.. ७. 'सस्य' इति
घ-पाठः. ८. 'एआणं' इति ख-ग-पाठः. ९. 'रापाया' इति ग-पाठः.

गौरव हरति । सौभाग्यवर्धन्यण्डनादिति भावः । यद्वा गौरवं गौरतां हरति । अपमानेन कृष्णीकरणादिति भावः ॥

खण्डिता बहुशः कृतापराधं क्षम्यन्तेति वदन्तं कान्तमाह—

किं दाव कमा अहवा करेसि कैरिस्सि मुहम एत्ताहे ।

अवराहणं अलज्जिर साहसु कअए रमिज्जन्तु ॥ ९० ॥

[किं तावत्कृता अथवा करोषि कैरिष्यसि मुमगेदानीम् ।

अपराधानामलज्जारील कथय कतरे क्षम्यन्ताम् ॥]

प्रिमिति । ये पूर्वं कृता यानिदानीं करोषि हरिष्यसि वा एतेषां भूतवर्तमानभविष्यतां मध्ये कतरे अपराधाः क्षम्यन्ताम् । न केऽपि धनुं क्षत्रयन्त इति निषेधमुखेन के वा न खोडास्यवापराधा इति प्वनितम् ॥

वृत्ती दुर्विदग्धं नायकं शिष्ययितुमाह—

जुमेन्ति जे पटुतं कुविअं दासा छ जे पसाअन्ति ।

जे छिअ महिलाणं पिआ सेसा सामि बियअ अराआ ॥ ९१ ॥

[गोशयन्ति ये प्रभुत्वे कुपितां दासा इव ये प्रसादयन्ति ।

त एव महिलानां प्रियाः शेषाः स्वामिनं एव वराकाः ॥]

जुमेन्तीति । ये स्वकीयं प्रभुत्वं कान्तादिगये गोपायन्ति न प्रकटयन्ति । दण्डादिकं न प्रयुजत इत्यर्थः । ये च कुपितां नायिकामनुनयपूर्वकं प्रसादयन्ति त एव महिलानां प्रिया वरूभाः । शेषाः ततोऽन्ये दण्डप्रयोक्तारोऽनुनयवरास्तुत्याश्च महिलानां स्वामिन एव । न तु वरूभा इत्यर्थः । वराकाः प्रेमवत्तत्वाश्रया शोच्या इत्यर्थः ॥

पूर्वमादरेण प्रयुक्त पद्माद्र्भेदसायासुदागीन नायकमुपालम्बुं दृष्टी भ्रगरापदेशेनाह—

तइआ कअअ महुअर ण रमसि अण्णासु पुंफ्फाईसु ।

यदफलमारगुईं मालईं एहिं परिअसि ॥ ९२ ॥

[तेदा कृतार्थं मधुकर न रमसेज्ज्यासु पुप्पजातिषु ।

यदफलमारगुणी मालनीभिदानीं परित्यजति ॥]

१. 'कैरिस्सि' इति क-ग-पाठः. २. 'कहेसु' इति ग-पाठः. ३. 'हरिष्यसि वा मुमगे' इत्यापराधे' इति ग-पाठः. ४. 'निमंअ' इति ग-गुप्तके, 'अलज्जारीलायां स कतरे' इति च घ-पुस्तके पाठः. ५. 'न कुवेन्ति' इति ग-पाठः. ६. 'पटुत्वं' इति ख-पाठः. ७. 'दागप' इति ख-ग-पाठः. ८. 'न कुवेन्ति' इति ग घ-पाठः. ९. 'दागप' इति ग-पाठः. १०. 'पुप्पजादसु' इति ग-पाठः. ११. 'तदा कृतार्थ' इति ग-गुप्तके, 'तदा कृतार्थ' इति च घ-पुस्तके पाठः.

तद्वा इति । कृतोऽर्घः पूजाविधिर्येन । कृतादरेति यावत् । 'मूले पूजाविधावर्घे' इत्यमरः । 'किंअय' इति पाठे कृतार्घ्येति । वदेन फलकारेण प्रथमिल्लनेन लताया मकरन्दराहित्यं नायिकामाश्च विपरीतरताक्षमत्वं व्यज्यते । तेन प्रथमं तथा चादुस्त-
प्रपद्यितप्रणयस्य तवेद स्वार्थपरतामात्रमनुचितमित्युपालम्भो व्यक्तः । संप्रति नोपभो-
गयोग्येति जारं प्रति दूत्या उच्छिरिति कथितम् ॥

नागरिकानुरोधेन प्रतिपन्नदत्तीभावया मातुलान्या कथितसौन्दर्यं तं प्रत्यनुरक्ता ना-
यिका सामाह—

अविभ्रह्मपेयस्वणिज्जेण सत्करणं मामि तेण दिट्ठेण ।

सिचिअपीएण च पाणिएण तह जियअ ण फिट्ठा ॥ ९३ ॥

[अवितृष्णप्रेक्षणरीयेन तत्क्षणं मातुलानि तेन दृष्टेन ।

स्वप्रपीतेनेव पानीयेन तृष्णैव नै भ्रष्टा ॥]

अशीति । अथ वा तत्रैव स्थितं जारं प्रत्यन्यापदेशेन स्वदर्शनाभिलाषो मम न गत इति व्यज्यते ॥

सक्रेतस्थानान्तरानुसरणाय जारं प्रति प्रथमसक्रेतभ्रं धावयन्ती कुलटा मुजवप्रशं-
साछलेनाह—

सुअणो जं देसमलंकरोइ सं विअ करोइ पवसन्तो ।

गामासण्णुम्मूलिअमहावड्ढाणसारिच्छम् ॥ ९४ ॥

[मुजनो य देशमलंकरोति तमेव करोति भवसन् ।

ग्रामासन्नोन्मूलितमहानटस्थानसंदक्षम् ॥]

सुभगो इति । मुजनो यं देशं निवासेनालंकरोति तमेव देशं प्रवसन्तान् ग्रामासन्न उन्मूलितो यो महावटस्तत्स्थानसदृशं करोतीत्यर्थः । यथा प्रोपितमुजनो देशो द्योतति-
विधानाद्यभावाद्विदग्धान्दु रयति तथा उन्मूलितवटस्थानमपि दु स्वेयसीत्यर्थः ॥

स्वर्तव्योऽहमिति गमनसमये वदन्तं भविष्यत्पथिकं प्रति आह—

सो णाम संमरिज्जइ पट्ठमसिओ जो खणं पि हिअआदि ।

संमरिअत्थं च वअं गअं च पेम्भं गिरालम्बम् ॥ ९५ ॥

[स नाम सस्रियते प्रपन्नो यः क्षणमपि हृदयात् ।

स्वर्तव्यं च कृतं गतं च प्रेम निरालम्बम् ॥]

१. 'पेछणिजेण' इति ख ग-पाठः. २. 'मणिनि' इति ग-पुस्तके, 'अतुलितेन' इति च घ-पुस्तके पाठः. ३. 'नापगता' इति ग घ-पाठः. ४. 'मुजणो' इति क-पाठः. ५. 'सदृशम्' इति ग ग-पाठः. ६. 'क्षणम् हिअआदि' इति ग-पाठः. ७. 'सरणीयं च' इति ग-पुस्तके, 'संस्मृतं च कृतं' इति च घ-पुस्तके पाठः.

तो इति । प्रेम यदैव सततव्यमर्षोत्प्रेयस्सरणाहं वृत तदैव निरालम्ब्य सद्रतम् । नि
राश्रयत्वानश्रमिति भावः ॥

दूती मन्दब्रेह विरलदर्शन नायक नायिकानुरागकचनेनानुकूलयितुमाह—

पास व सा कपोले अञ्ज वि तुह दन्तमण्डल वाला ।

उन्निभण्णपुलअवइयेढपरिगअं रक्खइ वराई ॥ ९६ ॥

[न्यासमित्र सा कपोलेऽद्यापि तव दन्तमण्डल बाला ।

उन्निभण्णपुलकचृत्तिवेष्टपरिगत रक्षति वरावी ॥]

गतमिति । बाग प्रथम त्वकृतशोभण्डना सा वराकी उन्निभण्णपुलकचृत्तिमण्ड-
लेन परिगत सर्वतो धेष्टित तव दन्तमण्डल मण्डलाकार दन्तशत न्यासनिक्षेपमवा-
प्यपि रक्षति । शटे त्वमि तस्यास्तारक्षोऽनुरागो न युक्त इति वराकीपदेन ध्वन्यते ।
तदेवमनुरक्तमनुकम्पाहंमनुवतस्वेति भावः ॥

कार्यगौरवग्रहितावधिले वृषभस्तत्समाप्त्यनन्तरमेवागमिष्यतीत्याश्राययन्ती मातु-
लानी प्रोदितभर्तुंवा सनिर्वेद सामूय चाह—

दिट्ठा वैआ अग्घाइआ सुरा दक्खिणाणिलो सहिओ ।

फज्जाइं ठिवअ गरुमाइं यामि को बल्लहो फस्स ॥ ९७ ॥

[दृष्टाश्चेता आग्राता सुरा दक्षिणानिल सोढ ।

कार्याण्येन गुरुकानि मातुलानि को बल्लभ कस्स ॥]

दिट्ठेति । मन्मथोन्मादहेतव आग्राहुरा दृष्टा । वसन्ते छातेन सह पानकेरिणी
सन्तर्प्य परिष्कृताया सुराया गन्धोऽनुभूत । मलयानिल सोढ । अतः कार्योप्यव
गुरुकानि । तु रौक्मागिन्या मम जीवितस्य एतान्येव महान्ति प्रयोजनानि । एतदनु
मवायनेव हतजीवित न लज्जामि । तथा च क कस्य वृषभ । येनाद्यापि सद्भिर्दे-
जीवामीत्यात्मान प्रति निर्वेदो व्यज्यते । यद्वा कार्योप्येव गुरुकानीति युवत्यन्तरसमा-
गम सूचयत्या स्वयदूया उक्तिरिति कथितम् । कार्योप्येव तस्य बहुमतानि कथमन्यथा
वसन्तेऽपि नागत इति भावः । किं च बाह्यमपि कार्यनिर्वाचन न तु समावृत्तिमि-
त्यभिप्रेत्याह—को बल्लभ कस्येति । तथैव सनिहितया तस्य प्रयोजनं न तु व्यवहितया
मयेति वृषभ प्रत्यसूया व्यच्यते । नायकान्तरविमोहनाय स्वनायके वरारम्य सूचयत्या
स्वयदूया उक्तिरित्यनेति कथितम् ॥

१ 'वेष्टन' इति क-ख पाठः. २ 'सूआ' इति ग-पाठ ३ 'नूता' इति

घ पाठः. ४ 'मिनि' इति ग-मुम्बके, 'मातुलि' इति घ-मुम्बके पठ

सदा सनिहितपतिके न त्वमभिज्ञासि प्रवासगतप्रियप्रेमनिर्भरसुरतविलसितानामिति
सहयोक्ता स्वाधीनभर्तृका तामाह—

रमिऊण पअं पि गओ जाहे उँवऊहिउं पडिणिउत्तो ।

अह अं पैठत्यपइआ व्व तकरणं सो पचासि व्व ॥ ९८ ॥

• [रन्त्या पदमपि गतो यदोर्षगूहितु प्रतिनिवृत्त ।

अह प्रोषितपतिकेन तत्क्षणं स प्रयासीव ॥]

रमिऊणेति । मान वस्त्वेति बोधयन्तीं सखीं प्रति स्वस्य मानासामर्थ्यं प्रकाशयन्त्या
नायिकाया उक्तिरिति कथित ॥

कस्मिन्नपि धूनि जाताभिलाषा कुसटा निचपतिं प्रति वैराग्य व्यञ्जयन्ती तमाह—

अँविइहूपेच्छणिजं समसुहदुःखं विइण्णसवभावम् ।

अण्णोण्णहिअअल्लगां पुण्णेहिं जणो जण लहइ ॥ ९९ ॥

[अवितृष्णप्रेक्षणीय समसुखदुःख वितीर्णसंभावम् ।

अन्योन्यहृदयलग्न पुण्यैर्जनो जन लभते ॥]

अधीति । मम त्यक्तपुण्याया कुत एवविधप्रियशास्तिरिलाशय । मन्दकेहस्य पत्यु-
श्चित्तमनुकूलयितुं पतिप्रताया इयमुत्तिरिति कथित ॥

कथं तु स्वप्रदेऽपि पत्यौ न विरकासीति भेदयतीं दूरीं प्रत्यात्वापु पतिप्रता पत्या-
वनुरागातिशयमाह—

दु र प देन्तो वि मुह जणेइ जो जस्स वहहो होइ ।

वइअणहँदूणिआण वि वहुइ थेणाणें रोमन्धो ॥ १०० ॥

[दुःख दददपि मुख जनयति यो यस्य बलमो भवति ।

दयितनखर्दूनयोरपि वर्धते स्तनयो रोमाश्च ॥]

१ 'अवउहिउ पडिणिउत्तो' इति ग पाठ २ 'पडल्लवइअव्व' इति ग पाठ ३ 'रमित्ता' इति ग पुस्तके, 'रमयित्वा' इति च घ पुस्तके पाठ ४ 'अवगूहितु' इति ग घ पाठ ५ 'प्रतिनिवर्तमान' इति ग पाठ ६ 'अथाह' इति ग पाठ ७ कुल धारदेवस्त्वस्या गाथाया प्राक् 'धण्णा वहिरा अन्धा ते विव्व जीवन्ति माणुसे लोए । ण मुणन्ति विइणववण खलण नद्धि ण पेक्खन्ति ॥' [धन्या वहिरा अन्धास्त एव जीवन्ति माणुसे लोके । न शृण्वन्ति विभुनवचन खलानामृद्धिं न प्रेक्षन्ते ॥] इत्येका गाथामधिका पठति । घ पुस्तकेऽप्यस्या गाथाया 'धन्या वहिरा—' इत्यादिच्छया वर्तते ८ 'दुम्मिआण' इति ग पाठ ९ 'यणआण' इति ग पाठ १० 'दुर्मनस्क-योरपि' इति ग पाठ ११ घ पुस्तके 'दुःख दददपि—' इत्यादिगाथाछाया द्वितीयशतकप्रा-रम्भे लिखितास्ति

रसिअज्जणहिअअदइए कइवउल्लपमुहसुकइणिम्मविए ।

सत्तसअम्मि समत्त पढम गाहासअ एअ ॥ १०१ ॥

[रसिकचनहृदयदयिते कवित्सलप्रमुखसुकविनिर्मिते ।

सप्तशतके समाप्त प्रथम गाथाशतकमेतत् ॥]

द्वितीय शतकम् ।

मानमवलम्ब्य पशुरनुनयसुख तावदनुभवेति स्वसखीं शिक्षयेति वदतीं कामपि
सखी उपरिहासमाह—

धेरिओ धरिओ रिअलइ उअएसो पिहसहीहि^१ दिज्जन्तो ।

मअरद्धवाणपहारजैजरे तीएँ हिअजम्मि ॥ १ ॥

[धृतो धृतो निगल्हपदेश प्रियसखीभिर्दीयमान ।

मकरपत्रवाणप्रहारजैरे तस्मा हृदये ॥]

धृतो धृत पुन पुनधृत । विगलति नावतिष्ठते ॥

नदीतटनिकुञ्जे दत्तसंकेतेन कातेन विप्रलब्धा नायिका तत्राभगमन नदीपूरेण सके
तम्यानभय स्त्रीचातश्च प्रेमानुबन्धदार्ढ्यं पारं प्रति थावयती स्वसखीमाह—

तटसठिअणीहेक्कन्तपीलुआरक्कण्णेक्कदिण्णमणा ।

अगणिअग्निणिवाअभआ पूरेण सम वहइ काई ॥ २ ॥

[तटस्थितस्य नीहस्येता^२ते नियमानां ये शावकास्तेषां रक्षणे दत्त मनी यया एता

अगणितनिर्निपातभया पूरेण सम वहति काकी ॥]

तटस्थितस्य नीहस्येता^२ते नियमानां ये शावकास्तेषां रक्षणे दत्त मनी यया एता
एषो काकी अगणितविनिपातभया तदृणा सहैवान्तरमापि स्वस्य मन्त्रनमगणयती सखी
पूरेण नवपल्लवेन सम वहति ॥

१ कुलबालदेवसु अम्मिप्रव शतकं वर्णमानामकपथं सा सहचाराम् 'त णमह जस्म
दच्छ' इत्यादिगाथासम द्वितीयशतकारम्भे मङ्गलचरणत्वेन पठति २ 'धेरिअ धेरि
ओ वि' इति क पुस्तके, 'धेरिअ धेरिअ' इति च स पुस्तके पाठ ३ 'अज्जणिए' इति
च पाठ ४ घ पुस्तके 'धृतो धृतो' इत्यादिगाथाच्छायावन्तरं 'करयुगगृहीतमनो
दास्त्वभरनिविगितापरदस्स । सम्मृतपाणज्यस्य नाम्ना कृष्णस्य रोमाधम् ॥' इय
गाथाच्छायाधिकास्ति ५ 'पीलुआरक्कण्णे' इति म-पाठ, 'पीलुह शावक' इति
पुष्पाळदेव ६ 'विनिपातमरा' इति घ पुस्तकपाठ

मधूवपुष्पावचयव्याजेन कृताभिसारा कुलटा जारं प्रत्यात्मनश्चिररताभिलाषं सूचय-
न्ती मधूकतस्माद्—

बहुपुष्पभरोष्णामिअभूमीगतसाह सुणसुं विण्णत्तिम् ।

गोलातडविअडकुडङ्गमहुअ सणिअं गलिब्वासु ॥ ३ ॥

‘[बहुपुष्पभरावनामितभूमीगतशास्त्र शृणु विशसिम् ।

गोदातडविकटनिकुञ्जमधूक शनैर्गलिष्यसि ॥]

बहुपुष्पभरेणावनमिता भूमिगताः शास्त्रा यस्येति मधूकविशेषणम् । शनैः क्रमेण ग-
लिष्यतीत्यनेन विरे मया ते संगमो भविष्यतीति सूचितम् ॥

यस्याधिन्मधूककुसुमावचयप्रसङ्गेन मधूकतदसमीपनिकुञ्ज संकेतस्थानमासीत् । स
च क्रमेण कुसुमापगमे गति भ्रम इति परिशिष्टकुसुमावचय कुर्वती रुदती इष्टा नाग-
रिष सहचरमाह—

णिप्पच्छिमाई असई दुःखालोआई महुअपुंफाई ।

चीए वन्धुस्स व अट्ठिआई रुअई समुच्चिणइ ॥ ४ ॥

[निष्पक्षिमान्यसती दुःखालोकानि मधूकपुष्पाणि ।

चिताया वन्धोरियासीनि रोदेनशीला समुच्चिनोति ॥]

निष्पक्षिमानि परिशिष्टानि । दुःखालोकानि तदवचयव्याजलभ्यजारसमागमस्य
तदपाये दुर्लभत्वादिति भावः ॥

‘नायकस्यास्थिरप्रेमतया तद्वचनमस्वीकुर्वती नायिकामभिमुखीकर्तुं वक्षिद्विदग्ध
आह—

ओ द्विअज मडहसरिआजलरअहीरन्तदीहदार ज्व ।

ठाणे ठाणे विअ लग्गमाण केणावि डज्झिइसि ॥ ५ ॥

[हे^१ हृदय स्वल्पसरिजलरयहियमाणदीर्घदारुवत् ।

स्थाने स्थाने एव लगत्केनापि घट्यसे ॥]

स्वल्पसरितो जलरयेण हियमाण वाष्ठ यथा स्थले स्थले लगत्केनापि दह्यते तथा
त्वमपि कस्यामपि सुभगायां लभं सत्तया क्षणविरहेणापि लक्ष्यस इत्यर्थः । एतेना-
भिमतजनप्राप्त्या भग्नास्थिरलोहत्वम्, न तु दुर्विदग्धत्वादिति ध्वनितम् । मडहशब्दः
स्वल्पवाचकः ॥

१. ‘शनैर्न गलिष्यसि’ इति घ-पाठ . २. ‘उप्फाई’ इति क-ख पाठ . ३. ‘रुदती’
इति ग-पाठ.. ४. ‘हा हृदय’ इति घ-पाठ. ५. ‘सुदनदी’ इति ग-पाठ..

बन्धुजनं प्रति सह्याः सौभाग्यं काचिदाह—

जो 'तीर्णे अहरराओ रत्ति उन्वासिओ पिअअमेण ।

सो विवअ दीसइ गोसे सवत्तिणअणेसु संकन्तो ॥ ६ ॥

[यस्तस्या अहररागो रात्र्युद्धामितः प्रियतमेन ।

स एव दृश्यते प्रातः सपत्नीनयनेषु संक्रान्तः ॥]

गोसे गत । तथाविभापरदर्शनजनितेर्ष्या सपत्नीनयनेष्वदृष्टिमोदयादिति भावः । ए-
कस्या सौभाग्यवर्णनेन तत्सपत्नीनां सुखसाध्यत्वं सूचयन्त्या इत्या इयमुक्तिरिति कश्चित् ॥
हलिकवक्त्रा. पतिग्रेहपरीक्षोपायं दर्शयन्ती काचित्स्वयीं शिक्षयितुमाह—

गोलाअहट्टिअं पेछिकुण गहवइमुअं हल्लिअसोहा ।

आहत्ता उत्तरिउं दुःखुत्ताराएँ पअवीप ॥ ७ ॥

[गोदावरीतटस्थितं प्रेक्ष्य गृहपतिमुतं हलिकमुवा ।

आहत्ता उत्तरीतुं दुःखोत्ताराया पदम्या ॥]

विमय मामयश्म्यते न वेति जिज्ञासुया विपममार्गेणावतरीतुमारब्धेत्सर्वं ॥

अभिरूषितनायकं प्रलोभयितुं सं प्रत्यारम्भसौभाग्यं धावयन्ती कापि सखीमाह—

चलणोआसणिसण्णस्स तस्स भरिमो अणालवन्तस्स ।

पाअहुट्ठावेट्ठिअकेसदिटाअहुणमुँहेल्लिम् ॥ ८ ॥

[चरणावकाशनिषण्णस्य तस्य स्वरामोऽनालपत ।

पादाहुष्टावेष्टितकेसदृढाकर्षणक्षुखम् ॥]

प्रणयकोपेमानुनयमगृह्णत्या मम चरणावकाशे निषण्णस्य तस्य मदीयपादाहुष्टेना-
वेष्टितानां केसानां दृढाकर्षणेन आतं यत्सुखं तत्स्वराम इत्यर्थः ॥

सकेतस्थाने आरं प्रति पत्रिकस्यावस्थितिं धावयन्ती कुलटा सखीमाह—

फालेइ अण्णभएँ व उअह कुग्गामदेउल्लारे ।

हेमन्तमालपहिओ विञ्ज्ञाअन्तं पल्ललगिम् ॥ ९ ॥

[पाटयत्यच्छमलमित्र पश्यत कुग्रामदेवकुलद्वारे ।

हेमन्तमालपत्रिको निर्धायमान पल्लवाग्रिम् ॥]

१. 'दीअ' इति ख-ग पाठः. २. 'प्रभाते दृश्यते' इति घ-पाठः. ३. 'आहत्ता' इति ग पाठः. ४. 'दुःखउत्ताराइ' इति ख-ग-पाठः. ५. 'अवतरितु' इति घ-मुल्लके, 'उत्तरितु' इति च ग मुल्लके पाठः. ६. 'दुःखोत्तारायाः पदम्या.' इति घ-पाठः. ७. 'गुहम्' इति क पाठः. ८. 'सुखकेल्लिम्' इति ग-पाठः. ९. 'वृज्ज्ञाअन्तं' इति ग-पाठः. १०. 'निर्वा-
धनागं' इति ग मुल्लके, 'निर्वातं' इति च घ-मुल्लके पाठः.

अच्छभग्नो भद्रक । पाठ्यमानस्य पलालक्षारवूटस्य यदि श्यामत्वात् अन्तश्च
लोहिताकारवदिसंबन्धाद्भद्रकसाम्यं बोध्यम् ॥

ग्रामतडागसमीपनिवृत्तदेशे दत्तसकेतेन जारेण विप्रलब्धा विमलजलानयनच्छलेना-
तिप्रभाते तत्रात्मगमनं तं प्रतिधावयन्ती तत्र दृष्टाद्भुतस्थनच्छलेन पितृभगिनीमाह—

कमलाभरा ण मलिआ हसा उद्भाविआ ण अ पिडच्छा ।

केणोवि गामतडाए अन्म उत्ताणअ व्वूढम् ॥ १० ॥ ५

[कमलाकरा न मृदिता हसा उद्भाविता न च पितृम्वस ।

केनापि ग्रामतडागे अन्नमुत्तानितं क्षिप्तम् ॥]

विमलजलप्रतिबिम्बितम्याकाशस्योत्तानतया भानादियमुत्प्रेक्षा ॥

जारप्रयासं ध्रुत्वा विमनस्कां गृहदृष्ट्यपराध्मुखीं यधूं प्रति श्वधूरुपालम्भच्छलेनाह—

केण मणे भग्गमणोरहेण सल्लोविअ पवासो त्ति ।

सविसाईं च अलसाअन्ति जेण बहुआएँ अद्दाईं ॥ ११ ॥

[केन मन्ये भग्नमनोरधेन सलापितं प्रवास इति ।

सविपाणीवालसायन्ते येनं बध्वा अद्धानि ॥]

यद्वा पतिप्रवासवार्ताश्रवणेन विमनस्कायां प्रोध्यत्यतिकायां पस्म्याधनुरागातिशय-
प्रतिपादयन्ती वृत्ती तस्या असाध्यतां जारं प्रति सूचयतीति बोध्यम् ॥

कापि सखीमिश्रिताकारगोपनं क्षिप्तयितुं गोपीनां कृष्णतादृश्यानुभवं अभिव्यञ्जकहृति-
तणुतिमाह—

अज्जयि बालो दामोअरो त्ति इअ जम्पिए जसोआए ।

कहमुहपेसिअच्छ णिहुण हसिणं वअवहूहिं ॥ १२ ॥

[अद्यापि बालो दामोदर इति इति जल्प्यते यशोदया ।

कृष्णमुखप्रेषितांश्च निमृत्तं हसितं ब्रजवधूभिः ॥]

अनुभूतविविधनुरतविमर्दे कृष्णे अस्य वचनस्यासंबद्धावत्वेन हास्यहेतुत्वाच्चातोऽपि
हासो वैदग्ध्यान् प्रकाशित इति भावः ॥

- १ 'तलाए अन्म उत्ताणिअ' इति ख पाठ २ 'उत्तानक' इति ग पाठ
३. 'उद्भाविअ' इति ग पाठ ४ 'मणे प्रवासीति' इति घ पाठ ५ 'वेन' इति घ पु
स्तके नास्ति ६ 'इति किल जल्पितं यशोदायै' इति घ पाठ. ७ 'प्रदिताशु' इति
ग-पाठ.

कापि सजनस्तुतिव्याजेन दृढभेदानुश्रुत्यर्थं नायकमाह—

ते विरला सप्पुरिसा जाण सिणेहो अहिण्णमुदराओ ।

अणुदिअह्वड्डमाणो रिणं व पुत्तेसु संकमह ॥ १३ ॥

[ते विरला सत्पुरुषा येषां येहोऽभिन्नमुखरागः ।

अनुदिवसवर्धमानो ऋणमित्र पुत्रेषु संक्रामति ॥]

अभिनेति । आदिमध्यान्तेषु तुल्यमुखप्रसाद इत्यर्थः ॥

कापि जनसमक्षमुद्भटभावा सखीं शिशयितुं कृष्णानुरक्तगोव्या वैदग्ध्यमाह—

णव्वणसल्लाहणणिहेण पासपरिसंठिआ णिउणगोवी ।

सॅरिसगोविआणं चुम्बइ कवोलपडिमागअं कहम् ॥ १४ ॥

[नर्तनक्षायननिमने पार्श्वपरिसंस्थिता निपुणगोपी ।

सैदृशगोपीना चुम्बति कपोलप्रतिमागत कृष्णम् ॥]

नर्तनेति सम्यक्दृष्टवतीति कणे कथनव्याजेनेत्यर्थः ॥

कापि कान्तगमनाक्षेपार्थं वर्षांगममाह—

सव्वत्थ दिंसामुहपसॅरिण्हिं अण्णोण्णकडअलग्गेहिं ।

छल्लिं ख्व मुअइ विव्वसो मेहेहिं विसंघडन्तेहिं ॥ १५ ॥

[सर्वत्र दिशामुखप्रसृतैरन्योन्यकटकलमै ।

छल्लीमिव मुसति विव्वसो मेघैर्निघटमानैः ॥]

अन्योन्य कटके पर्यतनितम्बे लघ्वैर्विघटमानैर्विभिन्नपद्भिः । छल्ली वल्कलम् । ख्व-
मिति यावत् । 'छल्ली वीरुधि सताने वल्कले पुष्पान्तरे' इति मेदिनीकोपः ॥

तथैवापरगायामाह—

आलोअन्ति पुळिन्दा पडवअसिहरट्टिआ धेनुणिसण्णा ।

हत्थिउलेहिं व विव्वसं पूरिज्जन्त णवब्बेहिं ॥ १६ ॥

[आलोकयन्ति पुळिन्दा पर्यतशिखरस्थिता धेनुर्निषण्णा ।

हस्तितुङ्गेरिव विव्वसं पूर्यमाणं नगाग्रैः ॥]

१. 'ऋण' इति ग पाठः . २. 'पुत्रे' इति घ-पाठः . ३. 'गोपी' इति ग-पाठः .
४. 'सरिगोविआण' इति क ख पाठः . ५. 'व्याजेन' इति ग-पाठः . ६. 'परिष्ठिता' इति
ग-पुस्तके, 'परिस्थिता' इति च घ-पुस्तके पाठः . ७. 'सदृशगोपीना' इति घ-पाठः .
८. 'दिम्मुह' इति ग पाठः . ९. 'सर्वदिशामुखप्रसृतै' इति घ-पुस्तके, 'सर्वत्र दिशामु-
खप्रसृतिभिः' इति च ग-पुस्तके पाठः . १०. 'कमुकमिव' इति ग-पुस्तके, 'लघ्वमिव'
इति च घ-पुस्तके पाठः . ११. 'पुण्ड्रिभ निषण्णा' इति क-पाठः . १२. 'आपने
निषण्णा' इति घ पाठः .

पुलिन्दाः शवराः । धनुषि निषण्णाः क्षितितलनिहितादनीकं धनुर्वलम्ब्य स्थिताः
सन्तो वर्षाण्वनिमहत्त्वादिना हस्तिकुलसहसैर्नयमेवै पुर्यमाणं विन्ध्यं परयन्तीत्यर्थः ।
शवराणां पर्वतशिखरेऽवस्थानात् विन्ध्यवनेऽभिसारमयं प्रतिपादयन्त्या नायिकाया जारं
प्रसीयमुक्तिरिति केचित् ॥

प्रोषितमर्तृक्रामाभ्यासयन्ती सखी पयिकागमनयोग्यं वर्षाण्वयमाह—

यणदयमसिमल्लङ्घो रेहइ विव्झो गणोहिं धवलेहिं ।

सीरोभमन्धणुच्छलिअदुद्धसित्तो व्व महुमहणो ॥ १७ ॥

[यनदयमपीमलिनाङ्गो राजते विन्ध्यो घनैर्धवलैः ।

सीरोदमधनोच्छलितदुग्धसित्त इव मधुमयनः ॥]

यनदयेत्यादिविशेषणेन कृष्णकण्टकादिदाहद्विर्मेनः सुगमता दर्शिता । धवलैरिति ज-
लापायादिति भावः ॥

कस्मिन्नप्युज्ज्वलक्षेत्रे पुंस्त्रि जायायाऽङ्गु-प्रीतिसुप्रसन्नं कुपितं वायकं कोपयितुं वि-
नापि सुरतेष्टा बधूरागो भवत्येवेति सखी निदर्शयितुमाह—

वन्दीअ णिहअवन्धवविमणाइ वि पैकलो त्ति चोरजुआ ।

अणुराण्ण पलोइओ गुणेसु को मच्छरं वइइ ॥ १८ ॥

[यन्धा निहतबान्धवविमनस्कयापि प्रवीर इति चोरयुवा ।

अनुरागेण पैलोमितो गुणेषु को मत्सरं वहति ॥]

निहतबान्धववैम विमनस्कयापि यन्धा चोरयुवा प्रवीर इति हेतोः अनुरागेण प्रलो-
कितः । गुणानुरागादालोकितवती, ननु सुरताभिधायदिति भावः ॥

नायकान्तरं प्रत्यसाप्यत्वं सूचयन्ती दूती व्याधवधूसीभाग्यं वर्णयति—

अज्ज कहमो वि दिअहो वाहवहू रुवजोव्वणुम्मत्ता ।

सोहग्गं धेणुदम्पच्छलेण रच्छासु विक्किरइ ॥ १९ ॥

[अथ कतमोऽपि दिवसो व्याधवधू रूपयौवनोन्मत्ता ।

सौभाग्यं धेनुस्तप्यच्छलेन रथ्यासु विकिरति ॥]

सततसुरतासक्तिरुत्तरीयत्वादाङ्गुमशयत्वात्तत्तावतक्षणस्य धनुस्तप्यच्छलेन सो-

१. 'सीरोम' इति ग-पाठः. २. 'एकलो' इति क-पाठः. 'पञ्च' इति ग-पाठः.
'एकलशब्दो दर्पयति मूनि वर्तते' इति कुलबालदेवः. ३. 'विलोकितो' इति ग पुस्तके,
'विलोमितो' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४. 'धनुरम्पच्छलेन' इति ग-पाठः. 'रम्पशब्दः
वच्छे वर्तते' इति कुलबालदेवः. ५. 'रम्प' इति ग पाठः. ६. 'धनुस्तप्य' इति घ-पाठः.

माग्यं विनिरतीत्यर्थः । रुग्णस्येन तत्क्षणप्रभवमूहमत्वगुच्यते । अतिमुरतासक्तं मिः
प्रति तत्रितृत्यर्थं सहचरोक्तिरिति कथित् ॥

तमेवार्थं भग्न्यन्तरेणाह—

उक्लिप्पइ मण्डलिमारुण गेहङ्गणाहि वाहीए ।

सोहरगधअवहाज च्च उअह धेणुरुम्परिञ्छोली ॥ २० ॥

[उक्लिप्यते मण्डलीमारुतेन गेहाङ्गणाद्वाघसियाः ।

सौभाग्यध्वजपताकेव पश्यत धेनुःसूहमत्वस्पर्द्धिः ॥]

मण्डलीमारुतेन वातमण्डल्या । सौभाग्यमेव ध्वजस्य पताकेव । आत्मनो दिग्-
त्वस्यापनार्थं नागरिकस्य सहचर प्रतीयमुक्तिरिति कथित् ॥

अनुक्तमप्यर्थं लिङ्गदर्शनात्मनो जानातीति दर्शयन्ती काचित्सप्रीमिहितरक्षणा-
र्थमाह—

गजगण्डस्थलणिहसनमअमइलीकअकरजसाहाहि ।

एत्तीअ हुलहराओ णाणं वाहीअ पइमरणम् ॥ २१ ॥

[गजगण्डस्थलनिघर्षणमदमलिनीकृत रुद्रजशास्त्राभिः ।

आगच्छन्त्या कुलगृहाज्जातं व्याघसिया पतिमरणम् ॥]

गजाना गण्डस्थलनिघर्षणे सति मदेन मलिनीकृताभिरित्यर्थः । कुलगृहारिपशुगृहाद-
पतिभयेन पलायिताना गजानां पुनरागमनस्य पतिमरणव्याभिचारित्वेन पतिमरणमनु-
मितमित्यर्थः । नायिकान्तरासक्तस्य पूर्ववद्भजमारणसामर्थ्याभावात्पतिमरिष्यतीति नि-
श्चितमित्यर्थ इति कथित् ॥

पूर्वप्रियाप्रेमानुवृत्तिविक्षार्थं नागरिकः सहचर प्रति कस्यचिद्वाघस्य दक्षिणनाय-
कता वर्णयति—

णववहुपेम्मतणुइओ पणअं पढमघरणीअ रक्खन्तो ।

आलिहिअदुप्परिअं पि णेइ रणं धणुं वाहो ॥ २२ ॥

१. 'धनुहरोरम्प' इति ग-पाठः. २. 'मारुतैः' इति घ-पाठः. ३. 'गृहाङ्गणाङ्गा-
प्याः' इति ग-पुस्तके, 'गेहाङ्गणाद्वाघात्' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४. 'पश्यत' इति
ग-पुस्तके नास्ति. ५. 'धनुर्मनोरम्परिञ्छोली' इति ग-पुस्तके, 'पश्य धनुस्तक्षणा-
ञ्छोली' इति च घ-पुस्तके पाठः. ६. 'आगल्य' इति घ-पाठः. ७. 'व्याघवध्वा' इति
ग-पुस्तके, 'व्याघ्वा' इति च घ-पुस्तके पाठः. ८. 'अलिहिअदुप्परिअं' इति
ख-पाठः.

[ननयूप्रेमैतनूकृत प्रणय प्रथमगृहिण्या रक्षन् ।

तैर्नूकृतदुराकर्षमपि नयत्यरण्य धनुर्बाध ॥]

तक्षणादिना तनूकृतमपि दुराकर्षमित्यर्थः । प्रथमगृहिण्या साध्यत्वं सूचयितुं जार
प्रति द्रव्या उक्तिरियमिति वक्षित् ॥

सुभगा प्रति कथमपि कुपितस्य प्रियस्य पुनः पुनः सप्रतिज्ञं यत्तत्संगमोपेक्षावचनं
तस्यासन्नदायत्वेन हास्यैरहेतुतामपरा तन्महिषा सोपालम्भमाह—

हासाविओ जणो सामलीअ पदम यसूअमाणाय ।

वट्टहवौएण अल मम त्ति बहुसो भणन्तीए ॥ २३ ॥

[हासितो जन ईश्यामया प्रथम प्रसूयमानया ।

वट्टमर्षादेनाल ममेति बहुशो भणन्त्या ॥]

यथा श्यामया वरद्विद्या प्रथम प्रसूयमानया वट्टमसमागमस्य प्रसवदुःखहेतुं बाहूभ्रम
वादेन वत्ताभिधानेन । वट्टमस्य नामग्रहणेनापीति यावत् । समानं नास्ति प्रयोजनं
मिति बहुशो भणन्त्या पुनः प्रियोपगमाद्योको हासितस्तथा तवापीदं वचनमिति भावः ॥

अनैतत्वे प्रियेऽलमलीकप्रसक्तिसङ्ख्येत्याशयान्वर्ती मातुलानीं प्रोषितमर्तुका सति
यदमाह—

कैअवरहिअ पेम्म णत्थि विअ मामि माणुसे लेए ।

अह होइ करस विरहो विरहे होत्तम्मि को जिअइ ॥ २४ ॥

[कैतवरहितं प्रेम नारत्येव मातुलानि मानुवे लोके ।

अथ भवति कस विरहो विरहे भवति को जीवति ॥]

भवति जायमाने । कथमन्यथा तद्विरहेऽप्यहं जीवामि न च मां परित्यज्य तिष्ठ
सीति भावः ॥

कस्याधिदभीष्टनायिकाया आरावसदेऽन्तर्गताल्लभायै वक्षपरिवर्तनोद्घातिनावयवदर्श
नेन वृत्तं कामिनीजनमनोहरणार्थमात्मनः कामुकवातिशयं वक्षिराह—

अच्छेर व णिहिं विअ सग्गे रत्त व अमअपाण व ।

आसि म्म त महत्त विणिअसणदसण वीए ॥ २५ ॥

१ 'प्रेम्णा' इति ग-पाठ २ 'अस्थितदुरा-' इति ग घ-पाठ 'अस्थितमद
नूकृतम्' इति कुटुम्बकदेव ३ 'राएण' इति ग-पाठ ४ 'श्यामलया' इति घ
पाठ ५ 'रागेणाल' इति ग घ-पाठ ६ 'अविनि' इति ग पुनः के, 'मातुलि'
इति च घ-पुनः के पाठ ७ 'भवत्यपि' इति ग पाठ ८ 'आस ह' इति ग-पाठ

[आश्चर्यमिव निधिमिव स्वर्गे राज्यमिनामृतपानमिव ।

आसीदस्माकं तन्मुहूर्तं विनिर्वासनदर्शनं तथा ॥]

• अस्माकं तस्यास्तद्विनिवसनदर्शनम् । निवन्नायास्तस्या आलोचनमिति यावत् ।
मुहूर्तमात्रं नेत्रोष्णसहेदुत्वादाचर्यमिव । परमसुखहेतुत्वादिधिमिव । निधिरिवेत्यर्थः ।
प्राकृते लिङ्गभिन्नवत्त्वादेरनियमात् । निधीश्वरत्वमात्मस्वराज्यमिव । अतिशयितव्यं
तितकारित्वान्मदन्तानलकान्द्रसकल्पादीरनिर्गुणिकरणाच्चामृतपानमिवासीदित्यर्थः ॥

आत्मन्यनुरागं सपत्न्यां च विद्वेषमुरपादयितुं काप्यस्थिरप्रेमाणं नाधिकान्तरासक्तं
नायकमाह—

सा तुज्झ बह्हा तं सि मज्झ वेसो सि सीअ तुज्झ अहम् ।

बालअ फुडं भणामो पेम्म किर बहुविआरं चि ॥ २६ ॥

[सा तव वैद्यमा त्वमसि मम द्वेष्योऽसि तस्यास्तवाहम् ।

बालकं स्पृष्टं भणामि प्रेम किल बहुविकारमिति ॥]

त्वमसि मम बल्लभ इति निपरिणतानुपपन्नः । तवाहमित्यत्रापि द्वेष्येति विपरिणता
नुपपन्नः । बालकं उचितानभिः । बहुविकारमिति प्रकृतिभेदेन बहुप्रकारमित्यर्थः । अ-
नुरक्तो मां विहायाननुदरकायां तस्यामासक्तित्वं रसाभासावदेति भावः ॥

पत्युर्वैदग्ध्यमात्मनश्च सौभाग्यलिनयादिगुणं सूचयन्ती स्वाधीनभर्तुका प्रसाधि-
कामाह—

अहं लज्जालुङ्गी तस्स अ उम्मच्छराइं पेम्माइ ।

सहिआअणो विं णिउणो अलाहि किं पाअराएण ॥ २७ ॥

[अहं लज्जालुल्लस्य चोन्मत्सराणि प्रेमणि ।

सखीजनोऽपि निपुणोऽर्पगच्छ किं पादरगेण ॥]

उन्मत्सराण्युद्गतानि । उदरालककादिष्वव्याप्तप्रवृत्तानीत्यर्थः । सखीजनश्च निपुणः ।
किञ्चिद्विहमात्रेण लक्षयतीत्यर्थः । अलहिशब्दो निवारणे । अपगच्छेत्यर्थः । किं पा-
दरगेणेति चरणयोरारुह्यस्य स्वतः सिद्धत्वात् । उदरादिषु चरणविहोदयहेतुना लला-
रसेन ॥ प्रयोजनमिति भावः ॥

१ 'विनिवसनम्' इति घ पाठः २ 'वह्मा मम त्वं द्वेष्योऽसि' इति ग पुस्तके,
'बल्लभा त्वमसि मम प्रियस्त्वमसि तस्या' इति च घ पुस्तके पाठः . ३ 'खलु विकार-
मिति' इति घ पाठः ४ 'अहं अ' इति ग-पाठः ५ 'अ' इति ग पाठः . ६ 'अहं
च' इति ग पाठः ७ 'लज्जालुकिनी' इति घ पाठः ८ 'अलाभि' इति घ पाठः .

अरण्ये दत्तसंकेताया गोप्या विरहपीडा संकेतस्थानगमनं च सूचयन्ती दूती जारं प्रसाह—

मधुमासमारुआहममधुअरक्षंकारणिचमरे रण्ये ।

गाअइ विरहकरखोंवद्धपहिअमणमोहनं गोवी ॥ २८ ॥

* [मधुमासमारुताहृतमधुकरक्षंकारनिर्मरेऽरण्ये ।

गायति विरहाखरावद्धपथिकमनोमोहनं गोपी ॥]

मधुमासमारुतेन दक्षिणानिलेनाहते मधुकरक्षंकारैः पूरिते अरण्ये विरहाभिव्यञ्जकै-
रक्षरैरापद्धत्वापथिकमनोमोहनं यथा भवति तथा गोपी गायति । अस्मद्वनितानामपी
दृशः क्लेशो भविष्यतीति पथिकानां मोहो भवतीति भावः । गृहगमनाय पथिकान्तरं
त्वरयितुं पथिकस्येयमुक्तिरिति केचित् ॥

कलहान्तरिताया निभारणमानप्रहृनिन्दाछटेन दूती जारस्यागमनावसरमाह—

तह माणो भौणघणाएँ तीअ एमेअ दूरमणुवद्धो ।

जह से अणुणीअ पिओ एकगाम ठिवय पउत्थो ॥ २९ ॥

[तथा नानो भौमघनया तया एवमेव दूरमणुवद्धः ।

यथा तस्मा अनुनीय प्रिय एकग्राम एव प्रोषितः ॥]

एवमेव कारणं विनैव । एकग्रामे विद्यमानस्यापि त्रिधादर्शनाभावात्प्रवास एवेति
भावः ॥

विदग्धाः पत्युः परवनिताछक्तिमुपायेन वारयन्तीति कापि सतीं शिक्षयितुमाह—

सालोए ठिवअ सूरै धरिणी धरसामिअस्स घेत्तूण ।

गेच्छन्तस्स वि पाए धुअइ हसन्ती हसन्तस्स ॥ ३० ॥

[सालोक एव सूर्ये गृहिणी गृहस्वामिनो गृहीत्वा ।

अनिच्छतोऽपि पादौ धौवति हसती हसतः ॥]

असमय एव पादप्रक्षालनादन्यग्रीसमीपगमनप्रतिषेधे गृहिण्यास्तात्पर्यमवगल्य हसन्तो
गृहस्वामिनः पादौ गृहिणी विदिताभिप्रायाहमनेनेति हसती सती प्रक्षालयतीत्यर्थः ॥

१. 'बद्ध' इति घ-पाठः. २. 'माणहणाए' इति ग-पाठः. ३. 'मानहताया इत्यनेन'
इति ग-पाठः. ४. 'तस्मा मे अदूरमणुवद्धः' इति घ-पाठः. ५. 'यथास्मा' इति ग घ-
पाठः. ६. 'गृहस्वामिकस्य' इति ग-पाठः. ७. 'धावयति' इति ग-पुल्लके, 'प्रक्षालयति'
इति घ घ-पुल्लके पाठः. ८. 'हसन्ती हसमानस्य' इति घ-पाठः.

अन्यस्त्रीनाम्ना व्यवहरन्तं वान्तं प्रति किं ते दृष्टिवलमपि स्त्रीणमिति वदन्तीं सखीं
निवारयन्ती खण्डिता सखिनयोपालम्भमाह—

वाहरउ मं सहीओ तिरसा गोत्तेण किं त्थ भणिण्ण ।

धिरपेम्मा होउ जहिं तेहिं पि मा किं पि णं भणइ ॥ ३१ ॥

[व्याहरतु मा सख्यस्तस्या गोत्रेण विमग्न भणितेन ।

स्विरप्रेमा भवतु यैत्र तत्रापि मा विमप्येन मग्न ॥]

गोत्रेण नाम्ना । 'गोत्रं तु नाम्नि च' इत्यमरः ॥

दुष्टदुतीप्रत्याद्यानार्थं कापि साखी प्रोषितमर्तुका दैवोपालम्भच्छलेनात्मनः पला-
वनुरागातिशयमाह—

रूअ अच्छीसु ठिअं फरिसो अङ्गेसु जम्पिअ कण्णे ।

हिअअं हिअए णिहिअं विओइअं किं त्थ देव्वेण ॥ ३२ ॥

[रूपमङ्गोः स्थित स्पर्शोऽङ्गेषु जल्पित कर्णैः ।

हृदय हृदये निहित विद्योजित किमत्र देवेन ॥]

तस्य रूपसौकुमार्यप्रियवचनसद्भाववर्तमानि भावयन्ती मा न विरहः पीडयतीति
भावः ॥

प्रोषितमर्तुकायाः सखी तत्त्वान्तसमीपगामिन पथिक प्रति सख्या विषमो विरहा-
वस्थामाह—

सअणे चिन्तामइअं काऊण पिअं निमीलिअच्छीए ।

अप्पाणो उवऊढो पसिठिलवलआहिं वाहाहिं ॥ ३३ ॥

[शयने चिन्तामय कृत्वा प्रिय निमीलितास्या ।

आत्मा उपगूढ प्रशिथिलवल्याभ्या बाहुभ्याम् ॥]

आनन्दातिशयान्मुदुलितनेत्रया विरहदोर्वत्वात्प्रशिथिलवल्याभ्या बाहुभ्यामा मा
उपगूढः । सखीरीरमाग्नित्तमिलयैः । तद्यावद्वसमीमवस्था न गच्छति तावदनुस्म-
र्येति तत्त्वान्तं प्रति वक्तव्यमिति भावः ॥

कलहान्तरितयोर्यूनो समग्रसंस्करणाय गतागतसिन्धो दूती तावदुत्प्रेयितुमात्मनि-
न्दाभाह—

परिहूण वि दिअहं घरघरभमिरेण अण्णकजम्मि ।

चिरजीविण्ण इमिणा खविअसो दडुवाएण ॥ ३४ ॥

१. 'वेम्मा' इति ग पाठ २. 'जहिं' इति ग पाठ ३. 'यत्र कुत्रापि' इति ग
पाठ ४. 'हिअएण सम' इति य-पाठ ५. 'स्पर्श' इति य-पाठ ६.
'कर्णयो' इति ग पाठ ७. 'विद्योजितं किं खतु देवेन' इति य-पाठ ८. 'मा-
त्मना परम रुढ' इति य-पाठः—

[परिभूतेनापि दिवस गृहगृहभ्रमणशीलेनान्यकार्ये ।

चिरजीवितेनानेन क्षपिता सो दग्धकायेन ॥]

पक्ष दग्धकायेन । रोषकद्रुवचनैः परिभूतेनापि अन्यकार्ये परप्रयोजनार्थं गृहगृह-
भ्रमणशीलेन चिरजीवितेन घृष्टेनानेन दग्धकायेन क्षपिता स तद्वेजिता स । अ-
न्योऽपि छोटप्रक्षेपादिना परिभूतेन अन्नकार्ये अन्नप्राप्त्यर्थमनुदिवस प्रतिगृह भ्रमता चि-
रजीवितेन दीर्घायुषा काकेन दध्यानुपघातादुद्दिमो भवतीति । अण्वरुधम्मि ददुसा
एण इत्यादि श्लिष्टशब्दशक्तिमूलको ष्वनि । क्षपिता स इत्यर्थे शुब्धा स इति वा ॥

दुर्जनसङ्गपरिहारार्थं कोऽपि सहचरमाह—

वसइ जहिं चेअ खलो पोसिज्जन्तो सिणेहदानेहिं ।

त चेअ आलअ दीअओ ठर अइरेण मइलेइ ॥ ३५ ॥

[वसति यत्रैव खल पोष्यमाण स्नेहदाने ।

तमेवाल्य दीपेव इवाचिरेण मलिनयति ॥]

स्नेहदाने सहपूयकैदाने । पक्षे तैलादिदाने । पोष्यमाण सरध्यमान । पक्षे सदी-
प्यमान खलो यत्रैव वसति । यदाभयेन वसतीत्यर्थः । तमेवाल्यमाश्रयभूतं च न
भूभागवाचिरेण मलिनयति सापवादसाधकारं च करोतीत्यर्थः ॥

भुभग दानोमुय वतुं कुट्टनी कृपणनिदामाह—

होन्ती वि जिण्णल्लयिअ धेणरिद्धी होइ किविणपुरिसस्स ।

जिह्माअवसत्तत्तस्स जिअअछाहि वा पडिअस्स ॥ ३६ ॥

[भवत्यपि निष्पलैव धेनवद्विर्भवति कृपणपुरुषस्य ।

ग्रीष्मातपसतप्तस्य निजच्छायेव पथिरस्य ॥]

यथा स्त्रीया छाया तामनो न वा परस्य सताप हरति तद्वत्कृपणघनमिति भावः ॥
स्फुरितवामनेत्रा प्रोषितमनृका स्त्रीणां वामाक्षिस्पर्दस्य पुंसूचकृतया प्रियाग-
मनमाकर्षण्य सपरितोषमाह—

पुरिए वामणिं तुए जइ एहिं सो पिओ ज्ञ ता सुइरम् ।

समीलिअ दाहिणअ तुंइ अवि पइ पलोइस्सम् ॥ ३७ ॥

१ चिरजीविनामुना क्षपिता सो इति ग पाठ २ 'ध्वेय' इति क पाठ
३ 'दीप इव' इति क ख घ पाठ ४ धणवद्धी इति ग पाठ ५ 'धनश्रद्धि'
इति क ख पुस्तकयो, 'धनर्द्धि' इति च घ पुस्तके पाठ ६ 'तुए अविइ पलोइ-
स्सम्' इति ग पाठ

[स्फुरिते वामाक्षि त्वयि यैचेप्यति स प्रियोऽद्य तत्सुचिरम् ।

समील्य दक्षिण त्वैयैवैतं प्रेक्षिष्ये ॥]

हे वामनेत्र, त्वया स्फुरिते स्फुरणे कृते सति यदि स प्रियोऽद्यागमिष्यति तदा दक्षिणमक्षि निमील्य तं त्वयैव प्रेक्षिष्ये । त्वामेवैकं प्रियावलोकनेन कृतार्थमिध्यामीत्यर्थः ॥

शूनकापदेशेन कामुकान्तरसंभोगभयं प्रदर्शयन्ती दूती नायकं प्रति नायिकाया अनुरागातिशयमाह—

सुणअपउरन्मि गामे हिण्डन्ती तुह कएण सा बाला ।

पासअसारिब्ब घरं घरेण कहआ वि सज्जिहिइ ॥ ३८ ॥

[शूनकप्रचुरे ग्रामे हिण्डमाना तव वृत्तेन सा बाला ।

पाशकशरीव गृहं गृहेण कदापि सादिप्यते ॥]

शूनकप्रायकामुकप्रचुरे ग्रामे त्वदर्शनार्थं प्रतिगृहं भ्रमन्ती सा बाला कदापि केनापि सादिप्यते । उपभोक्ष्यत इत्यर्थः । असौ नववीवना एषा यावदन्त्येन नोपभुज्यते तावदेना भुज्जेति भावः ॥

यं युवानं प्रति एवं वदन्नुताया सोऽस्थिरप्रेमेति कथयन्ती सखी नायिका स्वसौमाभ्यगर्षमाह—

अण्णणं कुसुमरसं जं किर सो महइ सेंहुअरो पाउम् ।

तं नीरसाणं दोसो कुसुमाणं णेअ भमग्गस्स ॥ ३९ ॥

[अन्यमन्य कुसुमरसं यत्किल स इच्छति मधुकरः पातुम् ।

तन्नीरसानां दोषं कुसुमानां नैवै भ्रमरसः ॥]

यथा इच्छातुरूपस्य मधुन एकत्रालभान्मधुको भ्रमति तद्वदयमपीच्छातुकूलनायिकामलभमानायास्त्यमववल्भवते । तदेतस्य चाञ्चल्य मया समक्षितमिति भावः ॥

मन्दब्रेह नायकमभिमुखीकर्तुं दूती नायिकाया अनुरागातिशयमाह—

ईत्यापइण्णणअणुप्पला तुमं सा पडिच्छए एन्तम् ।

दारणिहिण्हि दोहि वि मङ्गलळसेहि य थणेहि ॥ ४० ॥

१. 'स्फुरति' इति ग-पाठः. २. 'द्यागमिष्यति प्रियतमसदा सुचिरम्' इति ग-पाठः. ३. 'त्वया क्षवित्र प्रलोक्षयिष्ये' इति ग-पाठः. ४. 'हिण्डन्ती' इति घ-पाठः. ५. 'शरीव' इति घ-पाठः. ६. 'गृहे न' इति घ-पाठः. ७. 'पाण्डोऽण्णो' इति ग-पाठः. ८. 'स महति पानलोउपः' इति ग-पाठः. ९. 'नैव' इति घ-पाठः. १०. 'इच्छा' इति रा-पाठः.

[रथ्याप्रकीर्णनयनोत्पला त्वां सा प्रतीक्षते आयान्तम् ।

द्वारनिहिताभ्या द्वाभ्यामपि मङ्गलकलशाभ्यामिव स्तनाभ्याम् ॥]

‘तुम सा पङ्क्तिच्छए एतम्’ इति स्थाने ‘तुम पुत्ति क पलोएसि’ इति कश्चित्पुस्तके पाठो दृश्यते । ‘त्व पुत्ति क प्रलोकयसि’ इति तत्सार्यम् । तत्रैव व्याख्या—रथ्या बलोफनद्वारस्थितिस्तनप्रदर्शने कलितशीलखण्डनां कुलवधू प्रति दूती आह—र येति । अयं भावः—नयनोत्पलाभ्या कृतरथ्यापूजा द्वारि कलशाविव स्तनौ निधाय यस्य स्तनं प्रतीक्षते ॥ कथय मया तदानयने यक्षो विधेय इति ॥

अगृहीतानुनयविलक्ष पुनरनुनयविमुक्त नायकं प्ररोचयितुं दूती कलहान्तरिताया नायिकाया पथास्तापमाह—

सा रूण जा रुक्मइ ता छीणं जाव छिज्जए अरुम् ।

ता णीसैसिअं वराइअ जाव अ सासा पहुप्पन्ति ॥ ४१ ॥

[तावद्भुविता यावद्भुचते तावत्क्षीण यावत्क्षीयतेऽङ्गम् ।

तावन्नि श्वसित वशीकया यौवत् [च] आसा प्रभवन्ति ॥]

यावद्भोदितुं शक्यते तावद्भुविताम् । अङ्गं यावत् क्षीयते यतोऽधिकं क्षीणं न भवति तावत्क्षीणम् । यावच्छ्वासा प्रभवन्ति तावन्नि श्वसितम् । इदानीं क्षीणया श्वसितुमपि न शक्तिरिति त्वदुपेक्षया म्रियमाणा त्वयनुरक्तमनुकम्पस्त्वैत्यर्थः ॥

कश्चिदुपरतजायाविरहविधुरमात्मानमनुशोचन्नात्मनः स्थिरश्लेहतासूचनेन नायिका-
न्तरं प्ररोचयितुमाह—

समसोक्कएदुक्कएपरिघट्टिआणं कालेण रुद्धपेम्माणम् ।

मिहुणाणं मरइ ज त खु जिअइ इअर मुअ होइ ॥ ४२ ॥

[समसौर्द्धेयदुःखपरिवर्धितयो कालेन रुद्धप्रेम्णो ।

मिथुनयोर्भ्रियते यत्तत्खलु जीवति इतरन्मृत भवति ॥]

मिथुनं जायापती । ‘क्षीपुसी मिथुनं द्वन्द्वम्’ इत्यमरः । समुदायवाचकोऽप्ययं लक्षणया जायायां पत्न्यौ च प्रयुक्तः । तेनायमर्थः—समाभ्यामुभयो साधारणाभ्यां मुखदुःखाभ्यां परिवर्धितयो कालवशेन स्थिरप्रेम्णोर्मिथुनयोर्दंपत्योर्मध्ये यमिथुनं जाया या पतिर्वा म्रियते तज्जीवति । इतरज्जीवन्मृत भवति निरहदुःखदग्धास्त्रीविनात्मरणमेव वरमिति भावः ॥

१ ‘आगच्छन्तम्’ इति घ पाठ २ ‘णीससइ’ इति ग-पाठ ३ ‘यावन्नि
आसा’ इति घ पाठ ४ ‘मुखदुःख’ इति ग घ पाठ

वसन्ते प्रियप्रवासगमनध्वजविधुरां कुलवधूमाधासयन्ती विदग्धा सखी
सानुनयमाह—

हरिहिं पिअस्स णवचूअपल्लवो पढममज्जरिसणाहो ।

मा रुवसु पुत्ति पत्थाणकलसमुहसंठिओ गमणम् ॥ ४३ ॥

[हरिष्यति प्रियेस नवचूतपल्लवः प्रथममज्जरीसनायः ।

मा रोदो पुत्रि प्रस्थानकलसमुखसंस्थितो गमनम् ॥]

हे पुत्रि, शकुनच्छेदेन मया प्रस्थानकलसे स्थापितो नवचूतपल्लवः प्रियस्य गमनं
हरिष्यति । अतो मा रोदोरित्यन्वयः । वसन्तागमनचिह्नं दृष्ट्वा स्वयमेव स्थास्यतीति
भावः ॥

अनुनयार्थमाकर्त कान्तं दृष्ट्वा कलहान्तरितारमनोऽनुराग सूचयन्ती सपरिहासमाह—

जो कह वि मह सहीहिं छिहं लहिऊण पेसिओ दिअए ।

सो माणो चोरिअकामुअ व्व दिहे पिए ण्हो ॥ ४४ ॥

[य कथमपि मम सखीभिश्छिद्रं लब्ध्वा प्रवेशितो हृदये ।

स मानश्चोरेकामुक इव दृष्टे प्रिये नष्टः ॥]

प्रणयकलहस्यं छिद्रं लब्ध्वा यो मानः सखीभिर्मम हृदये प्रवेशितः । न तु मया
स्वीकृत इति भावः । स मानः प्रिये दृष्टे सति चोरकामुक इव नष्टः पलायितः ॥

कापि कुसुम्भपुष्पावचयार्थं गतायाः सपत्न्याः शीलखण्डनं जातमिति सूचयन्ती
आह—

सहिआहिं भणणमाणा यणए लम्भं कुसुम्भपुष्पं त्ति ।

मुद्धवहुआ हसिज्जइ पप्फोहन्ती णहवआइं ॥ ४५ ॥

[सखीभिर्भण्यमाना सैने लभं कुसुम्भपुष्पमिति ।

मुग्धवर्धूहृन्त्यते प्रस्फोटयन्ती नखपदानि ॥]

‘शशङ्कं पण नखनगानि सान्द्राणि तच्चतुर्ध्वजमाहुः’ इत्यादिकामशास्त्रानिद्वेन
नायकेन स्तनकुक्ष्याग्रे निहितं शशङ्कं दृष्ट्वा सने कुसुम्भपुष्पं लभमिति सखीभिर्भ-
ण्यमाना मुग्धवर्धूनेनखपदानि प्रस्फोटयन्ती प्रक्षिपन्ती हस्यते । मुग्धवधूरित्युपालम्भपर्य-
वचनम् । प्रियदत्त नखस्यतमपि न जानातीति भावः ॥

१. ‘प्रियमस्य’ इति ग-पाठः. २. ‘हरिहिं’ इति घ-पाठः. ३. ‘प्रेषितो’ इति
घ-पाठः. ४. ‘चोरिकाकामुक’ इति ग-पाठः. ५. ‘स्तनयोः’ इति ग-पाठः. ६. ‘वधूः
रपहस्यते’ इति ग-मुद्रके, ‘वधुका प्रहस्यते’ इति च घ-मुद्रके पाठः.

काप्यात्मनो मरणमय प्रदर्शयन्ती मन्दश्रेह नायकमनुमूलयितुमाह—

उन्मूलेन्ति च हिअजं इमाहँ रे तुह विरज्यमाणस्स ।

अवहीरणवसविसंतुलवलन्तणअणद्धदिट्ठाइ ॥ ४६ ॥

[उन्मूलयन्तीव हृदय इमानि रे तत्र विरज्यमानस्य ।

• अवधीरणवसविसमुलवलन्नयनार्थदृष्टानि ॥]

रेशब्द साक्षेपसूत्रोचने । विरज्यमानस्य चेऽवधीरणवसाद्विसमुलमवल्लभ्यं यथा भवति तथा बलन्नयनार्थं येषु एतादृशानि दृष्टान्यालोकनानि मम हृदयमुन्मूलयन्तीयेत्यर्थः । एतेनास्ता तव विरागः । विरागसूचकेनावलोकनेनापि मम मरणावस्था भवतीति सूचितम् ॥

काप्यात्मनो विरहविधुरता सूचयन्ती विरलदर्शनं नायकमाह—

ण मुअन्ति दीहसासं ण रुअन्ति चिर ण होन्ति किसिआओ ।

धैण्णाओ ताओ जाणं बहुवल्लह वल्लहो ण तुमम् ॥ ४७ ॥

[न मुच्यन्ति दीर्घास्तास्तु रुजन्ति चिर न भवन्ति क्लेशाः ।

धैर्यास्ता यासा बहुवल्लभ वल्लभो न त्वम् ॥]

अस्माभिस्तु त्वामासाद्य सर्वमिदमनुभूयत इति भावः ॥

शायगारविनिर्गताया प्रियाया परिवृत्त्यावलोकनं नायकः स्वसौभाग्यव्यापनार्थमाह—

णिहालसपरिधुम्मिरसंसवलन्तद्धतारआलोआ ।

कामरस वि दुब्बिसहा दिट्ठिणिवाआ ससिमुहीए ॥ ४८ ॥

[निद्रालसपरिपूर्णनशीलतिर्यग्बलद्धतारकालोका ।

कामस्यापि दुर्विषया इष्टिनिपाता शशिमुख्या ॥]

सुरसंजागरानिद्रालस अत एव, परिपूर्णनशील, अनुरागातिशयातिर्यग्बलद्धतारकालोको येषु तादृशा शशिमुख्या इष्टिप्रपञ्चा कामस्यापि धैर्यच्युतिं कुर्वन्ति, किं पुनः कामानुरागमिति भावः ॥

काप्यात्मनो जारं प्रत्यनुरागं चिरप्रोषिताप्रियागमने च निष्प्रत्याशता दर्शयन्ती हृदयोपालम्भच्छलेनाह—

जीविअसेसाह मए गमिआ कहँ कहँ वि पेम्मदुहोली ।

एहि विरमसु रे डडुहिअअ मा रजसु कहिं पि ॥ ४९ ॥

१ 'अवहीरणवसविसंतुल' इति ग-पाठ २. 'अवधीरितमविसृष्ट' इति ग-पाठ .
३. 'धैण्णाउ ताउ' इति ग-पाठ ४ 'दीर्घासा' इति ग पाठ . ५ 'कृशात्रय'
इति घ पाठ . ६ 'धन्यास्तु तास्तु' इति घ पाठ . ७ 'परिपूर्णमान' इति ग-पाठ .

[जीवितशेषया मया गमिता कथं कथमपि प्रेमदुर्दोली ।
इदानीं विरम रे दग्धहृदय मा रेज्यस्व कुनापि ॥]

पाशानामन्योन्यबन्धकृतो दुर्मोच्यो ग्रन्थिर्दुर्दोलीति प्रसिद्धा । विरहक्षोणतया जी-
वितशेषया मया प्रेमदुर्दोली तस्य मम च प्रेम्णः परस्परानुबन्धित्वादुर्मोचो ग्रन्थिः कथं
कथमपि आगमिष्यतीति प्रत्याशया सखीजनान्मय्यनया आत्मवधपातकभयाद्य गमिता ।
एतेन श्रियागमनप्रत्याशात्वात्, सीमागमं दृढमक्षिता चात्मनः सूचिता । ताराशविरहदा-
हमनुभूय पुनरन्यत्रानुरज्यस इति सन्निर्देशमाह—रे दग्धहृदयेति । इदानीं विरम मा
रेज्यः कुत्रापि इत्यनेनानुरक्तस्य निवेद्यायोगाच्चार प्रत्यनुरागः सूचितः ॥

नायकस्यानुरागवृद्धये दूती कस्याधिदन्तानखक्षतावलोकनकौतुकमाह—

अज्जापे णघणहक्करअणिरीकरणे गरुअजोव्वणुत्तुम्हम् ।

पडिमागअणिअणअणुप्पलच्चिअं होइ थणवट्टम् ॥ ५० ॥

[आर्याया नवनखक्षतनिरीक्षणे गुरुकयौवनोत्तुम्हम् ।

प्रतिमागतनिजनयनोत्पलार्जितं भवति सैनपृष्ठम् ॥]

आर्याया वरस्त्रियाः ॥

स्त्रीसेवाविमुखं नायकमभिमुखयितुं विपरीतरतानभिज्ञां च नायिका शिक्षयितुं निस्-
प्राप्यदूती भगवत् कृष्णस्य लक्ष्म्याश्च कामपरतां नमस्कारच्छलेनाह—

तं णमह जस्स वक्खे लच्छिउमुहं कोरैयहम्मि संकन्तम् ।

दीसइ मअपरिहीणं ससिविम्बं सूरविम्बं व्व ॥ ५१ ॥

[तं नमत यस्य वक्षसि लक्ष्मीमुखं कौस्तुभे संक्रान्तम् ।

दृश्यते मृगपरिहीनं शशिविम्बं सूर्यविम्बं इय ॥]

विपरीतरतावस्थायां यस्य वक्षसि कौस्तुभे प्रतिबिम्बितं लक्ष्मीमुखं सूर्यविम्बे प्रति-
बिम्बितं निष्कलं चन्द्रविम्बमिव दृश्यते तं नमतेलन्वयः ॥

श्रियाननुयायं दूती कल्पहन्तरीतामाह—

मा कुण पडिक्करमुहं अणुणेहि पिअं पसाअलोहिहम् ।

अइगहिअगरुअमाणेण पुत्ति रासि व्व ठिज्जिदिसि ॥ ५२ ॥

१. 'प्रेमदुर्गया' इति घ-पाठः. २. 'रज्ज' इति घ-पाठः. ३. 'रेश्वरमुताया' इति
ग पाठः. ४. 'सैनपट' इति ग-मुसके, 'सैनपट' इति च घ-मुसके पाठः. ५. 'कोय
' अस्मि' इति ग पाठः. ६. 'विम्बे' इति ग-पाठः. ७. 'अणुणेणु' इति ग-पाठः.

[मा बुरु प्रतिपक्षसुखमनुनय प्रिय प्रसादलोभयुतम् ।

अतिगृहीतगुरुवमानेन पुनरिति रक्षिता भविष्यति ॥]

हे पुनरिति, प्रतिपक्षस्य सपत्नीजनन्यावकाशदानेन सुख मा बुरु । प्रसादाभिलाषिण प्रियमनुनय । अतिगृहीतगुरुवमानेन राक्षिरिव रक्षिता भविष्यति । मायादिपक्षिण्यपि पापाणादिना नियन्त्रितो यथा क्षीयत इत्यर्थः । अनुनयउन्धोऽसौ मानी न स्वामनुनेष्यतीति भावः ॥

विरहोत्पिडिताया विरहाति व्यञ्जयन्ती दूती तत्त्वान्तमाह—

विरहकरवत्तदसहकालिजन्तम्मि सीम हिमजम्मि ।

असू कज्जलमइलं पमाणमुत्तं न पडिटाइ ॥ ५३ ॥

[विरहकरपद्मदु सहर्षोत्पन्नमाने तस्या हृदये ।

अश्रु कज्जलमलिन प्रमाणसूत्रमिव प्रतिभाति ॥]

प्राकृते पूर्वनिपातानियमाद् महविरहलक्षणकरपत्रेण पाठ्यमाने तस्या हृदये कज्जलमलिनमश्रु प्रमाणसूत्रमिव प्रतिभातीति सूत्रम् । तदेव विरहविधुत्तमनुकम्पस्येति भावः ॥

रिदग्धनायिकासमोत्सुकं नायक दूती प्ररोचयितु निषेधमुखेनाह—

दुणिणक्केषममेअं पुत्तअ मा सादसं केरिज्जासु ।

एत्थ गिहिताई मण्णे हिअआई पुणो ण लब्धन्ति ॥ ५४ ॥

[दुर्निक्षेपकमेतत्पुनरपि मा साहस करिष्यति ।

अन निहितानि मन्ये हृदयानि पुनर्न लभ्यन्ते ॥]

पुनरिति विश्वासाय सखेदसंशोधनम् । एतद्दयनिक्षेपरूप साहस मा करिष्यति । यतो दुर्निक्षेपकमेतदिति योजना । लोकेऽपि यो निक्षेप पुनर्न लभ्यते स दुर्निक्षेप इत्युच्यते । एतेन चाद्वाचातुर्यसौन्दर्यादिभिर्नायिकाया मनोहरत्वं व्यज्यते ॥

रतावसाने नायिकाया अपरितोषमाकलय विरक्त नायक संशोधयितु दूती तस्याद्विहरतसाक्षोपपरिहारार्थमाह—

णिव्वुत्तरआ वि बहू मुरजविरामट्ठिई अआणन्ती ।

अविरजहिअमा अण्णं पि किं पि अत्थि चि चिन्तेइ ॥ ५५ ॥

१. 'प्रसादलोभयुतम्' इति ग-पाठः. २. 'क्षीयते' इति ग-पाठः. ३. 'पक्षि-जन्तस्स सीम हिमजम्स' इति ग-पाठः. ४. 'पाठ्यमानस्य तस्या हृदयस्य' इति ग-पाठः. ५. 'करिज्जासु' इति ग-पाठः. ६. 'एत्थ' इति ग-पाठः. ७. 'उणो' इति ग-पाठः. ८. 'इदं' इति ग-पाठः. ९. 'विणिवुत्त' इति र-पाठः.

[निर्दुस्तरतापि बधूः सुरतविरामस्थितिमजानती ।

अविरतहृदयान्यदपि क्रिमप्यस्तीति चिन्तयति ॥]

एतेन नायकेच्छानुपालनं भोग्यं च नाधिकार्याः सूचितम् ॥

भुजंगजनं रोचयितुं कुट्टी वेद्याप्रेमस्तुतिमाह—

णन्दन्तु सुरभमुहरसतहावहराई सअललोअस्स ।

बहुकैअवमग्गविणिम्मिआई वेत्ताणं पेम्माई ॥ ५६ ॥

[नन्दन्तु सुरतमुखरसतृष्णापहराणि सकललोकस्य ।

बहुकैतयमार्गविनिर्मितानि वेद्यानां प्रेमाणि ॥]

उत्तममन्ममाधमरूपसकललोकस्य सुरते यः मुखरसस्तत्र या तृष्णा तदपहारकानि यथाभिलषितसपादकानि तथा यदुभिः कैतवमार्गैर्हेतितुष्करदितचादुप्रमुखैर्विनिर्मितानि वेद्यास्त्रीणां प्रेमाणि नन्दन्तु । कामसत्कारादिमात्रि भवन्स्वल्पयः । 'सुरतरसरमस-तृष्णापहराणि' इति पाठे सरमसानि च तानि तृष्णापहराणि चेति कर्मधारयः ॥

क्रिमिति एवं कृतासीति सहाई नायकेन पृष्टा विरहोत्कण्ठिता तमाह—

अप्पत्तमण्णुदुक्खो किं मं किसिअत्ति पुच्छसि हेसन्तो ।

पावसि जइ चलचित्तं पिअं जणं ता तुइ कहिस्सम् ॥ ५७ ॥

[अप्राप्तमन्युदुःख, किं मां कृतेति पृच्छसि हेसन् ।

प्राप्स्यसि यदि चलचित्तप्रिये' जणं तदा तव कथयिष्यामि ॥]

प्रियापतापजचित्तलोभो मन्युः । न प्राप्त मन्वुरत दुःखं येन तारुणसर्वं हेसन्सन् । किं मां कृतेति पृच्छति । इत्यत्रिलनेन अहेष्य हृदयवाग्रता सूचिता । तद्वति । इदानीं कथितेऽपि न ते प्रत्ययो भविष्यति । तवास्तिरक्षेहृत्पान्ममेव द्योति भावः ॥

विरागता जार विरहोत्कण्ठिता सनिर्वेदमाह—

अवदत्तिअण्ण सहिजम्पिआई जाणं ऐँक ण रमिओसि ।

एआई ताई सोकराई संसओ जेहि जीअस्स ॥ ५८ ॥

१. 'विनिर्दुस्तरता' इति घ-पाठः. २. 'बहुमग्गविणिम्मिआइ' इति ग-पाठः.
३. 'सुरमाइ' इति ग-पाठः. ४. 'सुरतगुमरम' इति घ-पाठः. ५. 'बहुपतिकान'
मार्गविनिर्मितानि' इति ग-पाठः. ६. 'वेद्यावनिताना' इति घ-पाठः. ७. 'सुरतानि'
इति ग-पाठः. ८. 'मानदुःख' इति ग-पाठः. ९. 'इसमानः' इति ग-पाठः.
१०. 'अण्णुहि नायकचित्तप्रिय जणं तावत्प्रियामि' इति घ-पाठः. ११. 'प्रियाजनं'
ततरते कथयिष्ये' इति ग-पाठः. १२. 'एणं तुमं रमिओ' इति ग-पाठः.

[अपहस्तयित्वा सखीजल्पितानि येषां कृते न रमितोऽसि ।

एतानि तानि सौख्यानि संशयो वैर्जीवस ॥]

अस्तु तावत्सुखम्, त्वद्विरहादिदानीं जीवितमेव सद्विगममिति भावः ॥

प्रतिवेशिन्यालापच्छलेन दूती मधूकनिकुञ्जे दत्तसकेतं जारमाह—

ईसालुओ पई से रसि महुअं ण देइ उचेउम् ।

उचेइ अप्पण च्चिअ माए अइउज्जुअमुहाओ ॥ ५९ ॥

[ईर्ष्याशीलः पतितस्तेषां राज्ञौ मधूकं न ददात्युचेतुम् ।

उच्चिनोत्यात्मनैव मातरतिः कञ्जुकस्वभावः ॥]

गृहे जायमानस्य जारसमागमस्याज्ञानादजुल्लभावत्वम् । मधूकनिकुञ्जं मा गच्छ
तस्या गृहमेव गच्छेति जारं प्रति न्यज्यते ॥

भूतवप्राश्लं बलादाकृष्यानुनयमगृहीत्वा गच्छन्तीं नायिका नायक आह—

अच्छोडिअवत्थदन्तपत्थिए मन्धरं तुमं वव्व ।

चिन्तेसि थणहराआसिअस्स मज्झस्स वि ण भङ्गम् ॥ ६० ॥

[बलादाकृष्टवस्त्रार्थान्तप्रस्थिते मन्धर त्वं व्रज ।

चिन्तयन्ति स्तनभरायासितस्य मध्यस्यापि न भङ्गम् ॥]

बलादाकृष्टं वस्त्रार्थान्तं वस्त्राश्लो यया सा चासौ प्रस्थिता चेति कर्मधारयः ।
अस्तु तावन्मम प्रणयभङ्गः, इतमगमनेन स्तनभरायासितस्य मध्यस्यापि भङ्गं न चिन्त-
यसि अहो ते मौढ्यमिति भावः ॥

नागरिकः सहचरं प्रत्यारमणो विह्वलव्यापनाय पथिकप्रपाणालिङ्गयोरन्योन्याभिरु-
गमाह—

उद्धच्छो पिअइ जलं जह जह विरलहुली चिरं पहिओ ।

पावालिआ वि तह तह धारं तणुइं पि तणुएइ ॥ ६१ ॥

[उर्ध्वाशः विनति जलं यथा यथा विरलाहुलिभिरपथिकः ।

प्रपाणालिकापि तथा तथा धारां तनुकामपि तनूकरोति ॥]

विपासापगमेऽपि अलपानच्छलेन मुखावलीङ्गनकुतूहलादूर्ध्वास्य पथिके यथा यथा

१. 'अपहस्त' इति घ-पाठः. २. 'कृते त्वं रमित' इति ग-पाठः. ३. 'ईर्ष्या-
शील' इति ग-पाठः. ४. 'अभ्याः' इति ग-पाठः. ५. 'कञ्जुकस्वभावः' इति घ-पाठः. ६. 'अ-
च्छोडिअ' इति ग-पाठः. ७. 'बलादा' इति ग-पुस्तके नास्ति. ८. 'तन्वी' इति तन्वी
करोति' इति ग-पाठः.

वतगलनाय विरसाहुतिः संविरे जलं पिबति तथा तथा प्रकाशितेषां तदनुयोग-
न्युत्थावलोचनकुतूहलार्थं तनुव्यामपि धारा तन्मूर्च्छोत्थलार्थः ॥

श्रोऽपि वायुरः कामपि कुलंभो नाभिकामुपगच्छन्तरेण प्राप्तुमसमर्थो निशात्रार्थ-
व्याजेन तदीवगृह गतः । सा च तं दृष्ट्वा स्वयमेव भिक्षां दातुं गता । ततो भिक्षा-
नाय निर्गता यच्च विभितिं चिरवतीति निश्वासमना श्वर्ध्ं प्रति उपगती भिक्षावाभि-
धादाप्रोरन्योन्यातुरायमाह—

भिच्छात्रो वेच्छद्वाहिमण्डलं सावि तस्स सुहअन्दम् ।

तं चटुभं अ करद्धं दोहं वि कामा विलुम्पन्ति ॥ ६२ ॥

• [भिक्षाचरः प्रेक्षते नाभिमण्डलं सपि तम् सुखचन्द्रम् ।

तैश्चटुकं च करद्धं द्वयोरपि काका विलुम्पन्ति ॥]

चटुकं भिक्षादागपात्रम् । दुर्बलमिति यावत् । चटुः भिक्षाग्रहणपात्रं च काका नैव
पतितः । तद्गतमग्नं खादन्तीत्यर्थः । द्वयोः परस्परदर्शनसन्निवेशानुरागप्रसङ्गमेव
कानां निर्भयत्वमिति भावः ॥

शिवमनुनेतुं प्रत्येचयन्ती सती कलहान्तरितामाह—

मनोरथप्राप्ताविव मनोरथसिद्धिहेतावपि मनोविकारा भवन्तीति निर्दशयप्रागारिक-
सहचरमाह—

फलहीवाहणपुण्याहमङ्गलं लङ्गले कुणन्तीए ।

असईअ मणोरहगन्भिणीअ हत्या थरहरन्ति ॥ ६५ ॥

‘[कार्पासीक्षेत्रकर्पणपुण्याहमङ्गलं लङ्गले कुर्वत्या ।

असत्या मनोरथगर्भिण्या हस्तौ थरथरायेते ॥]

कार्पासीक्षेत्रकर्पणार्थं पुण्याहं गुमस्तेन यन्मङ्गलमातेपनादिदा तन्मङ्गले कुर्वत्या
मनोरथगर्भिण्या अस्या कार्पासवाच्या मया रन्त्यमिति हृदि न्यस्तमनोरथाया अस-
ति कुलटाया हस्तौ थरथरायेते कम्प प्राप्तः ॥

सत्या शिक्षार्थं सखोजनो धूर्ताचरितमाह—

पहिउडूरणसङ्काउलाहि असईहिं बहलतिमिरस्स ।

आइप्पणेण णिहुअ बहस्स सित्ताई पत्ताइ ॥ ६६ ॥

‘[पथिकच्छेदनशङ्काकुलाभिरसतीभिर्बहलतिमिरस ।

आलेपनेन निमृत्त वटस्य सित्तानि पत्राणि ॥]

उडूरणं छेदनम् । अन्धकारबहुलत्वेन सकेतस्थानस्य वटस्य पत्राणि पथिकादटे-
तीति शङ्का आकुलाभिरसतीभिरालेपनेन द्रुततण्डुलपिटेन निमृत्त सित्तानि ।
पथिकाशङ्का पान्या न च्छेत्सन्तीति भावः ॥

दन्तधावनार्थं सकेतस्थानकरञ्जशास्त्रामञ्जक धार्मिक कुलगा सोशान्ममाह—

भञ्जन्तरस्स वि तुह सग्गगामिणो णइकरञ्जसाहाओ ।

पौआ अज्ज वि धम्मिअ तुह कहं धरणिं विअ ठिवन्ति ॥ ६७ ॥

‘[भ्रमतोऽपि तत्र स्वर्गगामिनो नदीकरञ्जशोभा ।

पदावपाणि धार्मिक तत्र कथं धरणीमेव सृणुत ॥]

कन्त्येव स्वर्गं जिगमिषुरम्रपादिकया स्थितो दूरस्थशास्त्रामञ्ज इवेत् कथमपाणि
संगे ॥ गतोऽमीति भावः ॥

- १ ‘फलहीवाहणपुण्याह-’ इति ग-पठ . २ ‘थरथरायेते’ इति ग घ-याठ .
३ ‘पथिकोऽनन’ इति ग पाठ . ४ ‘आलेपनेन’ इति घ पठ . ५ ‘मया कदा पात्रा
अथ वि धम्मिअ धरणिं’ इति ग-याठ . ६ ‘भञ्जमानस्यति’ इति ग घ पठ
७ ‘शास्त्राया’ इति ग-मुल्लङ्घे, ‘शास्त्राणि’ इति च घ-मुल्लङ्घे पठ . ८ ‘तत्र कथं
पदावपाणि धार्मिक धरणीमेव’ इति ग-याठ . ९ ‘अपि’ इति घ-पठ .

नायिकान्तरप्रलोभनायैमात्मनः स्थिरचेदतां कानुकतां च नापरिचः सदृशमाह—

अच्छुतं देव मणहरं पिआइ मुहदंसणं अइमहग्घम् ।

तग्गामछेत्तसीमा वि झत्ति दिट्ठि मुहावेइ ॥ ६८ ॥

[अस्तु तावन्मनोहरं प्रियाया मुग्धदर्शनमस्तिमहार्षम् ।

तद्भ्रामक्षेत्रमीमांषि क्षतिनि दृष्टा मुस्यति ॥]

सा यत्र भ्रामे क्षतिं तस्य भ्रामस्य बाधेन तस्य गीमापीत्यर्थः ॥

मृतायामपि जायायां हृदय प्रेम्णः प्रशस्ताभ्याजैन कानि मन्दब्रेह नायकमभि-
मुखीकर्तुमाह—

कुलटायाः सकेतस्थानगमनस्वरार्थं तत्राप्यगमननिषेधार्थं च द्विती रात्रिकापत्रचर्व-
णाकुलमर्कटापदेशेन कामार्तेनायकस्य सकेतगतस्य स्थितिमाह—

गोलाणइण कच्छे चक्खन्तो राइआइ पत्ताइ ।

उप्पडइ मक्कहो खोक्खणइ पोट्ट ह पट्टेइ ॥ ७१ ॥

[गोदावरीनद्या कच्छे चैर्वयसजिकाया पत्राणि ।

उत्पतति भैर्वट खोक्खशब्दं करोत्युदरं च ताडयति ॥]

मुहुमुहुद्विर्विक्रयात् त्वां पश्यस्वयं विलम्बमानायां कामार्तिं नाटयन्नस्तीति भावः ॥
पूषमुभगाया सखी तदलङ्कारेणान्यामसमाना मण्डयितुमिच्छोत्तराकान्तस्याक्षेपार्थं
सम्भर्तुं जेहोन्नितविधिस्थैर्वमाह—

गह्वइणा मुअसैरिहइण्डुअदाम चिर वहेअण ।

वैगसआइ णेउण णवरिअ अजाधरे वद्धम् ॥ ७२ ॥

[गृहपतिना मृतसैरिमं वृहद्व्यादाय चिरमूढा ।

वर्गशक्तानि नीतवान्तरमार्यागृहे बद्धम् ॥]

वृहद्व्यादायां वर्तते । गृहपतिना मृतसैरिमस्य वृहद्व्यादायुक्तं दामं चिर-
मूढा तत्सदृशापरमहिपालकरणार्थं वर्गशक्तान्येकमहिपयूषानि नीत्वा तत्सदृशापरम-
हिपाश्रया आर्यागृहे चण्डिकायतने बद्धमित्यर्थः । मम मर्शं मृतस्य पशोरपि जेह्वदो-
नैव कृतम्, एवं तु जीवन्त्वामेव भियमार्यायां तदलङ्कारेणान्यामतदनु रूपामलङ्कृतुमिच्छ-
सीत्यनुवितमेतदिति भावः ॥

सपरनीसपदुःखपेक्षिणामभिनवमुभगां सान्त्वयन्ती सखी विभवादिषु सौभाग्यं गरीय-
सिति प्रदर्शयन्ती आह—

सिहिपेहुणावअसा बहुआ थाहस्स गैव्विरी भमइ ।

गअमोत्तिअरइअपसाहणार्णे मज्झे सयत्तीणम् ॥ ७३ ॥

[शिशिपिच्छान्तसा वधूर्व्यापि स गैर्विता भवति ।

गैजमौक्तिकचितप्रसाधनानां मध्ये सपत्नीनाम् ॥]

१ 'साहस्' इति घ-पाठ २ 'मक्क' काशते उदरे चाहति' इति घ-पाठ
३ 'उप्पडइ' इति ग-पाठ ४ 'वैगसआइ' वि जेण्ण णवरं अजाधरे वद्धम्'
इति ग-पाठ ५. 'सैरिममुण्डुअदाम चिरं बोण्ण । यूषशक्तान्यपि नीत्वा' इति ग-पाठ
'उण्डुअदामो बोण्णयां वर्तते । सोण्डा मालाविशेषो लोहप्रतिद एव । वर्गशक्तः पशु-
गमूहे वर्तते' इति कुञ्जबालदेव ६ 'गैव्विरी' भमए । गअमोत्तापदिज्जसा' इति
ग-पाठ ७ 'मय्येसीय' इति घ-पाठ ८ 'ममुष्ठाइ' नप्रसा- इति ग-पाठ .

येन करिवरान्दत्त्वा तत्कुम्भमुक्ताफलैर्युज्य प्रसाधिता स एवेदानीं मत्सभोगातिप्रस
क्षिणीणो मयूरमात्रमारणक्षमः सवृत्त इति सौभाग्येन जातगर्वा भ्रमतीत्यर्थः ॥

शुटनी भुजगप्रोत्साहनार्थमाह—

बद्धच्छिपेच्छिरीण बद्धुल्लिखिरीणं बद्धममिरीणम् ।

बद्धहसिरीणं पुच्छं पुण्णोर्हं जणो पिओ होइ ॥ ७४ ॥

[बद्धाक्षिप्रेक्षणशीलानां बद्धोल्लपनशीलानां बद्धभ्रमणशीलानाम् ।

यक्रहासशीलानां पुनश्च पुण्यैर्जनः प्रियो भवति ॥]

बद्धत्वादेः कटाक्षनिरीक्षणं साभिप्रायवचनप्रयोगो विभ्रममग्नुरेव भ्रमणमाशयनिदशक
हसितं वाच्यम् । पुण्यैरिति धन्यस्त्वमसि येनैवविधापि मम दुहिता त्वा प्रदेयमनुरक्तेति
भावः ॥

विजने गोदानरीतीरलतागृहे ध्यानाद्यवस्थित्या सकेतविप्रकारिण धार्मिकः शुट्टा
काचिदाह—

१ भैम धम्मिअ धीसत्थो सो सुणहो अज्ज मारिओ तेण ।

गोलाअडविअडयुडङ्गवासिणा दरिअसीहेण ॥ ७५ ॥

[भैम धार्मिक विसम्भ स शुनकोऽद्य मारितस्तेन ।

गोदानरीतद्विकटपुञ्जवासिना हस्तसिंहेन ॥]

अत्र लतागृहे सिंहसंचारेण गमननिषेधो व्यज्यत ॥

निदिताभिप्रायोऽपि मयति बोधयन्बधिरिहासशीलः कमपि युधानमाह—

वाएरिएण भरिअ अच्छिं क्कणऊरउत्पलरएण ।

कुम्भन्तो अयिइह कुम्भन्तो को सि देवानम् ॥ ७६ ॥

[वातेरितेन भूतमक्षि कर्णपूरोत्पलरजसा ।

पूत्पुर्वप्रवितृष्ण कुम्भकोऽमि देवानाम् ॥]

वातेरितेन कर्णावतलीकृतस्त्रोत्रपल्लव रजसा भूत नायिकाया अक्षि तद्विषयवचनाय
पूत्पुर्वन् पूत्कारव्याचनववितृष्ण कुम्भन् तद्विषयवचनकीलुफनानिमिषनयत्वाद्देवानां
मध्यं कृतमो दवस्त्वम् । प्रतिदानां देवानामेवविधपुष्पपञ्चागणिवामावां ति भावः ॥

१ 'बद्धोल्लपनशीलानां' इति ग-पाठ, 'बद्धभ्रमणशीलानां' इति य-ग-पाठ

२ 'धम्मिअ मम' इति ग-पाठ ३ 'धार्मिक भ्रम विभ्रम' य-पाठ ४ 'ध्यानाद्यवस्थित्या' इति ग-पाठ

५ 'पुण्यैर्जनः' इति ग-पाठ ६ 'कुम्भन्तम्' इति ग-पाठ ७ 'कर्णपूरोत्पलरजसा' इति ग-पाठ

८ 'रजसा' इति ग-पाठ

कान्तानयनस्वरार्थं मदनार्तिमभिनयन्ती प्रोषितभर्तृका सखीमाह—

सहि दुम्भेन्ति कैलम्बाइ जह म तह ण सेसकुसुमाइ ।

णूण इमेसु दिअहेसु चहइ गुडिआघणु कामो ॥ ७७ ॥

[सखि व्यथयन्ति कदम्बानि यथा मा तथा न शेषकुसुमानि ।

* नूनमेषु दिवसेषु चहति गुटिकाघनु काम ॥]

गुटिकाकारेण कदम्बकुसुमेन कुममाखो मा सापयतीति भाव । एतेन वसन्तापे क्षयापि वषाणाले विरहिणा दुःसह इति ध्वनितम् ।

विरहोत्कण्ठिताया सखी स्त्रीवधपातकमय दर्शयन्ती सत्कान्त तदुपगमनार्थमाह—

णाह दई ण तुम पिओ त्ति को अह्म एत्थ वावारो ।

सा मरइ तुज्झ अँअसो तेण अ धम्मक्खर भणिमो ॥ ७८ ॥

[नाह दूती न त्व प्रियं इति कोऽस्माकमत्र व्यापार ।

सा धियते तिरागग्रस्तोऽहं धर्मादहं संश्राम ॥]

कोऽस्माकमिति प्रियस्वात्तवैष तदनुकम्पनमुचितमित्याशय ॥

कृतचरणपातमनुनयन्त कात खण्डिता युवत्यन्तरसङ्गविह दक्षयन्ती सोपालम्भमाह—

तीअ मुहाहिं तुह मुई तुज्झ मुहाओ अ भअ च्छणम्मि ।

ईरथाहत्थीअ गओ अइदुक्खरआरओ तिलओ ॥ ७९ ॥

[तस्या मुखात्तत्र मुख तव मुखाच्च मम चरणे ।

हस्ताहस्तिकया गतोऽतिदुर्गन्धवारकस्तिल ॥]

अत्र तिङ्शोपालम्भच्छलेन युवत्यन्तरसङ्गविह्वलमाधिकृतम् ॥

इयमस्मिन्नुरक्तेति नागरिक सहचरमवगमयन्माह—

सामाइ सोमलिज्झइ अद्धच्छिपलोइरिमि मुहसोहा ।

जम्बूदलकअक्खणावअसभेरिए हलिअपुत्ते ॥ ८० ॥

१ 'कअम्बाइ' इति ग पाठ २ 'दिअसेसु' इति ग-पाठ ३ 'दुमनायते' इति ग पाठ, 'दत्तयति' इति घ-पाठ ४ 'विरहे' इति ग-पाठ ५ 'वधम' इति ग पाठ ६ 'तव विरहे' इति ग घ पाठ ७ 'मणामि' इति ग पाठ ८ 'हसिष्य' इति ग पाठ ९ 'चरण' इति ग पुस्तके, 'चरणयो' इति च घ पुस्तके पाठ. १० 'दुक्खर' इति घ पाठ ११. 'सामलीए' इति ग पाठ १२ 'भमिरे इतिअउत्ते' इति ग-पाठ

[श्यामाया श्यामलायतेऽर्धाक्षिप्रलोकनशीलाया मुखशोभा ।

जम्बूदलवृतकर्णवैतसममणशीले हलिकपुत्रे ॥]

सवेतस्थानसूचकेन जम्बूपत्रेण कृत कर्णवतसो येन तारदृश्यासौ भ्रमणशील
भेति कर्मधारय । तथाभूते हलिकपुत्र सति निहवार्यमघाभिप्रेक्षणशीलाया श्यामाया
मुखशोभा सवेतसमयत्ननवेच्छदयण सेदेन च श्यामलायते । खयमेव मलिना भवती
त्यर्थः ॥

फलहा तरिता का-तातुनयाय इतीमाह—

वूइ तुम विअ कुसला ककरडमउआई जाणसे वोडुम् ।

कण्डूइअपण्डुरं जह ण होइ सह त कॅरेज्जासु ॥ ८१ ॥

[इति तमेव पुशला कॅकससुडुफानि जानासि वक्तुम् ।

कण्डूयितपाण्डुर यथा न भवति तथा त करिष्यसि ॥]

यथा कण्डूयनकौशलेन कण्डू शाम्यति वैश्यः च न भवति, तथा त्वमपि सुदुषट्
केन तथा वक्ष्यसि यथासौ नोद्विग्नः मा च भगवत् इत्याशयः ॥

अमपि बहुवचन नायक प्रति इती कव्याधिदुरागमाह—

महिलासहस्रभरिण तुह हिअए सुंभअ सा अमाअन्ती ।

दिअह अणण्णकम्मा अङ्ग तणुअ पि तणुएइ ॥ ८२ ॥

[महिलासहस्रभृते तत्र हृदये सुभग सा अमाती ।

दिवसमूर्धन्यवर्मा अङ्ग तनुवमपि तनुस्फोति ॥]

अमाती स्थानमलभमाना । दिनस व्याप्य । प्रतिदिनमिति यावत् । प्रतिदिन
स्वत्समागमोपायवितया क्षीयत इत्यर्थः ॥

कोऽपि कस्याधिदुरागातिशय सूचय-सहचरमाह—

रणमेत्त पि ण पिट्टइ अणुदिअहविड्ढण्णगरअसतावा ।

पच्छण्णपात्रसङ्गे व्व सामली मङ्ग हिअआओ ॥ ८३ ॥

१ 'श्यामायते श्यामगया इति ग पाठ' २ 'वतसे भ्रमति इति ग पाठ'

३ 'वक्तुम् । कण्डूइअपण्डुराण इति क ख पाठ' ४ 'कुणेज्जासु' इति क पाठ' ५ 'क-

टिनसुडुफानि इति ग पाठ' ६ 'जानाप इति घ पाठ' ७ 'कण्डूनिपाण्डुरं' इति

क ख पुस्तकयो, कण्डूयति पाण्डुरं इति च घ पुस्तके पाठ' ८ 'सुभअ टाणम

लहती इति ग पाठ' ९ 'सुभगस्थानमलभती' इति ग पाठ' १० 'अनन्यव्या

पारा' इति ग पाठ' ११ 'हिअआओ' इति ग पाठ

[क्षणमात्रमपि नैषयात्वनुदिवसवितीर्णगुरुकसंतापा ।

प्रच्छन्नपापशङ्केव श्यामला मम हृदयात् ॥]

अनुदिवसे वितीर्णो गुरुकः संतापो विरहदूतः पक्षे अनुस्मरणकृतञ्च यथा सा ।
तथा श्यामला श्यामा ॥

वापि मुशीला नायिका कृतापराधमनुनयन्तं कान्तं सप्रणयरोपमाह—

अञ्जना ग्राहं कुपिता अवरूढसु किं मुदा प्रसादयति ।

तुह मण्युसमुत्पाज्येण मज्झ माणेण वि ण कज्जम् ॥ ८४ ॥

[अञ्जना ग्राहं कुपिता उपगृह्ण किं मुदा प्रसादयति ।

तव मन्थुममुत्पादकेन मम मानेनापि न कार्यम् ॥]

अनभिज्ञे स्वामिनि मानो निष्फल इति भावः ॥

विहोतृष्विस्तायाः सखी तत्कान्तमाह—

दीदुहपउरणीसासपआविओ वाहसलिलपरिसिच्छो ।

सादेह सामसवलं च तीर्ये अहरो तुह विओए ॥ ८५ ॥

[दीर्घोष्णप्रचुरनिःश्वसैप्रतप्तो बाष्पसलिलपरिसिक्तः ।

सौघयति श्यामशयलमित्र तस्या अधरस्तरं वियोगे ॥]

श्यामशयलं प्रतविशेत् १ । यन्नामौ प्रविश्य जले प्रविश्यते ॥

वापि मध्याह्नाभिसारिका 'सकेतितहृदतीरलताग्रहमह मता, त्वं तु न गतः' इति जारं
प्रति प्रतिपादयन्ती सत्यपि हृदयस्य स्थिरवेदता सज्जनहृदयप्रसंगाच्छटेनाह—

सरए महद्ददणं अन्ते सिसिराई वाहिरुहइं ।

जाआई कुविअसज्जणहिअअसरिच्छाई सलिलाई ॥ ८६ ॥

[शरदि महाहृदानामन्तः शिशिराणि बहिरुष्णानि ।

जातानि कुपितसज्जनहृदयसंदृष्टाणि सलिलानि ॥]

इती कस्याधिन्मौग्यवर्णनच्छलेन प्रवभाभिसारस्वीकारं सूचयति—

आअस्स किं णु करिदिम्मि किं वोळिस्सं कहं णु होइहि[इमि]ति ।

पढमुंगअसासहआरिआइ हिअअं थरहरेइ ॥ ८७ ॥

१. 'नापेति' इति ग पाठः. २. 'उज्जुअ' इति ख-पाठः. ३. 'कुरुक' इति
घ पाठः. ४. 'अवरूढस्व' इति ग-घ-पाठः. ५. 'प्रतापितो' इति घ-पाठः. ६. 'परी-
पिक्तः' इति ग-घ-पाठः. ७. 'सौघयत्यभिपानीयव्रतमिव' इति ग-पाठः. ८. 'शीतानि'
इति ग पाठः. ९. 'सदृशानि' इति ग घ पाठः.

[आगतम् किं नु करिष्यामि किं वैश्यामि कथं नु मविष्यति [इदम्] इति ।

प्रथमोद्धतसौहस्यारिकाया इदयं वरपरायते ॥

इदमभियरणग्राहसम् । वरपरायते कम्पते ॥

कलहान्तरिताया महित्वदोषपरिहारार्थं वृत्ती तत्कान्तमगृहीतानुनयविलक्षणाह—

णेउरकोटिविलम्बं चिउरं दहअस्स पाअपडिअस्स ।

हिअअं पउत्थमाणं उम्मोअन्ति विअ कहेइ ॥ ८८ ॥

[नूपुरकोटिविलम्बं चिउरं दयितम् पादपतितम् ।

इदयं प्रोषितमानमुम्मोचयन्त्येव कथयति ॥]

नूपुरकोटिविलम्बं दयितम् विकुरमुन्मोचयन्त्येव इदयं प्रोषितमानं कथयतीति संबन्धः । अयमाशयः—अशङ्कितप्रणाया भानिन्यो वाचा मुत्तरागेण वानविष्कृतं प्रसादं चेष्टाविशेषेणाभिप्रेतुर्वन्ति । तथा च नूपुरावलम्बं तव केशमुन्मोचयन्त्येव हठपरि-
रम्भलोभं हृदयं कथितमेव । त्वया तु तदनु रूपं न कृतम् । अतस्तवैवेदमवैदमर्थम्,
न तु तस्या महित्वदोष इति ॥

वृत्ती कस्याधिदनुरागातिभ्य प्रतिपादयन्ती नायकमाह—

सुग्गहाराअसेसेण सामली सह चरेण सोमारा ।

सा फिर गोळाऊले हाआ जम्बूकसायेण ॥ ८९ ॥

[तवाङ्गरागशेषेण श्यामला तथा चरेण सुकुमारा ।

सा फिल गोर्दाकूले आता जम्बूकपायेण ॥]

कृताङ्गोद्धर्तनस्य तवाङ्गरागशेषेण तीक्ष्णेन जम्बूकपायेण सा सुकुमाराङ्गी क्राते-
स्पर्शः । किलेति आनादवी किलञ्चन्दः । आनच्छब्देन तथा त्वदङ्गसङ्गाभिलाषिण्या
तवाङ्गरागोच्छिष्टग्रहणं कृतमिति भावः ॥

वक्त्रमस्य गोष्ठीनायकता दर्शय-ती विरहोत्कण्ठिता सखीजनमाह—

अज्ज ज्वेअ पउत्थो अज्ज विअ सुण्णआइं जाआइं ।

रत्थामुहदेउलचत्तराईं अहं च हिअआइं ॥ ९० ॥

[अत्रैव प्रोषितोऽयैव शून्यकानि जातानि ।

रथ्यामुखदेवकुलचत्तराण्यस्माकं च हृदयानि ॥]

१. 'वक्ष्ये' इति ग-पाठः. २. 'साहसिकाया इदयं भयेन कम्पते' इति ग-पाठः.
३. 'उन्मूल्यन्त्येव' इति ग-पाठः. ४. 'सुङ्गाङ्ग' इति ग-पाठः. ५. 'श्यामली' इति ग-
पाठः. ६. 'मोदावरीप्रवाहे' इति ग-पुस्तके, 'मोदावरीतीरे' इति च घ-पुस्तके पाठः.

कस्याधिद्विजिकाया भुजगजनेन क्रियमाणां खाद्यामसहमाना निजगुणगर्वमभिव्य-
ञ्जयती काचिदाह—

चिरं हि पि अवाणन्तो लोआ लोएहिं गोरवन्महिआ ।

सोणारतुले व्व निरक्खरा वि रान्धेहिं उव्वन्ति ॥ ९१ ॥

[सिद्धिरेस्तु इत्यादि]वर्णावलीमप्यजानतो लोका लोकेर्गौरवाम्यधिका ।

सुवर्णकारतुला इय निरक्षरा अपि स्वधैरुह्यते ॥]

यथोक्ताधैरुह्यतीति देशीशब्द । निरक्षरा अक्षरेस्सारहिता । पक्षे अविद्या अपि
स्वधैरुह्यते । सादरं नीयत इत्यर्थः ॥

कलहात्तरिताया पात उत्पन्नाविनोदार्थं सहचरमाह—

आअम्बन्तकपोल खलिअक्खरजम्परिं पुरन्धोद्विम् ।

मा छिवसु त्ति सरोस समोसरन्ति पिअ मरिमो ॥ ९२ ॥

[आताम्रात् कपोला स्खलिताक्षरजल्पनशीला स्फुरदोष्ठीम् ।

मा स्पृशेति सरोप समपसर्पतीं प्रिया खराम ॥]

आत्मनो विश्वव्यापनाय नागरिक सहचरमाह—

गोलाविसमोआरच्छलेण अप्पा वरम्मि से मुक्को ।

अणुअम्पाणिदोस तेण वि सा आढमुवऊढा ॥ ९३ ॥

[गोदायरीविषमावतारच्छलेनात्मा उरसि तस्य मुक् ।

अनुकम्पानिर्दोष तेनापि सा गाढमुपगूढा ॥]

मन्दब्रह्म नायक दूती नायिकानुरागकथनेनानुकूलयितुमाह—

सा तुइ सहत्थदिण्ण अज्ज वि रे सुहअ गंधरहिअ वि ।

उव्वसिअणअरर्यरेदेवदे व्व ओमालिअ बहइ ॥ ९४ ॥

[सा त्वया सहस्रदत्तामद्यापि रे सुभग गंधरहितामपि ।

उद्धसितनगरगृहदेवतेव अवमालिका बहति ॥]

- १ 'मिणद' इति ग पाठ २ 'मिनतिमप्यजानतो' इति ग पुस्तके, 'वर्णमप्यजा-
नतो' इति च घ पुस्तके पाठ ३ 'गौरवाम्यधिका' इति घ 'पुस्तके, 'गौरवेणार्चिता' इति च ग
पुस्तके पाठ ४ 'अक्षरेस्सारहिता' इति उ ५ द ५ 'आताम्रायमाणकपोला'
इति घ पाठ ६ 'जल्पिनी स्फुरदोष्ठीम्' इति ग पाठ ७ 'स्मरामि' इति ग पाठ
८ 'गाढ' इति ग पाठ ९ व्याजेन इति ग पाठ १० 'अक्षरहिता' इति ग
पाठ ११ 'हरदेवते' इति ग पाठ १२ 'देवतामिव नवमालिका' इति घ-पाठ

परिवानेन पर्युषितत्वेन च मदिता माला अवमालिका । रे शुभमेति सखेद संबो
धनम् । सा मुन्दरी त्वया खकेशपाशादाकृष्य स्वहस्तदत्तां गन्धरहितामप्यवमालिका
त्वत्करस्पर्शबहुमानादद्यापि बहति । उद्धसितनगरगृहदेवतेवेति । अयं भावः—त्वद्विर-
हादिदानीमकृतप्रसाधना सहजसौन्दर्यमात्राभरणा त्वद्रतचित्ततया निर्जालेह्यपुत्रि-
केव शोच्या दशामुपगता, अतस्त्वामनुकम्पयेति भावः ॥

मानप्रदणार्थं शिक्षयन्ती यन्धुपुरंद्री काचिदाह—

केलीअ वि रूसेठं ण तीरए तम्मि चुकविणअम्मि । ,

जाइअएहिं य माए इमेहिं अबसेहिं अजेहिं ॥ ९५ ॥

[केलीअपि रूषितुं न शक्यते तस्मिन्नुत्तविनये ।

याचितकैरिव भातरेभिरवशैरङ्गैः ॥]

प्युत्तविनये रत्तिलौल्यलक्षितलज्जे तस्मिन् याचितकैरिव अभ्यर्थांनीतेरिव एभिरव-
शैरस्वाधीनैरङ्गैर्हे मातः, केल्या परिहासेनापि रोषः कर्तुं न शक्यत इत्यर्थः । एतेन
वाग्ने प्रणयातिशयो व्यज्यते ॥

वासुकजनानुरजनार्थमात्मनो विपरीतरताभिज्ञतां सूचयन्ती काचिदुपुत्रक्या
क्रीडन्ती बालिका निवारयन्तीमाह—

उप्फुल्लिआइ खेळउ मा णं चारेहि होउ परिऊडा । ,

मा जहणभारगरुई पुगिसाअन्ती किलिम्मिहिइ ॥ ९६ ॥

[उत्फुल्लिकया खेलतु मैना वारयत भवतु पैरिक्षामा ।

मा अधनभारगुर्वी पुरुषायितं धुर्नती ह्रमिष्यति ॥]

पारोषविष्टानां मुहुः पनोपतनहपा क्रीडा उत्फुल्लिकेत्युच्यते । भवत्विति । धमेन
जितश्वासा कृशमध्या च भवत्विति भावः ॥

शीलखण्डनविलक्षणा, कुलबाधायित्तसमाधानार्थं तत्पक्षपातिनी काचिदाह—

पउरजुवाणो गामो महुमासो जोअणं पई ठेरो ।

जुण्णमुरा साहीणा असई मा होउ किं मरउ ॥ ९७ ॥

१. 'जाअइ अज्जिव माए' इति ग-पाठः. २. 'क्रीडयापि' इति ग-पाठः. ३. 'रो-
षितुं' इति घ-पाठः. ४. 'शक्नोमि' इति ग घ-पाठः. ५. 'अपगतविनये' इति
ग-पुस्तके, 'गतविनये' इति च घ पुस्तके पाठः. ६. 'आयतेऽस्याकं मातरेभि' इति
ग पाठः. ७. 'परिगूडा' इति घ-पाठः. ८. 'पुरुषायन्ती ह्रमिष्यति' इति घ-पाठः.

[प्रचुरयुवो ग्रामो मधुमासो यौवन पति. स्थिरः ।

जीर्णमुरा स्वाधीना असती मा मरतु किं क्रियताम् ॥]

तदेवमप्रतीकारदारुणेषु विनाशकारणेषु सत्सु शीलखण्डन नापराधापादकमिति भावः॥

आयस्य मनोहरणार्थं दूती नायिकाया अनुरागातिशयमाह—

यंहुसो वि कहिञ्चन्तं तुह अवणं मज्झ हत्थसंदिट्ठम् ।

ण सुअ त्ति जैम्पमाणा पुणरुत्तसअं कुणइ अज्जा ॥ ९८ ॥

[यहुशोऽपि कथ्यमान तव वचन मम हस्तसदिष्टम् ।

नै ध्रुतमिति जल्पन्ती पुनरुक्तसतं करोत्यर्था ॥]

पुन पुन धयणानुरागाच्छ्रुतमपि न ध्रुतमित्येव वदतीति भावः ॥

दूती कस्याश्चित्कुलजाया कमपि युवान प्रत्यनुराग स्वरणार्थं शलं चाह—

पाअडिअणेहसवभावणिमर सीअ जह तुम दिट्ठो ।

संवरणवाधेहाए अण्णो वि जणो तह ठ्वेअ ॥ ९९ ॥

[प्रकटितस्नेहसङ्क्रान्तिर्भर तथा यथा त्व दृष्ट ।

मनरणव्यावृत्तया अन्योऽपि जनैस्तथैव ॥]

एतस्मिन्ननुरक्तमिति वधिन्मा ह्यसीदिति स्वरणार्थमन्योऽपि तथैव दृष्ट इत्यर्थः ॥

प्रसधानन्तरं स्वामिना सनिधिं परित्याजिता काचित्पुनस्त दन्तोद्गमकथनच्छलेन

सभोगक्षुत्तानुभवसमयप्राप्तिमाह—

गेह्णह पलोअह इमं पहसिभवअणा पइस्स अप्पेइ ।

जाआ सुअपढमुठिअण्णदन्तजुअल्लिअ योरम् ॥ १०० ॥

[गृहीत प्रलोकयतेद प्रहसितवदना पत्युरर्पयति ।

जाया सुतप्रथमोद्भिन्नदन्तयुगलाङ्कित वंदरम् ॥]

जाया इह वदर गृहीत प्रलोकयतेति पत्युरर्पयतीति संबन्धः । स्वयमेव क्षत सत्राय
पुत्रेण क्षतमिति मिथ्यैव दर्शयतीति प्रहसितवदनेति पदेन च्वन्यते ॥

१. 'प्रचुरयुवो' इति ग घ पाठ २. 'स्मरतु' इति घ पाठ ३. 'जम्पमाणा'
इति ग पाठ ४. 'न शृणोति जल्पमान' इति ग पाठ ५. 'करोतीधरसुता' इति
ग घ पाठ ६. 'निर्भरतया' इति ग घ-पाठ ७. 'जनस्वयाविव एवम्' इति
ग-पुस्तके, 'जन वय तथैव' इति च घ-पुस्तके पठ ८. 'मन्द प्रलोभ्ये' इति घ-
पाठ ९. 'विहसित' इति ग-पाठ १०. 'पत्युरात्मनि' इति घ-पाठ ११. 'वदनम्'
इति क घ-पाठ

रसिअजणहिअअदइए कइवच्छलपमुहसुकइणिम्मइए ।
 सत्तसअग्नि समत्तं वीअं गाहासअं एअम् ॥ १०१ ॥
 [रसिकजनहृदयदयिते ववियत्तलप्रमुग्धसुकविनिर्मिते ।
 सतशतके समाप्तं द्वितीयं गाथाशनकमेतत् ॥]

सृतीयं कृतम् ।

मिध्मा जनो वदतीत्यनुनयन्तं कान्तं मानिनी सप्रणयरोपमाह—
 अच्छउ ता जणवाओ हिअअं विअ अत्तणो तुह पमाणम् ।
 तह तं सि मन्दणेहो जह ण उवालम्भजोग्गो सि ॥ १ ॥
 [अस्तु तौनजनवादो हृदयमेवामनस्तत्र प्रमाणम् ।
 तथा एवमसि मन्दजेहो यथा नोपालम्भयोग्योऽसि ॥]

अयमस्यो मन्दजेह इत्येवंरूपो जनवादोऽस्तु तावत् । हृदयमेवेति । आरमहृदयेनैव
 स्य जानासीत्यर्थः । वधेति । शिष्यो हि दाक्षिण्येनोपालम्भं सहते, त्वं तदासीन इति
 नोपालम्भयोग्य इति भावः ॥

हृदयोपालम्भच्छब्देन यथाभिमतव्यन्ताश्रयि सूचयन्ती पुलटा कमपि, युवानं
 रोचयितुमाह—

अप्पच्छन्दपहाविर दुल्लहलम्भं जणं वि सगगन्त ।
 आमासपहेहिं भमन्त हिअअ कइआवि भजिहिसि ॥ २ ॥
 [आत्मच्छन्दप्रधावनशील दुर्लभलम्भं जनं [अपि] मृगयमाण ।
 आकाशपथैर्जगद्द्वयं कदापि मह्यपसे ॥]

क्षेत्राच्च रित्यसूचनार्थमात्मच्छन्दप्रधावनशीलेति संबोधनम् । दुर्लभस्य श्रुतमु-
 रास्य लम्भः प्राप्तिर्यस्मात्तत् । आकाशपथैर्निर्वलम्भनमार्गभ्रमत् । वृष्टीप्रमुखोपाया-
 दिनि भावः । पाठान्तरे आयागवर्तित्वार्थः । कदापीत्यभिप्रेत्य. संभावनायाम् । क-
 खलु मुमनो मल्लव भ्रमणं शमयिष्यतीति भावः ॥

१. 'विनिर्मितौ' इति ग-पाठः. २. 'तत्' इति ग पाठः. ३. 'आरमच्छन्दप्रम-
 दिपु दुर्लभलम्भं जनं निमार्गमानः—'इदं हि दृश्ये ॥' इति ग पुलटे, 'आत्मच्छ-
 न्दप्रभावशीले दुर्लभलम्भं जनमपि निमार्गमाणः । अश्वपथैर्हृदयत्रियापि मया भवति ॥
 इति च घ पुलटे पाठः.

कापि गुणगर्विता यणिका सकृत्पृक्तं पथान्मन्दादरं मुजंगं निन्दन्ती दूतीमाह—

अहव गुणविव्रल लहुआ अहवा गुणअणुओं ण सों लोओ ।

अहव क्षि णिगेगुणा वा बहुगुणवन्तो जणो तस्स ॥ ३ ॥

[अथवा गुणा एव लघवोऽथवा गुणज्ञो न स लोकः ।

अथवाक्षि गुणानि वा बहुगुणवाञ्छनस्तस्य ॥]

तस्य जनः प्रियारूपो बहुगुणवान्वेति योजना । येन मा न बहु मन्यत इत्यभिप्रायः ॥

अन्यासक्तं प्रियमात्मनो दुःखाभिव्यञ्जनेन कथं निवारयसीति वदन्ती मातुलानी
कापि प्रियस्यास्मिन्धतां सूचयन्ती स्थान्तेन सनिर्वेदमाह—

फुट्ठतेण वि हिअएण मामि फह णिव्वरिज्जण तम्मि ।

आदसे पडिबिम्बं व्व जम्मि दुःखं ण संरुमइ ॥ ४ ॥

[स्फुटतापि हृदयेन मातुलानि कथं निवेद्यते तस्मिन् ।

आदर्शे प्रतिबिम्बमिव यस्मिन्दुःखं न संक्रामति ॥]

प्रयत्नसाधितामपि युवती विमृश्यकारितया बोधयच्छन्त नायकमुत्साहयितुं वृत्तिं
सौपालम्भमन्यापदेशेनाह—

पासासङ्की काओ णेच्छदि दिण्णं पि पडिअघरणीय ।

ओअन्तकरअलोगलिअवलअमग्गट्ठिअं पिण्डम् ॥ ५ ॥

[पाशाशङ्की काको नेच्छति दत्तमपि पथिकगृहिण्या ।

अधनतकरतलायगलितवलयमध्यस्थितं पिण्डम् ॥]

यथा पथिकगृहिण्या दत्तमध्यवनतादधोमुखीकृतात्करतलाद्गलितस्य वलयस्य मध्ये
स्थितं भक्तपिण्डं काकः पाशाशङ्कया नेच्छति तथा त्वमध्येना मया दीयमानामपि भय-
शङ्कया परिहरसीति भावः ॥

१. 'गुणअणुओं' इति ग-पाठः. २. 'विगुणाओ' इति ग-पाठः. ३. 'गुणार्णवो
न स लोकः' । अथवा वयं निर्गुणा अधिकगुण्यः स जनस्तस्य ॥' इति घ-पुस्तके, 'गुणज्ञ
एव न स जनः । अथवा वयमेव निर्गुणा बहुगुणवन्तो जनास्तस्य ॥' इति च ग-पुस्तके
पाठः. ४. 'अहाए' इति ख-ग-पाठः. ५. 'स्फुटितेनापि हृदये कथं भगिनि निर्मृतीभूयते
तस्मिन् ।' इति ग-पुस्तके, 'स्फुटितेनापि हृदये मातुलि कथं निवारिते तस्मिन् ।'
इति च घ-पुस्तके पाठः. ६. 'अवदाते प्रतिबिम्बमिव' इति घ-पाठः. ७. 'नेच्छवइ'
इति ख-ग-पाठः. ८. 'ओअन्तं' इति ग-पाठः. ९. 'न स्पृश्यति दत्तमीयं वति' इति
ग-पाठः. १०. 'उपत' इति घ-पाठः.

प्रेषितभट्टकाया सखी तत्कालतस्यागमनवरार्थं त एमीयमिन पायमाह—

ओहिदिअहागमासकिरीहिं सहिआहिं कुंडुलिहिआओ ।

दोतिणिण तहिं विअ चोरिआए रेहा पुसिज्जन्ति ॥ ६ ॥

[अवधिदिवसागमाशङ्किनीभि सखीभि कुंडुलिहिता ।

द्विजान्तरैव चोरिकया रेखा प्रोक्ष्यत ॥]

अवधिदिनेऽपि त्वयि नागच्छति नूनमिय प्राणानपि नान्नापिति भार ॥

कोऽपि कामुक्थ दवर्णनच्छलेनामनोऽभिग्राप प्रकाशयतायिकामाह—

तुह मुइसारिच्छ ण लहइ सि सपुण्णमण्डलो विहिणा ।

अण्णमअ एव घडइउ पुणो वि एण्डिज्जइ मिअङ्को ॥ ७ ॥

[तत्र मुखसादृश्यं न लभत इति सपूणमण्डले विधिना ।

अन्यमयमिन् घटयितुं पुनरपि खण्यते मृगाङ्ग ॥]

अन्यमयमन्यप्रकारम् ॥

प्रामातृरगमनाय कृतप्रस्थानस्य गेहादतरे स्थितस्य नायकस्य गमननिषेधार्थं सखी तत्रियावृत्ता तमाह—

अज्ज गओत्ति अज्ज गओत्ति अज्ज गओत्ति गणरीए ।

पढम त्रिअ दिअहद्वे कुडो रेहाहिं चित्तलिओ ॥ ८ ॥

[अथ गत इत्यथ गत इत्यथ गत इति गमनशीलया ।

प्रथम एष दिवसा ई कुट्टं रेखाभिधितितम् ॥]

तद्वत् त्वद्विरहविह्वला ता विहाय गतुं नोचितमिति भावः ॥

पूयमकृतस्त्रीकाराया पथाधिरप्र वनया स्त्रीकारे कृतवत्या प्रथमतमागम एव नायकगुणरजिताया प्रथमास्त्रीकारचरितविशेष वदनमागम्य विअगुणगावतो नायक एव हारमाह—

ण वि तह पढमसमागमसुरअमुह पाविएवि परिओओ ।

जेह वीअदिअह सरिलकरलकिरण वअणकमलम्मि ॥ ९ ॥

१ त्रीअ त्रिहिआए इति ग-पाठ २ मुट्टं तर्नीअ सखाभिस्तस्य चक्षु-
न्त्या । द्विमास्तसि चोरिकया रेखा प्रक्षिप्य त ॥ इति ग-पाठ ३ त्रिहिआ-
सिता । द्वित्रिलमेव गता तस्या रेखा प्रकाशयत ॥ इति घ-पाठ ४ 'पुन पुन'
इति घ-पाठ ५ गओ इति इति ग-पाठ ६ त्विरह इति ग-पाठ ७ कुट्टो
रेखाभिधितित इति ग-मुम्भ मिता रेखाभिधितिता इति च घ-पुम्भ
पाठ ८ 'मुट्टेयानि परिओओ इति ग-पाठ ९ जह वीअदि अहरम्भे पुम्भएव
टिए वअणकमलम्मि' इति र-पाठ

[नापि तथा प्रथमसमागमसुरतसुखे प्राप्तेऽपि परितोषः ।

यथा द्वितीयदिनससमिलक्षलक्षिते वदनकमले ॥]

अपि सत्त्वं कुमुदमया बाणा मन्मथस्येति सरया पृष्टा सखी सवैदग्ध्यं तामाह—

जे^३ संमुद्गागभवोलन्तवलिअपिअपेसिअच्छिविच्छोहा ।

अह्मं ते मअणसरा जणस्स जे होन्ति ते होन्तु ॥ १० ॥

[ये^५ संमुद्गागतव्यतिक्रान्तवलितप्रियप्रेषिताक्षिविक्षोभाः ।

अस्माकं ते मदनशरा जनस्य ये भवन्ति ते भवन्तु ॥]

समुद्गागतेन व्यतिक्रम्य गच्छता परितोषेन प्रियेण प्रेषिता ये अक्षिविक्षोभा
लीलातरलकटाक्षा इत्यर्थः ॥

कामपि रमणीं प्रति सामिलापः कथिदात्मनोऽभिप्रायं प्रकाशयन्नाह—

इअरो जणो ण पावइ तुह जघणारुहणसंगमसुहेल्लिम् ।

अणुहवइ कणअडोगे हुअवहवरुणार्णे माहप्पम् ॥ ११ ॥

[इतरो जनो न भ्रामोति तत्र जघनारोहणसंगमसुखकेलिम् ।

अनुभवति कनकदोरो हुतवहवरुणयोर्महात्म्यम् ॥]

तत्र जघनारोहणपूर्वकेण संगमेन यत्सुखं तदितरो जनोऽभिप्रायानीयाश्च्यनतरद्विती न
भ्रामोति । सुहृत्सौ सुदुर्जले प्रवेशस्य फलं कनकदोरोऽनुभवतीत्यर्थः ॥

कामुक प्ररोचयितुं दूती नायिकायाः सौभाग्यातिशयनाह—

जो जरस विहवसारो तं सो देइ ति किं र्थ अच्छेरम् ।

अणहोन्तं पि खु दिण्णं दोहग्गं तइ सबत्तीणम् ॥ १२ ॥

[यो यस्य विभवसारस्तं स ददातीति निमगाश्रयम् ।

अभयदपि खलु दत्तं दीर्घायं त्वया सेयंजीवाम् ॥]

अमरत्वं अविद्यमानम् ॥

१. 'मुखेनऽपि भवति परितोषः' इति ग पुस्तके, 'मुखेन निशते परितोषः' इति च
२. पुस्तके पाठः. २. 'द्वितीयदिवसविलक्षं लक्षिते' इति ग पुस्तके, 'द्वितीयरतारम्भे
मुग्धवलिते' इति च घ पुस्तके पाठः. ३. 'जे समुद्गाग' इति ग-पाठः. ४. 'ये
समुद्गागतस्युक्तामद्वलितप्रियप्रेषिताक्षि' इति ग-पाठः. ५. 'प्राप्यते' इति घ पाठः.
६. 'कनकदूतं हुतवहवरुणनाहात्म्यम्' इति घ-पाठः. ७. 'ज अस्य विभवसारं' इति
घ पाठः. ८. 'एवम्' इति ग पाठः. ९. 'यस्य विभवसारे तत्त्वं' इति ग-पाठः.
१०. 'अविद्यमानमपि' इति घ पाठः. ११. 'सपत्नीभ्यः' इति घ-पाठः.

प्रोषितः कश्चिदुत्कृष्टाविनोदनाय प्रियां सरन्सहचरमाह—

चन्दसरिसं मुहं से सरिसो अमअस्त मुहरसो तिरसा ।
सकअगहरहसुञ्जलचुम्बणअं कस्त सरिसं से ॥ १३ ॥

[चन्द्रसदृशं मुखं तैसाः सदृशोऽमृतस्य मुखरसस्तथाः ।
सकचग्रहरहसोज्ज्वलचुम्बनक कस्त सदृशं तैसाः ॥]

विमृश्यकारिणं नायकमुत्सादयितु इत्याह—

उत्पण्णत्ये कज्जे अइचिन्तन्तो गुणागुणे तम्मि ।

चिरआलमन्दपेच्छित्तणेण पुरिसो हणइ कज्जम् ॥ १४ ॥

[उत्पन्नार्थे कार्येऽतिचिन्तयन्गुणागुणौ तस्मिन् ।

चिरकालमन्दप्रेक्षित्वेन पुरुषो हन्ति कार्यम् ॥]

उत्पन्नः सिद्धोऽर्थोऽभिलषितपदार्थो यत्र तस्मिन् । फलाभिमुखे कार्ये इति यावत् ॥
चिरहमसहमाना कापि प्रणयकुपितं कान्तमनुनयन्त्याह—

वालभ तुमाहि अहिअं निअअं विअ बहहं महं जीअम् ।

तं तइ विणा न होइ त्ति तेण कुविअं पसाएमि ॥ १५ ॥

[वालक त्वत्तोऽधिकं निर्जेकमेव बहभं मम जीवितम् ।

तत्तया विना न भवतीति तेन कुपितं प्रसादयामि ॥]

प्रथमं कुपितां चरणप्रणामोत्तरं प्रसन्नां 'मिथ्यास्वरचनदूषितचित्तया मया खेदि-
तोऽसि' इति वदन्ती प्रिया प्रियः पुनरपि खलवचने प्रत्येध्यसीति काकुत्स्था विधिमुखेन
निषेधयन्त्याह—

'पत्तिअ ण पत्तिअन्ती जइ तुअइ इमे ण मअइ रअईए ।

उट्ठीअ वाहविन्दू पुलवम्भेण मिअन्ता ॥ १६ ॥

१. 'रहसुज्ज्वलचुम्बणं' इति ग-पाठः. २. 'अस्याः' इति ग-पाठः. ३. 'रमसो-
लचुम्बनं' ग-पाठः. ४. 'अस्याः' इति ग-पाठः. ५. 'अइ सुन्दर सहपेच्छित्तणेण'
इति ग-पाठः. ६. 'उत्पण्यस्ते' इति घ-पाठः. ७. 'चिन्तयमान' इति ग-पाठः.
८. 'अतिसुन्दरशृङ्गप्रेक्षित्वेन' इति ग-मुक्तके, 'चिरकालमन्यप्रेक्षित्वेन' इति च घ-
मुक्तके पाठः. ९. 'त्वत्तोऽप्यधिकं' इति ग-पाठः. १०. 'नियतमेव' इति घ-पाठः.
११. 'पतञ्ज ण पत्तिअन्ती' इति ग-पाठः. १२. 'मिअन्तो' इति ग-पाठः.

[प्रतीहि न प्रतीयन्ती यदि तवेमे न मम रोदनशीलाया ।

पृष्ठस बाष्पविन्दव पुलकोद्भेदेन भिद्यमाना ॥]

प्रतीहि प्रत्ययं कुर्विति सशिरध्वालनकाकृषत्या खल्वचसि प्रत्ययमप्यदापि न करिष्यशीत्यर्थः । एतदेव द्रष्टव्यमाह—न प्रतीयन्तीत्यादिना । रोदनशीलायास्तव इमे बाष्पविन्दवो मम पृष्ठस्य पुलकोद्भेदेन यदि न भिद्यमाना मित्रा नामभिष्यन्, तदा त्व न प्रतीयन्ती प्रत्यय नाकरिष्य एवेत्यर्थः । तवाश्रुजलस्पर्शादपि मम पृष्ठ पुलकं सजात । तत्किं खल्वचसा मामननुरक्तं कलयसीति भावः ॥

नायकस्य हृदसौहृदमिच्छन्ती नायिका दूर्तिं सदृष्टान्तमाह—

त मित्त काअठ्व ज किर वसणम्मि देसआलम्मि ।

आलिहिअभित्ति बाउल्लअ व ण परम्मुह् ठाह् ॥ १७ ॥

[तन्मित्रं कर्तव्यं रैत्तिकलं ध्यसने देशैकालेषु ।

आलिखितभित्तिपुत्तलकमिव न पराश्रुस्तं तिष्ठति ॥]

व्यसने विपदि । देशे देशात्तरे काले यौवनाद्यपगमे । बाउल्लअ पुत्तलिकेति देशी ॥

निवृत्तमपि धूर्ता वलयन्तीति विहात्य ह्यापयन्नागरिकं सहचरमाह—

बहुआह् णइणिठत्ते पडमुग्गअसीलखण्डणविलक्खम् ।

उड्डेह् विहगउल हा हा पक्खेहिं व भणन्तम् ॥ १८ ॥

[वध्या नदीनिकुञ्जे प्रथमोद्भूतशीलखण्डनविलक्षम् ।

उड्डीयते विहगकुल हा हा पक्षैरिव भणत् ॥]

पक्षैर्हाहेति भगविवेति योजना ॥

प्रोपितभर्तृकाया सखी तस्कात्तमागमनत्वरार्थमाह—

सख भणामि बालअ णत्थि अंसक्क वसन्तमासस्स ।

गन्धेण कुरवभाण मण पि असइत्तण ण गता ॥ १९ ॥

[सख्य भणामि बालक नारलैशक्य वसन्तमासस्य ।

गन्धेन कुरवकाणा मनामप्यसतीत्वं न गता ॥]

- १ 'प्रतीहि न प्रत्ययमस्या' इति ग पुस्तके, 'प्रतीय न प्रतियन्ती' इति च घ पुस्तके पाठः २ 'हृदस्या' इति ग पाठः ३ 'पृष्ठे' इति ग पुस्तके, 'पृष्ठीय' इति च घ पुस्तके पाठः ४ 'मित्रेरन्' इति ग पुस्तके, 'मित्रा' इति च घ पुस्तके पाठः ५ 'बाउल्लओ' इति ग-पाठः ६ 'यदेव' इति ग पाठः ७ 'दिशकालयो' इति घ पाठः ८ 'आलिखितभित्तिपुत्तलक इव' इति ग-पाठः ९ 'उड्डीयते' इति ग पाठः १० 'असज्ज' इति ग पाठः ११ 'असाप्य' इति ग-पाठः

नास्त्यशक्यमिति यथा च स्खलितमेव मन इति भावः । मनामपीति त्वदागमनप्रत्या-
शया शीलं रक्षणीत्यर्थः । तयावदस्याः शीलखण्डनं न भवति तावत्स्वरितं संभावयन्ना-
मिति भावः ॥

नायक प्रति द्विती कस्याधिदुःखरागातिशयमाह—

एकैकभवेद्वेष्टनविवरन्तरदिण्णतरलणअणाए ।

तइ बोलन्ते बालअ पञ्जरसउणाइअं सीए ॥ २० ॥

[एकैकभूतिवेष्टनविवरान्तरदत्ततरलनयनया ।

स्वयि दैयतिकान्ते बालक पञ्जरशकुनायित तया ॥]

एकैकस्मिन् भूतिवेष्टनस्य विवरान्तरे दत्त तरल नयन यथा एतादृश्या तया पञ्ज-
रशकुनवशाचरितम् । यथा पञ्जरबद्धः पक्षी प्रतिविवरे दत्तदृष्टिर्भ्रमति तथा तयापि स्वर-
शून्यलालस्यया भ्रान्तमित्यर्थः ॥

तद्देहमागेण गतोऽप्यहं तया न दृष्ट इति वदन्तमुपनायक द्विती नायिकादोषं परि-
हरन्त्याह—

ता किं करेउ जइ सं सि सीअ यहवेठपेहिअथणीए ।

पाअहुठदक्खिउत्तणीसहकीअ वि ण दिट्ठो ॥ २१ ॥

[तर्हि करोतु यदि स्वैममि तया भूतिवेष्टनप्रेरितैस्तनया ।

पादाङ्गुष्ठार्धलिङ्गिनि सहाक्रपापि न दृष्टः ॥]

भूतिवेष्टनस्योचतया भूतयजयापि तया यदि न दृष्टस्तदा कस्यस्या दोष इति भावः ॥

पयिकजायाभिलाषिण कामुकं द्विती नायिकाया निजनायकेऽगुरागातिशयसूचनेना-
साध्यत्वं प्रतिपादयितुमाह—

पिअसंभरणपलोदृन्तवाहधाराणिवाअभीआए ।

दिजइ वड्ढमीवाएँ दीवओ पहिअर्जाआए ॥ २२ ॥

[प्रियसंभरणपर्वद्वन्द्वद्व्याप्यधारनिपातंभीतया ।

दीयते वक्रग्रीवया दीपकः 'पयिकजायया ॥]

१. 'वद्वेष्टनविवरन्तरतरलदिण्णअणाए' इति ग-पाठः. २. 'एकैकभूतिवेष्टन-
विवरान्तरतरलदत्तनयनया' इति घ-पाठः. ३. 'स्युत्कामति' इति ग-पाठः. ४. 'वे-
क्षण' इति क-पाठः. ५. 'तया स्वममि' इति ग-पाठः. ६. 'प्रेरितकन्या' इति ग-
पाठः. ७. 'निक्षिप्त' इति ग-पाठः. ८. 'परणीए' इति ग-पाठः. ९. 'प्रियभरण-
प्रत्यागतवत्' इति ग-पाठः. १०. 'प्रगल्भ्या' इति घ-पाठः. ११. 'पयिकदृष्टि' इति ग-पाठः.

कमपि युवानमनुरजयितुं दूती कस्याधिकेहैहैवमूचकं परिश्रुत्यावलोकनमाह—

तद् धोलन्ते बालञ्च तस्मा अङ्गाहं तद् णु बलिमाह ।

जह पुट्टिमज्झणिवतन्तवाहधाराओं दीसन्ति ॥ २३ ॥

[त्वयि व्यक्तिकामति बालक तस्या अङ्गानि तथा नु बलितानि ।

यथा पृष्ठमप्यनिपतद्वाष्पधारा दृश्यन्ते ॥]

बलितानि परिश्रुतानि ॥

कापि प्रियतमविरहस्य दुःसहस्वमन्यापदेशेनाह—

ता मेज्झिमो त्विअ वर दुज्झणमुअणेहिं दोहिं वि ण कज्झम् ।

जद् विट्ठो तवद् खलो तद्दे अ मुअणो अईसन्तो ॥ २४ ॥

[तन्मध्यम एव वरं दुर्जनमुजनाभ्यां ह्याभ्यामपि नै कार्यम् ।

यथा दृष्टस्तोषयति खलस्तथैव मुजनोऽदृश्यमान ॥]

काप्यात्मनः पतिं साभिलाषमवलोकयतीं शैर्ष्यमाह—

अद्दच्छिपेच्छिअ मा करेहि साहाविअ पलोपहि ।

खो वि सुदिट्ठो होहिंहे तुम पि मुद्धा कलिज्झिहिसि ॥ २५ ॥

[अर्धाक्षिप्रेक्षितं मा कुरु स्वामाधिकं प्रलोकय ।

सोऽपि मुदष्टो भविष्यति त्वमपि मुग्धा कलिभ्यसे ॥]

अर्धाक्षिप्रेक्षितं कटाक्षनिरीक्षणम् ॥

श्रोयित कथितकुलपालिकाया निजवनितायाश्चरितमनुसरन्वयस्यमाह—

दिअह सुवक्किआए तीए काऊण गेहवावारम् ।

गरुए वि मण्णुदु खे मरिमो धाअन्तमुत्तस्स ॥ २६ ॥

[दिवसं रोषमूकायास्तस्या कृत्वा गेहव्यापारम् ।

गुरुकेऽपि मन्नुदु खे स्मराम पादान्तमुत्तस्य ॥]

सुवक्किआ रोपमूका । गुरुके मन्नुदु खे दिनस्य व्याप्य गेहव्यापारं कृत्वा रोपमूका

सहस्य पादान्तचयनं स्मराम इति संबन्धः ॥

१ 'व्यतिकार' इति ग-पाठ २ 'मज्झिमो' इति ग-पाठ ३ 'न मे कार्यम्' इति ग-पाठ ४ 'तपति' इति घ-पाठ ५ 'हो इहि' इति क-पाठ ६ 'कुरुष्व' इति ग-पाठ ७ 'दिवस व्याप्य' इति क-ख-ग-पाठ ८ 'कृपिताया' इति ग-पाठ

कमप्यनुरक्त धनिकमधमस्त्रीसहयोगेण परिहरन्तीं दुहितरं वेद्यामाता शिक्षयि-
तुमाह—

पाणउडीअ वि जलिऊण हुअवहो जलइ जण्णवाडम्मि ।

ण हु ते परिहरिअब्बा विसमदसासंठिआ पुरिसा ॥ २७ ॥

[पाणकुट्यामपि ज्वलित्वा हुतवहो ज्वलनि यन्नवाटेऽपि ।

नै खलु ते परिहर्तव्या विषमदशासंस्थिताः पुरुषाः ॥]

पाणकुटी चण्डालकुटी ॥

स्वमर्तरे विरागं सूचयन्ती कमप्यसती सती निजमार्या बहुमन्यमानं युवानं सदैव-
रम्यानुरागमाह—

ज तुज्ज सई जाआ असईओ जं च सुहअ अछे वि ।

ता किं फुट्टउ बीअं तुज्ज समानो जुआ णत्थि ॥ २८ ॥

यत्तव सती जाया असत्यो यच्च सुमग वयमपि ।

तर्हि स्फुटतु बीजं तैव समानो युवा नास्ति ॥]

स्फुटतु प्रकटीभवतु । तदेव बीजमाह—तव समान इति । एतदेव बीजमिति भावः ॥

कापि कस्मिन्ननुरागातिशयं प्रकाशयन्ती द्वितीमाह—

सव्वस्सम्मि वि ददे सहवि हु हिअअस्स णिळुदि खेम ।

जं तेण गामडादे इत्थाहत्थि कुडो गहिओ ॥ २९ ॥

[सर्वेऽपि दग्धे तथापि खलु हृदयस्य निवृत्तिरेव ।

यत्नेन मामदादे हस्ताहस्तिकया कुटो गृहीतः ॥]

कुटो घटः ॥

एहकर्मव्यापृता कानिदसती कामुकमनोरथसंपादनासमर्था दत्तहिता द्वितीमन्यापदे-
शेनाह—

जाणअ वणुदेसे कुञ्जो वि हु णीसेहो ह्मदिअपत्तो ।

मा माणुसम्मि छेए ताई रसिओ दरिहो अ ॥ ३० ॥

१. 'ज्वलयति' इति ग-याठ. २. 'अपि' इति घ-मुलके नास्ति. ३. 'नैव ते' इति ग-याठ. ४. 'ते इति' घ-मुलके नास्ति. ५. 'सुहअ जं च' इति ग-याठ. ६. 'सुमग यच्च' इति ग-याठ. ७. 'तस्मिन्' इति ग-याठ. ८. 'व' इति ग-याठ. ९. 'खलुओ गलितवत्तो' इति ग-याठ. १०. 'दादे ससिओ' इति क-याठ.

[जायता वनोद्देशे कुञ्जोऽपि स्रुति शास्त्रः शिथिलेषु ।

मा मानुषे लोके त्यागी रसिको दरिद्रश्च ॥]

त्यागी दितु । रसिक सानुराग, श्रुतारी च । दरिद्रो निर्धन । अवधाररहितश्च ।
त्यागित्वादिगुणयुक्तो मा जायतामिति संबन्धः ॥

जारे प्रत्यनुरागातिशय सूचयन्ती नापि तन्मित्रमाह—

तस्स अ सोद्दग्गगुणं अमहिलसरिसं च साहसं मज्झ ।

जाणइ गोलाऊरो वासारसोद्धरत्तो अ ॥ ३१ ॥

[तस्य च सौभाग्यगुणममहिलासदृश च साहसं मम ।

जानाति गोदापूरे वर्षासार्धरात्रश्च ॥]

वर्षासार्धरात्रे जलपूर्णगोदावरीतरण तदभिस्तरणार्थं करोमीति भावः ॥

वयमधुना सतीखमवर्णम्वितमिति केनापि वामुकेन सपरिहासमुक्ता कुलटा तमाह—

ते वोलिआ वैअस्सा ताण कुडङ्गाण थाणुआ सेसा ।

अहो धि गअवआओ मूलच्छेअ गअ पेम्मम् ॥ ३२ ॥

[ते व्यतिक्रान्ता वयस्यास्तेषां कुञ्जानां स्थाणव शेषा ।

वयमपि गतवयस्का मूलोच्छेद्य गत प्रेम ॥]

ते वयस्या समानशीला व्यतिक्रान्ता वरुं गता । येषु ते सह धुरतमुषमनुभूत
तेषां रत्तावृद्धानां स्थाणवोऽवशिष्टाः । अतो मूलोच्छेद्यमुच्छिन्नमूल प्रेम गतम् । न
श्मिल्यते ॥

कामपि गतयौवनं कुलटा प्रति नागरिक सपरिहासमाह—

धणजहणणिअन्जोरि णंहरङ्का गअवआण धैणिआणम् ।

उव्वसिआणङ्गणिवासमूलबन्ध व्व दीसन्ति ॥ ३३ ॥

[स्तनजघननितम्बोपरि नखैरोद्धा गतवयसां वनितानाम् ।

उद्धसितानङ्गनिवासमूलबन्धा इव दृश्यन्ते ॥]

१ 'उत्पद्यामि' इति ग पुस्तके, 'जायेत' इति न घ पुस्तके पाठ २ 'कुञ्जको
ऽपि स्थाणुको गलितपत्र' इति ग पाठ ३ 'गलितपत्र' इति घ पाठ ४ 'गोदा
वरीपूरे' इति क ख-पाठ ५ 'वैअस्सा' इति ग-पाठ ६ 'व्यतीया येतसा' इति
ग-पाठ ७ 'कुडङ्गाणा' इति घ-पाठ ८ 'स्थाणुका' इति ग पाठ ९ 'मूलो-
च्छेद' इति ग पाठ १०. 'दशमहा' इति ग पाठ ११ 'विलिआणम्' इति ख-ग-
पालय-पाठ १२ 'दशमाङ्गा गतवयस्क' नां धीणाम्' इति ग पाठ.. १३ 'वयमिव' इति
घ पा

उद्धतितस्य शून्यीकृतस्यानङ्गनिवासस्य मूलवत्त्वा इवेत्यर्थः ।
बहुभिर्युष्माभिस्ता दृष्टा आगतम् । तदुच्यतां कीदृक्तस्या रूपमिति नायकेन पृष्टा
सहचरा प्राहुः —

जरस जह विज पढम तिस्सा अङ्गम्मि णिवडिआ दिट्ठी ।
तरस तर्हि चेअ ठिआ सन्वङ्ग केण वि ण दिट्ठम् ॥ ३४ ॥

[यस्य येनैव प्रथम तस्या अङ्गे निपतिता दृष्टिः ।

तस्य तेनैव स्थिता सर्वाङ्ग केनापि न दृष्टम् ॥]

अल्पानविरहसंतप्त प्रवासादागत प्रियासंगमेन संतुष्ट दधिदाह—

विरहे विस व विसमा अममममा होइ सगमे अहिअम् ।

किं विहिणा समअ निअ दोहिं वि पिआ विणिम्मिअमा ॥ ३५ ॥

[विरहे विषमिव विषमोद्यतमया भवति सगमेऽधिकम् ।

किं विधिना सममेव द्वाभ्यामपि प्रिया विनिर्मिता ॥]

द्वाभ्यां विषामृताभ्याम् ॥

विरप्रवासागतौ न भुजगेनोपागच्छा चेष्टामाता भुजगांतरत्नमया दुहितुर्दोष परिह
रती आह—

अइसणेण पुँत्तअ सुट्ठु वि जेहाणुरन्धर्पडिआइ ।

हत्थउट्ठपाणिआइँ व फालेण गलन्ति पेन्माइ ॥ ३६ ॥

[अवर्शनेन पुनक सुट्ठपि जेहानुवर्धपटितानि ।

हस्तपुटपानीयानीव कालेन गलन्ति प्रेमाणि ॥]

स्त्रीणां बहुच्छलत्व दर्शयती दूती कमपि युवान सभिप्रायमाह—

पइपुरओ म्विअ णिज्जइ विच्छेदुदट्ठेत्ति जारवेज्जर्परम् ।

णिउणसेहीकरगारिअ भुअजुअलन्दोलिणी याला ॥ ३७ ॥

[पतिपुत्र एव नीयते वृश्चिकदंष्ट्रेति तारवैषम्यम् ।

निपुणसेहीकरपृता भुवयुगलादोलनशीला बाला ॥]

१ 'यस्मिन्नेव' इति ग-पाठ २ 'अङ्गेयु' इति घ-पाठ. ३ 'तस्मिन्नेव' इति व-
पाठ. ४ 'अमृतमयी' इति ग घ-पाठ ५ 'किं सममेव विधिना' इति ग-पाठ
६ 'बालज' इति ग-पाठ ७ 'पटिआणम्' इति ग-पाठ ८ 'पटितानाम्' इति
ग-पाठ ९ 'सिपुआइ' इति ग-पाठ. १० 'हरम्' इति ग-पाठ ११ 'यदं
करतस्मिन् अकरतस्मादोलिनी' इति घ ख-पाठ १२ 'सस्त्रीहरवन्वितकरवत्पुत्र-
रक्षीला' इति घ-पाठ

पुणाभिरभिप्रायशामि सखीभि करे घृता विषजनितमूर्च्छाछलेन भुजयुगलान्दो-
ला । बालेति प्रगल्भायास्तु कैतव किं वक्तव्यमिति भाव ॥

वचनस्य कार्यैकपरता सूचयन्ती पूर्वसुभगा नववधूसकान्तसह वान्तमन्याप-
ह—

विक्रिणइ माहमासम्मि पामरो पाइहिं वइछेण ।

णिद्धममुंमुंरु न्विअ सामलीअ थैणो पडिच्छन्तो ॥ ३८ ॥

[विक्रीणीते माघमासे पामर प्रौढरण नलीवर्देन ।

निर्धूममुंरुनिभौ श्यामल्या स्तनौ पश्यन् ॥]

मत्वेन शीतनिस्तारहेतुत्वामिधूमतुषामिसादृश्यम् । तवापीदानीं लब्धाभिनवव-
धौ किं मया कार्यमिति भाव ॥

कदापि विश्वासो न कर्तव्य, इति वन्धुजनकिशोर्य काचिदाह—

सख भणामि मरणे द्विअझि पुण्णे तहम्मि तावीण ।

अज्झ थि तत्थ पुज्जे णिवइइ दिट्ठी तह खेअ ॥ ३९ ॥

[सत्य भणामि मरणे स्थितास्मि पुण्ये तटे ताप्या ।

अद्यापि तत्र निकुञ्जे निपतति दृष्टिस्तथैव ॥]

रणे स्थितास्मि गृहीतमरणप्रतापसीलव । तत्राभिसारस्थाने । तथैव अभिसारो-
ध । अत स्त्रीषु न विश्वसेदित्यर्थ ॥

प्रसतीभिरभिसार्यमाणमर्तुका कुलवधूः सखीजनमाह—

अन्धअरयोर्पत्त व माउआ मह पइ विलुम्पन्ति ।

ईसाअन्ति मह विअ छेप्पाहिन्तो फणो जाओ ॥ ४० ॥

[अन्धकरमदरयानेविव मैतरो मम यतिं विलुम्पन्ति ।

ईर्ष्यन्ति' मद्यमेव लाज्जलेभ्य फणो जात ॥]

१ 'पासिडि' इति ख पुस्तके, 'पावालि' इति च ग पुस्तके पाठ . २ 'सु'मुरसच्छ
इति ग पाठ ३ 'यणए पडिच्छन्तो' इति ख पुस्तके 'यणएणिअच्छन्तो' इति
ग-पुस्तके पाठ ४ 'मित्रीणाति' इति ग घ पाठ . ५ 'पटी' इति ग पुस्तके,
र' इति च घ पुस्तके पाठ ६ 'निर्धुमाहारसदृशयो श्यामाया स्तनयोनिवच्छन्'
ग पुस्तके, 'निर्धूममुंरुनिव श्यामल्या स्तनौ प्रतीक्षमाण' इति च घ पुस्तके
७ 'डुरजे' इति घ पाठ ८ 'पत्थि' इति ख ग-पाठ ९ 'मात्रनमिव' इति
पुस्तके, 'प्रत्यमिव' इति च घ-पुस्तके पाठ १०. 'मायाविन्य' इति ग पाठ
'ईर्ष्यन्ते मयेव पुच्छादेव फणो' इति ग पुस्तके, 'ईर्ष्यायति मद्यमेव पुच्छा फणो'
च घ पुस्तके पाठ

कृतप्रणयकलहयोर्दोषलो. प्रणयरोपमञ्जयं सखी आह—

जिविअं असासअं विअ ण निवैत्तइ जोव्वणं अतिकन्तम् ।
दिअहा दिअहेहिं समा ण होन्ति किं निट्टुरो लोणो ॥ ४७ ॥

[जीवित्तमशाश्वतमेव न निवर्तते यौवनमतिक्रान्तम् ।
दिवसा दिवसैः समा न भवन्ति किं निट्टुरो लोकः ॥]

अहरहयौवनकालस्य च हासार्त्तिक रोषपाश्वेणारमानं वक्ष्यथ इति भावः ॥
वैश्योपभुज्यमानविभवं प्रियं कापि सासूयमन्यापदेशेनाह—

उत्पाइअदव्वणै वि खल्लणै को भाजणं रलो वेअ ।
पकाइ वि निम्बफलाइं णवरं काण्हिं खज्जन्ति ॥ ४८ ॥

[उत्पादितद्रव्याणामपि खलानां को भाजनं खल एव ।
पकानपि निम्बफलानि केवलं काकैः खाद्यन्ते ॥]

उत्पादितं द्रव्यं यैस्तेषां खलानाम् । भाजनं दानपात्रम् ॥
इतिवृत्ततां स्वापवप्रागरिकः सहचरमाह—

अज्ज मए गन्तव्वं घणन्धआरे वि तस्स सुहअस्स ।
अज्जा निमीलिअच्छी पअपरिवादिं घरे कुणइ ॥ ४९ ॥

[अथ मया गन्तव्यं घनान्धकारेऽपि तस्य सुभगस्य ।
आर्या निमीलिताक्षी पदपरिपाटीं गृहे करोति ॥]

नाविकानुरागं प्रकाशयन्त्या दूषाः कामुक प्रत्युत्थिरियमिति केचित् ॥

कृतविप्रिय प्रति प्रतिदूलाचरणप्रवृत्तस्य कस्यचिन्निवारणाय कश्चिन्मुजनचरित्रं व
र्णयति—

मुअणो ण कुप्पइ विअ अह कुप्पइ विट्ठिअं ण चिन्तेइ ।
अह चिन्तेइ ण जम्पइ अह जम्पइ लंजिणो होइ ॥ ५० ॥

१. 'जीअ अतात्तिअ विअ' इति ग-पाठः. २. 'जिअत्तइ' इति ग-पाठः. ३. 'अ-
इकन्त' इति ख-ग-पाठः. ४. 'जीवमाशासितमेव' इति ग-पाठः. ५. 'न भवन्ति
समाः' इति ग-पाठः. ६. 'उत्पादितद्रव्याणामपि' इति ग-पाठः. ७. 'को भवति
भाजन' इति ग-पाठः. ८. 'पकानीव निम्बफलानि काकेनेव खाद्यन्ते' इति ग-पाठः.
९. 'ईधरमुता' इति ग-पाठः. १०. 'लज्जितो' इति ग-पाठः.

[सुजनो न कुप्यत्येव अथ कुप्यति विप्रिय न चिन्तयति ।

अथ चिन्तयति न जल्पति अथ जल्पति लज्जितो भवति ॥]

तस्मादनुचितमिदं सुजनस्य भवत इति भावः ॥

भाविधनप्रत्याशया भुजगे कृतानुरागा दुहितरं वारयन्ती वेदयामाता धनादीनामुपा-
देयताप्रयोजकमाह—

सो अत्यो जो हत्ये सं मित्त ज णिरन्तर वसणे ।

त रुअ जत्थ गुणा त विण्णाणं जहिं धम्मो ॥ ५१ ॥

[सोऽर्थो यो हस्ते तन्मित्र यन्निरन्तर व्यसने ।

तद्रूपं यत्र गुणास्तद्विज्ञानं यत्र धर्मः ॥]

द्रव्यमादायैव त्वया भुजग स्वीकार्यं इति भावः । यद्वा काचिद्रूपगर्वितां निर्गुणं
निन्दन्त्या स्वगुणोत्कर्षं सूचयन्त्या इवमुक्तिः ॥

विरप्रवासादागतो नायक प्रियतमाया परितोषार्थमाह—

चन्द्रमुहि चन्द्रधवला दीहा दीहच्छि तुह विओभम्मि ।

चउजामा सअजाम व्व जामिणी क्हँ वि बोलीणा ॥ ५२ ॥

[चन्द्रमुखि चन्द्रधवला दीर्घा दीर्घाक्षि तव वियोगे ।

चतुर्यामा शतयामिव यामिनी कथमप्यैतिक्रान्ता ॥]

मयेति शेषः ॥

दुर्जनमैत्री न विरकालस्यामिनीति सखी नायिका शिक्षयितुमाह—

अउलीणो दोमुहओ ता महुरो भोअणं मुहे जाव ।

मुरओ व्व खलो जिण्णम्मि भोअणे विरसमारसइ ॥ ५३ ॥

[अकुलीनो द्विमुखस्तावमभुरो भोजनं मुखे यावत् ।

मुरज इव खलो जीर्णे भोजने विरसमारसति ॥]

अकुलीनोऽसत्कुलप्रसूतः । मुरजपक्षे कौ पृथिव्यां न लीनः । द्विमुखः समक्षपरोक्ष-
वचनभेदात् । पक्षे उभयमुखः । यावन्मुखे भोजनमाहारः । पक्षे पिष्टादिलेपः । मधुर
यवकाः । पक्षे श्रुतिमुखावहः । भोजने जीर्णे विरसमश्रियम् । पक्षे रुक्षप्वनिम् ।
रसति । यद्वा दुर्जनमुखपिण्डदानार्थं कुलटां शिक्षयन्त्या कुट्या इवमुक्तिः ॥

१ 'कुप्यत एव' इति ग घ पाठः २ 'यस्मिन्' इति ग-माठः ३ 'व्यतिक्रान्ता'
उ ग घ-माठः ४ 'जिण्णे' इति ग घ पाठः ५. 'मधुरं' इति घ पाठः ६ 'रज इव
कुलीनो भोजने' इति घ पाठः

दर्शनमात्रेणैव विदग्धा भावमाविष्कुर्वन्ति लक्षयन्ति चेति दर्शयन्नागरिकः सहचर-
शिशार्थमाह—

तद् सोर्णहाइ पुलइओ दैरवलिअन्तद्धतारअं पहिओ ।

अह वारिओ वि घरसामिएण ओलिन्दए वसिओ ॥ ५४ ॥

[तथा स्तूपया प्रलोभितो दैरवलिस्तार्धतारकं पथिकः ।

यया वारितोऽपि गृहस्थामिना अलिन्दके सुप्तः ॥]

अलिन्दो बहिर्द्वारप्रकोष्ठः ॥

कार्यमप्रसाध्य स्थापनपरस्य, प्रसाध्य वारमगुणोत्कीर्तनपरस्य निषेधाय कथितस्वरूपा-
हयानेन विद्वत्त्वं प्रकटयन्माह—

लहुअन्ति लहुं पुरिसं पव्वअमेसं पि दो वि कज्जाइं ।

णिब्बरणमणिब्बूदे णिब्बूदे जं अ णिब्बरणम् ॥ ५५ ॥

[लघयतो लघु पुरुषं पर्वतमात्रमपि द्वे अपि कार्ये ।

निर्वरणमनिर्व्यूदे निर्व्यूदे येष निर्वरणम् ॥]

पर्वतमात्रमप्यत्यन्तगुरुमपि पुरुषं द्वे कार्ये लघु शीघ्रं लघयतो लघूकुरतः । अनि-
र्व्यूदे अकृते कार्ये निर्वरण निवेदनम् । अकृतकार्यस्य निवेदनवैयर्थ्यात् । कृते च कार्ये
स्वयमेव प्रतिद्विरित्यर्थः ॥

द्वारस्थितिकलितशीलखण्डनो बुलजो बुद्धनी विश्वासयितुमाह—

कं बुद्धयणुविस्सत्तेण पुत्ति दागट्ठिआ पलोप्पसि ।

उण्णामिअकलसणिवेसिअग्घकमलेण य मुहेण ॥ ५६ ॥

[कं बुद्धस्तनोक्षिप्तेन पुत्रि द्वारस्थिता प्रलोकयामि ।

उग्रामितकलशनिवेशितार्धकमलेनेन मुखेन ॥]

१. 'मुण्हाइ' इति ग-पाठः. - २. 'दैरवलिअवडुनारअं' इति ग-पाठः. ३. 'उलि-
न्दए' इति ग-पाठः. ४. 'मनामवत्तिविषयतारक' इति ग-पुस्तके, 'दैरवलितान्तद्वा-
रकं' इति च घ-पुस्तके पाठः. ५. 'गृहस्थामिकेन' इति घ-पाठः. ६. 'अलिन्दके उ-
वितः' इति ग-पुस्तके, 'अलिन्दे वसितः' इति च घ-पुस्तके पाठः. ७. 'लघयन्ति'
इति क-ख-पाठः. ८. 'अपि' इति क-ख ग-पुस्तकेषु नास्ति. ९. 'यदनिर्वरणम्'
इति घ-पाठः.

दूरादवलोकनार्थं पूर्वज्ञायस्योन्नामितत्वात्तुह्यनोत्क्षिप्तेन उन्नामितयो कलशयोन
वेक्षितेनार्थक्रमलेनेव सुखेन हे पुत्रि, द्वारि स्थिता त्वं क प्रलोभयसि कथय । तमहमधि
रात्रेव साधयामीति भावः ॥

गृह्यर्थं निवेशितोऽपि खल प्रत्युत रहस्यमेव प्रकाशयतीति प्रदर्शयन्नागरिक सह
चरमाह—

वइविवरणिग्गअदलो एरण्हो साहइ व्व तरणाणम् ।

एत्थ घरे हल्लिअवद्द एदहमेत्तत्थणी वसइ ॥ ५७ ॥

[श्रुतिविवरनिर्गतदल एरण्ह साधयतीव तरुणस्य ।

अन गृहे हल्लिकवधूरेतावन्मात्रस्तनी वसति ॥]

श्रुतिघनोक्तरणार्थं सद्गुण ते रोपितवान्श्रुतिविवरेण निगत दल यस्य स । साधयति
कथयति । एरण्हव्यपदेशेन हल्लिकवध्वा स्तनौ वर्णयत्या वृत्त्या कामुकं प्रतीयमुचि
रिति क्वचित् ॥

सर्वर तामानयति भुजगेनोक्ता कुट्टनी दुहितुपनयामि वसुनेन भुजय सामिलाप कु
वाणा निन्दाव्यापेन स्तनयो स्तुतिमाह—

गभकलहकुम्भसणिहघणपीणणिरन्तरेहिं सुहेहिं ।

उत्ससिठ पि ण तीरइ किं उण गन्तु हअथणेहिं ॥ ५८ ॥

[गजकलभकुम्भसनिमघनपीननिरन्तराभ्यां तुङ्गाभ्याम् ।

उच्छृत्सितुमपि न तीरयति किं पुनगत्तु हतस्तनाभ्याम् ॥]

गज इव प्रौढ कलभो गजकलभस्तदीयकुम्भसनिभौ घनौ विविद्धौ पीनौ स्थूरी
नतएव निरन्तरौ यौ तुङ्गौ स्तनौ ताभ्यामित्यर्थः । तीरयति शक्नोति । क्वचिद्गुणोऽपि
रोपता यातीति निदर्शयन्नागरिकोऽभिसारिकाया सर्वराभिसरगमनविरोधित्तनभारं
गुप्तेनैवमाहेति केचित् ॥

रम्याणां सप्तद्विषेयप्राप्त्या रम्यतासिन्धयो भवतीति प्रतिपादयन्ती कुट्टनी भुजग न
दीप्तिं स्व दुहितरं प्रति सामिलाप कर्तुमाह—

मासपसूअ छम्मासगन्निमणिं एकदिअहजरिअ च ।

रकुत्तिण्ण च पिअ पुत्तअ कामन्तओ होहि ॥ ५९ ॥

१ 'मासतीव' इति घ पाठ २ तीरते इति ग पुस्तके 'शक्नोति' इति च घ
पुस्तके पाठ

[मासप्रसूतां षण्मासगर्भिणीमेकदिवसज्वरितां च ।

रक्षोतीर्णो च प्रियां पुत्रक कामयमानो भव ॥]

मासप्रसूतादीनामतिशयितयुरतमुत्प्रेतपादकृतायाः कामसाधसिद्धत्वात् । नतर्को
स्वदुहितर प्रति लोभयन्त्याः कुटुम्बा भुजगं प्रतीवमुक्तिरेत्यप्याहुः ॥

काचिदुत्तुहपोनस्तनीं नायिका कचिद्युवा साभिलाष प्रकाशयमाह—

पहिवम्प्रमण्णुपुञ्जे लावण्यरुडे अणङ्गगजकुम्भे ।

पुरिससअहिअधरिए कीस यणन्ती यणे वहसि ॥ ६० ॥

[प्रतिपक्षमन्युपुञ्जौ लावण्यकुटावनङ्गगजकुम्भौ ।

पुरुषशतहृदयधृतौ किमिति स्तनन्ती स्तनौ वहसि ॥]

प्रतिपक्षस्य सपत्नीजनस्य मन्युपुञ्जौ चित्तक्षोभजननात् । लावण्यस्य कुटौ (घटौ)
सौन्दर्यातिशयात् । अनङ्गलक्षणस्य गजस्य कुम्भौ । पुरपशतेन हृदये मनसि घृताव-
भिलपितौ । एतादृशौ स्तनौ स्तनन्ती कुन्त्यन्ती किमिति वहसि । अस्मादिधं जन
कथं न कृतार्थमस्तीति भावः ॥

विरोधिनीऽपि कदाचिदनुकूला भवन्तीति निदर्शयन्कथिदाह—

चरिणिचणत्थणपेहणसुहेहपडिअस्स होन्तपहिअस्स ।

अवसउणङ्कारअवारविट्ठिदिअहा सुहावेन्ति ॥ ६१ ॥

[गृहिणीचमस्तनप्रेरणमुखकेलिपतितस्य भविष्यत्पथिकस्य ।

अपराधनाङ्कारकवारविट्ठिर्दिवेसाः सुखयन्ति ॥]

कमपि युवानं प्रति दूती कस्याचिदनुरागातिशयमाह—

सा तुह कएण बालअ अणिसं घरदारतोरणणिसण्णा ।

ओससई वन्दणमालिअ ठव दिअहं बिअ वराई ॥ ६२ ॥

[सा तव कृतेन बालकानिशं गृहद्वारतोरणनिषण्णा ।

अवशुष्यति वन्दनमालिकेव दिवसमेव वराधी ॥]

सहजगुणहीनानामाहास्यंशुणाधानं न विरकालस्यायीति काचिदन्यापदेशेनाह—

हसिअं सहत्यतालं मुखवडं उवगएहिं पहिएहिं ।

पत्तअफलाणं सरिसे उट्टीणे सँअबिन्दम्मि ॥ ६३ ॥

१. 'उत्ते' इति ग पाठः. २. 'उले' इति ग-पाठः. ३. 'गृहिण्या' इति क-ख-ग-
पाठः. ४. विट्ठिर्भेदेत्यर्थः. ५. 'उवगएहिं' इति ग-पाठः. ६. 'पुनवगम्मि' इति ग-
पाठः. 'पुनवान्दः शुद्धे वर्तते' इति कुलनालदेवः.

[हसितं सहस्रतालं शुष्कवटमुपगतैः पथिवैः ।

पत्रफलानां सदसो उडोने शुक्लवृन्दे ॥]

पत्रफलानोऽयं पृथ इति मुग्धा विभ्रामार्थं शुष्कवटमुपगतैः पथिवैः पत्रफलसदसो शुक्लवृन्दे उडोने सति सहस्रतालं यथा स्यात्तथा हसितमित्यर्थः । सैकेन स्थाने जनावस्थितिसूचनेनाभिप्रायितं निवारयन्त्या इत्या इयमुक्तिरिति केचित् ॥

पत्ना सह वृत्तलहस्ताः सम्प्रा रात्रिवृत्तान्तमनुपपायमागता सखी मातुलाभ्या वृटा तत्प्रीतिमायमाह—

अञ्ज म्मि हासिआ मामि तेण पाएमु तह पडन्तेण ।

तीए वि जलन्ति दीवयस्तिमम्भुण्णअन्वीए ॥ ६४ ॥

[अपास्मि हासिता मातुल्यानि तेन पादयोस्तथा पतता ।

तथापि ज्वलन्ती दीपवर्तिर्मन्बुत्तेजयन्त्या ॥]

अन्येऽपि मम सौभाग्यं पर्यगिरिति मुग्धा दीनोत्तेजनं कुर्वन्त्याः । दिवा तथा पश्यमा-
दिनस्य स रात्रौ तादृशेन्य इत्या तस्याथ शोचयामिमानजं पतिं प्रत्यनादरे इत्या मम
हासो जात इत्यर्थः ॥

पूर्वगुभगामनुवर्तमान पतिं इत्या स्वसौभाग्यमवहुमन्यमानां नयसुभगां सान्त्वयितुं
सखी मुजनस्वभावमाह—

अणुरत्तणं वुणन्तो वेसे वि जणे अहिण्णमुहराओ ।

अप्पयसो वि हु मुअणो परव्वसो आहिआईए ॥ ६५ ॥

[अनुवर्तनं कुर्वन्हेत्येऽपि जनेऽभिघ्नमुत्तरागः ।

औत्सव्यशोऽपि सद्यः सुमनः परवशः कुलीनतया ॥] आभिजात्या

स्वदेवरातोऽपि कुलीनतया तामनुदग्धे, न तु अहेनेति भावः ॥

मानिन्याः पूर्वगुभगायास्त्रिरस्त्रारेणान्यवनितासक्त दुर्विदग्धं शिषयन्ती जट्वा-

भूताह—

अणुदिअह्वट्टिआअग्गिण्णाणगुणेहि जणिअमाहप्पो ।

पुत्तअ अदिआअजणो विरज्जमाणो वि दुहम्भो ॥ ६६ ॥

१. 'उपगतेन पथिवेन' इति ग-पाठः. २. 'पत्रपत्रसदसो' इति ग-पाठः. ३. 'मामि'
इति ग-पुस्तके, 'मातुलि' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४. 'अभ्युपयन्त्या' इति घ-
पाठः. ५. 'दिशे' इति ग-पाठः. ६. 'अत्तेवसो वि हि' इति ग-पाठः. ७. 'आ-
त्मवशोऽपि हि' ग-पाठः. ८. 'आभिजात्याः' इति ग-पुस्तके, 'आभिजात्यस्य' इति च
घ-पुस्तके पाठः.

[अनुदिवसर्वर्धितादरविज्ञानगुणैर्जनितमाहात्म्यः ।

पुत्रकाभिजातजनो विरज्यमानोऽपि दुर्लक्ष्यः ॥]

अनुदिवसे वर्धित आदरो मेरेबमूतैर्विज्ञानप्रमुखैर्गुणैर्जनितं माहात्म्यं महत्त्वं यस्य एता-
दशः कुलीनजनो विरज्यमानोऽपि दुर्लक्ष्यः । यत्पि कोपे कुलीनत्वादादरातिशय वि-
दधानामिमां प्रणिपातेन प्रसादयेति भावः ॥

चिदम्भं प्रति साभिलाषा कापि स्वमर्तरि वैराग्यं सूचयन्त्याह—

विष्णारणगुणमहग्ये पुरिसे विसृज्यं पि रमणिजम् ।

जगन्निन्दितं उज्ज्वलं जने पिअसणेणावि लज्जामो ॥ ६७ ॥

[विज्ञानगुणमहाघे पुरुषे द्वेष्यत्वमपि रमणीयम् ।

जननिन्दिते पुनर्जने प्रियत्वेनापि लज्जामहे ॥]

ऽपि पीनोत्पन्नज्वाला कस्याचिदतुरक्षोऽचिरेणैव कालेन तस्याः स्तनपतनं रङ्गा-
वयस्यमाह—

कहँ नाम तीअ तह सो सहावगुरुओ चि थणहरो पडिओ ।

अहवा महिलाणँ चिरं को वि ण हिअअम्मि संठाइ ॥ ६८ ॥

[कथं नाम तस्यास्तथा स स्वभावगुरुकोऽपि स्तनभरः पतितः ।

अथवा महिलाणां चिरं कोऽपि न हृदये संतिष्ठते ॥]

स्त्रीनामस्मिरप्रेमभावप्रकाशनं वा ॥

नायकप्रलोभनाय सखी नायिकामुखं वर्णयति—

सुअणु वअणं छिवन्तं सूरं मा साउलीअ चारेहि ।

एअस्स पङ्कअस्स अ जाणउ कअरं सुहणंसम् ॥ ६९ ॥

[सुतनु वदनं स्पृशन्तं सूर्यं वा वस्त्राञ्जलेन धारय ।

एतस्य पङ्कजस्य च जानातु कतरत्सुखस्पर्शम् ॥]

साउलीति वस्त्राञ्जलाचको देशी ॥

१. 'वर्धितादरं' इति ग-पाठः. २. 'लज्जाम.' इति ग-पाठः. ३. 'महओ' इति ग-
पाठः. ४. 'स्तनभारः' इति ग-पाठः. ५. 'हृदये कः संतिष्ठते' इति ग-पुस्तके, 'हृदये
न संस्थासी' इति च घ-पुस्तके पाठः. ६. 'साकुलीअ' इति ग-पाठः. ७. 'साउल्या'
इति ग-पुस्तके, 'पल्लवच्छत्रिकाया' इति च घ-पुस्तके पाठः. 'साकुलीशब्दो मङ्ग-
' इति कुलनालदेवः.

सीधुषानेन मत्ताया मानभङ्गमाकलय्य मानिनीमानशमनोपायशिक्षार्थं नागरिकः
महेश्वरमाह—

माणोसहं व पिज्जइ पिआइ माणंसिणीअ दइअस्स ।

करसंपुडवल्लिउद्धाणणाइ मइराइ गण्डूसो ॥ ७० ॥

[मानौषधमित्र धीयते प्रियया मनैस्त्रिन्या दयितस्व ।

करसंपुटवलितोर्ध्वाननया मदिराया गण्डूषः ॥]

सुरापूर्णेन मुखेन मुखे दत्ता सुरा पीता सती मानमपनयतीति भावः ॥

नायकप्रलोभनाय द्वितीयायिकायाः सौन्दर्यातिशयमाह—

कहँ सा णिब्बणिज्जइ जीअ जहा लोइअम्मि अज्जम्मि ।

दिट्ठी दुब्बलगाई व्व पक्कपडिआ ण उत्तरइ ॥ ७१ ॥ ✓

[कथं सा निर्गन्धतां यस्या वैद्यालोकितेऽङ्गे ।

दृष्टिर्दुर्बला गौरिव पङ्कयतिता नोत्तरति ॥]

यत्र पतिता तत्रैवावतिष्ठत इत्यर्थः ॥

कश्चिदप्येव वदन्ती द्वितीयायिकायाः तस्यास्त्विहोदतां वर्णवन्त्याह—

कीरन्ती विअ णासइ उअए रेह व्व खलअणे मेत्ती ।

सा उण सुअणम्मि कआ अणहा पाहाणरेह व्व ॥ ७२ ॥

[क्रियमाणैष नश्यत्सुदेके रेण्वेव खलजने मैत्री ।

सा पुनः सुजने कृता अनघा पाषाणरेखेव ॥]

अनघा निरपाया ॥

विरप्रसङ्गादागच्छ पुनरविराद्गन्तुमिच्छन्तं नायकं कापि सदैव्येमाह—

अब्बो दुक्करआरअ पुणो वि तन्ति करेसि गमणस्स ।

अज्ज वि ण होन्ति सरला वेणीअ सरङ्गिणो चिउरा ॥ ७३ ॥

[अब्बो दुष्करवारक पुनरपि विन्तां करोषि गमनस्य ।

अद्यापि न गमन्ति सरला वेण्यास्तरङ्गिणश्चिह्नराः ॥]

१. 'पिआए' इति ग पाठः. २. 'उत्ताणणाइ मइराए' इति ग-पाठः. ३. 'मा-
निन्या' इति ॥ पाठः. ४. 'वल्लोत्तानया' इति ग पाठः. ५. 'वदनमदिराया' इति
घ-पाठः. ६. 'णिब्बणिज्जोउ' इति ग-पाठः. ७. 'वद्यालोकिते' इति ग-पाठः.
८. 'दुर्बलगौरिव' इति ग-पाठः. ९. 'इदं दुष्कर-' इति ग-पाठः. 'अब्बो ॥ सहपंथो-
पनंते' इति कुलबालदेवः. १०. 'केशाः' इति ग पाठः.

अव्यो इति साधयन्मन्कारे । दुष्करेति स्त्रीवधपातककर्मित्वादिति भावः । येनीव-
न्धेन तरङ्गिणः कौटिल्यमाजधिकुरा अद्यापि सरला न भवन्तीति संबन्धः ॥

अव्युत्पन्नत्वादनुत्पद्यमानस्य दुर्विदग्धधनिकस्य प्रवृत्तिपाटवार्थं धूर्ता काचित्सद्भाव-
ब्रह्मप्रशंसासाह—

ण वि तह छेअरआइं वि हरन्ति पुणरुत्तगअरसिआइं ।

जह जत्थ व तत्थ व जह व तह व सज्जावणेहेरमिआइं ॥ ७४ ॥

[नैपि तथा छेकरतान्यपि हरन्ति पुनरुत्तरागरेसिकानि ।

यथा यत्र वा तत्र वा यथा वा तथा वा सद्भावब्रह्महरमितानि ॥]

छेकानामपूर्वापूर्वरसिक्खुशलानां रतान्यपि तथा न हरन्ति । पुनरुक्ते पुनः पुनः
परिशीलिते रागे रघने रतव्यापारे रसिकानि ॥

किमिति कृशासीति प्रियेण पृथ्वा पूर्वमुभगा समाह—

उज्जसि पिआइं समअं तह वि हुं रे भणसि कीस किसिअं ति ।

उवरिभरेण अ अण्णुअ मुअइं पइल्लो वि अज्जाइं ॥ ७५ ॥

[उज्जसे प्रियया समं तथापि खलु रे भणमि किमिति क्लेशेति ।

उपरि(भरेण) च हे^१ अज मुचति बलीवदौज्यहानि ॥]

प्रकाशादागतेन प्रियेणाप्यर्थं त्वरया रमितमिति वदन्तीं सखी नादिका साह-

रागमाह—

दिदमूलवन्धगण्ठि व्व मोइआ कहँ वि तेण मे चाहू ।

अम्हेहिं वि तस्स उरे खुत्त व्व समुक्खआ यणआ ॥ ७६ ॥

[दिदमूलवन्धगण्ठी इव मोचितौ कथमपि तेन मे चाहू ।

अस्मागिरपि तस्योत्ति निष्ठाताविव समुत्खातौ स्तनौ ॥]

१. 'छेअरआइं' इति ग-पाठः. २. 'जेह' इति ग-पुस्तके नास्ति. ३. 'नैव तथा
छेकुरतान्यपि' इति ग-पाठः. 'छेकुरा' इति कुरुवालेवः. ४. 'र-
सितानि' इति घ-पाठः. ५. 'सद्भावरमितानि' इति ग-पाठः. ६. 'उज्जसि' इति
ग-पाठः. ७. 'हुं' इति ग-पुस्तके नास्ति. ८. 'व्युत्से प्रियायाः समय' इति ग-पाठः.
९. 'खलु' इति ग-पुस्तके नास्ति. १०. 'कृशतेति' इति घ-पाठः. ११. 'भरेण
च अजअ (१) मुचति कृपमो' इति ग-पाठः. १२. 'हे' इति घ-पुस्तके नास्ति.
१३. 'गूढबद्ध' इति र-पाठः. १४. 'दृढगूढबद्धग्रन्थी' इति घ-पाठः. १५. 'ग्रन्थि-
रिव' इति ग-पाठः.

अनुरागनिर्भरतिङ्गनवशादन्योन्यलग्नौ मे बाहू तेन कथमपि मोक्षितौ अन्मानि-
रपि स्तनौ निखाताविव कथमपि समुत्थातौ ॥

कलहान्तरि नामनुनीयागता सखी तत्त्वान्तमाह—

अणुणअपसाइआए तुज्झ वराहे चिरं गणन्तीए ।

अपहुत्तोइअहत्थङ्गुरीअ तीए चिरं रुण्णम् ॥ ७७ ॥

[अनुनयप्रसादितया तवापराधाश्चिरं गणयन्त्या ।

अप्रभूतोभयहस्ताङ्गुल्या तया चिरं रुदितम् ॥]

अपराधानां बहुत्वादप्रभूता उभयहस्ताङ्गुल्यो यस्यास्तया । कथंकथमपि मया प्र-
सादिता इतः परं मेधं बाधयितुं भावः ॥

नर्तनभ्रमप्रसिन्नाङ्गना कुहितुः सौन्दर्योत्तिशयं कामुकचित्तप्रलोभनाय कुक्षी य-
पयति—

सेअच्छलेण पेच्छह तणुए अङ्गम्मि से अमाअन्तए ।

लावणं ओसरइ व्व तिवालिसोषाणउत्तिए ॥ ७८ ॥

[स्नेदच्छलेन पेष्यत तनुकेज्जे तस्या अमात् । .

लावण्यमपसरतीव त्रिवलीसोपानर्पङ्किभिः ॥]

तनुके तस्या अङ्गे समातुमसमर्थं लावण्यं स्नेदच्छलेनापसरतीवेति शोचना । श्रीरं-
रतगोपनार्थं सख्या उक्तिरियमिति केचित् ॥

अङ्गमभिमुखीकर्तुं कुक्षीं वस्त्रादिदलब्धलाभसत्कारत्वारूपं दोषं परिहरन्ती नौ-
न्दर्योत्तिशयमन्यापदेशेन वर्णयति—

देव्वाअत्तम्मि फले किं कीरइ एत्तिअं पुणो मणिदी ।

कङ्केहिपहवाणं ण पहवा होन्ति सारिच्छा ॥ ७९ ॥

[देवायत्ते फले किं क्रियतामिथेषुनर्भणामः ।

कङ्केहिपहवानां न पहवा भवन्ति सदृशा ॥]

कङ्केहिरसोरुः । अन्ये पहवा अशोरुपहवानां सदृशा न भवन्तीत्यर्थः । देवाधीनी
लाभसत्कारौ मा भवतां नाम । तत्सदृशी सुन्दरी पुनरन्या नास्तीत्याशयः ॥

१. 'रुणं वराहे' इति ग-पाठः. २. 'अप्रभवदुभय' इति घ-पाठः. ३. 'रुदितं
यराधया' इति ग घ-पाठः. ४. 'प्रक्षते' इति ग-घ-पाठः. ५. 'अमायमानं' इति
ग पुस्तके, 'अमायत्' इति च घ पुस्तके पाठः. ६. 'पहवा' इति ग-घ-पाठः. ७.
'कीरउ एत्तिअ उण भणामो' इति ग-पाठः. ८. 'करोतु' इति ग-पाठः. ९. 'एतावत्'
इति ग-घ-पाठः. १०. 'अशोरुपहवानां नवपहवा' इति. घ-पाठः.

ससौभाग्यस्यापत्ताय विरहविपुलां कलहान्तरितां रुदतीं कान्तां दर्शयन्तदनुदा-
यमागतः कान्तः सहचरमाह—

washes

धुअइ व्व मअकलङ्कं कपोलपडिअस्स माणिणी, उअह ।

अणवरअवाहजलभरिअणअणकलसेहिं चन्दस्स ॥ ८० ॥

[धावतीव मृगकलङ्कं कपोलपतितस्य मानिनी पश्यत ।

अनवरतवाप्यजलभृतनयनवल्गुशाम्यां चन्द्रस्य ॥]

कपोलप्रतिबिम्बितस्य चन्द्रस्य कलङ्कमानिनी धावतीव प्रक्षालयतीवेति योजना ।
एतेन प्रियायाः सौन्दर्यमात्मनः सौभाग्यं च वर्णितम् ॥

बहुपत्नीकस्य भर्तुर्नयमतीव बलभा भविष्यति, अतः पुनरागमिष्यत्येवात्र तत्किमेवं
विरहोऽसीति वयस्येनाश्वासमानो ज्ञातिपृष्टात्पतिपृष्टं प्रस्थिताया जारस्समन्यापदे-
शेनाह—

गन्धेण अप्पणो मालिआणं णोमालिआ.ण पुंदिहइ ।

अण्णो को वि हआसाइ मंसलो परिमलुगारो ॥ ८१ ॥

[गन्धेनात्मनो भेलिकानां नयमालिका न च्युता भविष्यति ।

अन्यः कोऽपि हेताशया मांसलः परिमलोद्धारः ॥]

नानापुष्पप्रक्षितमालिकानां मध्ये नयमालिकाएव पुष्पविशेष आत्मनो गन्धेन न
च्युतो भविष्यति । यतो ह्येता आशा अन्य ता यया तस्याः । अन्य इतरविलक्षणः
कोऽपि मांसलो बहलः परिमलोद्धारः ॥

नटधनं भुञ्जन्तुसाहयितुं कुट्टनी सत्पुङ्गवप्रशंसायाह—

फलसंपत्तीअ समोणआइं तुङ्गाइं फलविपत्तीए ।

हिअआइं सुपुसिसाणं महातरुणं व सिहराइं ॥ ८२ ॥

[फलसंपत्त्या समवनतानि तुङ्गानि फलविपत्त्या ।

इदयानि सुपुरुषाणां महातरुणामिव शिखराणि ॥]

समवनतानि नद्याणि । तुङ्गानि उग्रतानि ॥

प्रोषितभर्तृकायाः सखी तत्तन्तस्यागमनत्वरार्थं तत्समीपमाभिर्न पथिष्यमाह—

आसासेइ परिअणं परिवत्तन्तीअ पडिअजाआए ।

णित्याणुवत्तणे बलिअहत्यमुहलो बलअसहो ॥ ८३ ॥

१. 'पुंदिहइ' इति ग-पाठः. २. 'मालिनी' इति ग पाठः. ३. 'न न्यूना' इति
घ-पाठः. ४. 'हेताशयो' इति ग-पाठः. ५. 'सुपुसिसाणं' इति ग पाठः. ६ 'शि-
खराणीव' इति ग-पाठः.

[आश्वासयति परिजनं परिवर्तमानायाः पथिकजायायाः ।

निःस्थामवर्तने बलितहस्तमुखरो बलयशब्दः ॥]

परिवर्तमानायाः शयने पार्श्वपरिवृत्तिं कुर्वन्त्याः पथिकजायाया निःस्थाम निःसहं यद्ग-
तं तेन बलिते हस्ते मुखरोऽनुबद्धगणत्कारो बलयशब्दः परिजनमाश्वासयति जीवय-
तीति । आपयतीत्यर्थः ॥

शौणविभवस्यापि नायकस्य महच्छता सूचयन्ती दूती नायिकामनुरञ्जयितुमाह—

तुङ्गो चिञ्च होह मणो मणंसिणो अन्विमासु वि दसासु ।

अत्थमणम्मि वि रइणो किरणा उद्धं चिञ्च फुरन्ति ॥ ८४ ॥

[तुङ्गमेव भवति मनो मनस्विनोऽन्तिमासुपि दशासु ।

अस्तमेनेऽपि रयेः किरणा ऊर्ध्वमेव स्फुरन्ति ॥]

एतेन निर्धनोऽप्यसौ वदान्यः न चाधमां कामयत इति सूचितम् ॥

महच्छतादिकानुरञ्जनार्थं नायकस्य वदान्यतां वरोपकारितां च प्रस्तावयितुं दूती
कृपणनिन्दां सत्पुरुषस्य च प्रशंसामाह—

पोट्टं भरन्ति सडणा वि माठआ अप्पणो अणुन्विगा ।

विहँलुद्धरणसहावा हुवन्ति जइ के वि सप्पुरिखा ॥ ८५ ॥

[उदरं विभ्रति शकुना अपि हे मातर आत्मनोऽनुद्विगाः ।

विहँलोद्धरणसमात्रा भवन्ति यदि केऽपि सत्पुरुषाः ॥]

पक्षिणोऽपि परमासमक्षणादिना खोदरपूर्णं कुर्वन्ति । शीनदुःखापहारधुरंधरास्तु
सादृशा विरला इति भावः ॥

कृत्रिमेणापि भावेन भामिन्यः पुरपाननुरञ्जयन्तीति कथाविदुक्ता विदग्धबधू-
त्तामाह—

ण विणा सट्ठम्भेण ग्गेप्पइ परमत्थजाणुओ लोओ ।

को जुण्णमत्तरं कञ्जिएण वेमारिउं वरइ ॥ ८६ ॥

[न विना सट्ठमेव गृह्यते परमार्थज्ञो लोकः ।

को जीर्णमार्जारं कञ्जिकया प्रतारयितुं शक्नोति ॥]

१. 'नि स्थानोऽवर्तने' इति ग-पुस्तके, 'निःसहवर्तनवर्तित' इति च घ-पुस्तके पाठः.

२. 'उद्यमेव' इति ग-पाठः. ३. 'विभ्रलुद्धरणसमत्प्रा' इति ग-पाठः. ४. 'हे मातः'

इति ग-पाठः. ५. 'विहँलोद्धरण' इति ग-पाठः. ६. 'कञ्जिकेन' इति ग-घ-पाठः.

अलंकारयदानादपरितुष्टा नायिकामनुकूलवित्तं दत्ती अकारणमेवहुमानमन्याप-
देशेनाह—

रण्याउ तणं रण्याउ पाणिअं सब्वअं सअंगाहम् ।

तह वि मआणें मईणें अ आमरणन्ताई पेम्माई ॥ ८७ ॥

[अरण्यात्तृणमरण्यात्पानीय सर्वतः स्वयम्राहम् ।

तथापि मृगाणा मृगीणा च मरणात्तानि प्रेमाणि ॥]

निहपाधिक प्रेम श्लाघ्यमिति भावः ॥

सतापातिशयखण्डनाय चन्दनलेपाद्युपचारं कुर्वाणा धारयन्ती विरहिणी काचिदाह—

तावमवणेइ ण तहा चन्दणपङ्को वि कामिमिहुणाणें ।

जह दूसेहे वि मिन्हे अण्णोण्णालिङ्गणसुहेली ॥ ८८ ॥

[तापमपनयति न तथा चन्दनपङ्कोऽपि कामिमियुवानाम् ।

यथा दु सहेऽपि ग्रीष्मे अन्योन्यालिङ्गनमुखवेलिः ॥]

यदुपचारेण यत्सोपशमनं भवति तत्रान्य उपचारो विफल इति भावः ॥

सपत्न्या दुष्टारिभ्यस्त्यापनार्थं सुगन्धवधूतविदग्धा प्रथमरजोयोगसूचनव्युत्पत्तिं तस्याः
सूचयन्ती कान्तिसौध्वमाह—

हुत्पण्णा किणो चिट्ठसि ति पडिपुच्छिमाएँ वहुआप ।

दिग्गुणनेट्ठिअजइणत्थलाइ लज्जोणअं हसिअम् ॥ ८९ ॥

[पुलितैस्तानना किमिति तिष्ठसीति परिपृष्टया वध्या ।

द्विगुणप्रेष्टितजघनस्थलया लज्जावनत हसितम् ॥]

जघनस्थलप्रच्छादनेनैवातैवमाविष्कुर्यन्त्या लज्जावनतं यथा स्यात्तथा हसितमित्यर्थः ॥
कुलव्रीहतशिशुर्गन्धवधू कुलवधूमाह—

दिअअ चेअ विलीणो ण साद्धिओ जाणिऊण घरसारम् ।

मान्धवदुब्बअणं विअ दोहलओ दुग्गअवहूए ॥ ९० ॥

[हृदय एव विलीनो न वैधितो ज्ञात्वा गृहसारम् ।

मान्धवर्द्धवचनमिव दोहदो दुर्गतवध्या ॥]

१. 'स्वय म्राहम्' इति घ पाठ . २. 'किणो अच्छिदि ति' इति ख ग पाठ .
३. 'एत' इति ग पुस्तके नास्ति; 'पुतानना' इति घ-पाठ . ४. 'किमित्तसीति' इति
घ-पाठ . ५. 'साधितो' इति ग-घ पाठ . ६. 'दुर्विनयमिव' इति ग-पाठ . ७. 'दो-
हदको' इति घ पाठ .

शुलघ्नीचरितविरुद्धं सपरन्था घातार्थं ह्थापयन्ती कापि बन्धुवधूजनमाह—

धावद् विअलिअघम्मिहसिचअसजमणवावडकरग्गा ।

चन्दिलभअविबलाअन्तडिम्मभपरिमग्गिणी घरिणी ॥ ९१ ॥

[धावति विगलितघम्मिहसिचयसंयमनन्यापृतकराम्ना ।

• चैन्दिलभयविपलायमानडिम्मपरिमार्गिणी गृहिणी ॥]

वियत्तियो शिखिलयोर्धेम्मिहसिचययो सयमने व्यापृते कराग्रे यस्या सा । च-
न्दिलो नापितस्तस्य भयेन विपलायमानस्य डिम्मस्य परिमार्गणशीला गृहिणी धा-
वति । 'चन्दिल पुत्ति वास्तूकशाके गर्भे च नापिते' इति मेदिनीकोषः । एष च च-
न्दिलशब्दो नापितवचनो देसीति कस्यचिदुक्तिं कोपानालोचनमूलत्वादुपेक्ष्या । व्या-
जेन स्तनबाहुतुलादिदर्शयितुं धावतीति योजना वा ॥

भुजगप्रलोभनायै दूती नायिकाया वय सधि सौभाग्यं चाह—

जह् जह् उव्वहह् वह् णवजोव्वणमणहराई अक्काई ।

तह् तह् से तणुआअह् मज्झो दइओ अ पडिबक्खो ॥ ९२ ॥

[यथा यथोद्वेहते बधूर्नवयौवनमनोहराण्यङ्गानि ।

तथा तथा तस्मात्सैन्यते मध्यो दयितश्च प्रतिपक्ष ॥]

चकारो भिन्नकम प्रतिपक्षधेति योज्यः । स्वभावान्मध्यः । अस्यासक्त्या दयितः ।
ईश्यासत्तापेन प्रतिपक्षः ॥

रुद्रपतिद्वेषिणीं कुलवधू शिक्षयन्ती कापि पतिमतादृतमाह—

जह् जह् जरापरिणओ होइ पई दुग्गओ विरूओ विं ।

कुलघालिआणं तह् तह् अहिअअरं बह्हो होइ ॥ ९३ ॥

[यथा यथा जरापरिणतो भवति पतिर्दुर्गतो विरूपोऽपि ।

कुलपालिकानां तथा तथाधिकतरं बलभो भवति ॥]

कमपि युवानं प्रति साभिलाषा कामिनी समानवय शीलां मातुलानीमाह—

एसो माभि जुवाणो धारंयारेण जं अहअणाओ ।

गिग्गे गामेक्कवडोअअ व किच्छेण पावन्ति ॥ ९४ ॥

१ 'मग्गोसिणी' इति ग पाठः. २. 'वियत्तियेसवक्ख' इति ग-पाठ ३ 'नापि-
तभयपलायमान' इति ग-पुस्तके, 'नापितभयविपलायमान' इति घ पुस्तके पाठः.
४. 'बालकमार्गिणी' इति ग-पाठः. ५ 'उद्वहति' इति ग घ-पाठः ६. 'मस्तिक्षिते'
इति ग पुस्तके, 'तनुक्षयते' इति च घ पुस्तके पाठः. ७. 'अ' इति ग पाठः.

[एष भ्रातृभ्यानि युवा वारंवारो ज्यैमसत्यः ।

प्रीप्ते प्रामैकवटोदकमिव कृच्छ्रेण प्राप्नुवन्ति ॥]

अदधणाओ असत्यः । वारंवारो वारकमेण । पर्यायेणेति यावत् । यं युवानमसत्यः
कृच्छ्रेण प्राप्नुवन्ति स मयानायासेन प्राप्यत इति स्वसौभाग्यप्रकटनम् ॥

परवनितासुतेलम्पटस्य निजनायकस्य सकेतस्थानमङ्गेन परितुष्टा कपि पतिनता
पितृष्वसारमाह—

गामवडस्स पिउच्छा आवण्डुमुदीरिं पण्डुरच्छाअम् ।

हिअएण समं असईअं पढइ वाआहअं पत्तम् ॥ ९५ ॥

[गामवटस्य पितृष्वस्य आपाण्डुमुदीरिणां पाण्डुरच्छायम् ।

हृदयेन सममसतीनां पतति चाताहतं पत्रम् ॥]

गामवटस्य पत्रमसतीनां हृदयेन समं पततीति संबन्धः ।

इतिरुक्तामारमनः कथापयप्रागारिः सहचरमाह—

पेच्छइ अलद्धत्थं दीहं नीससइ सुण्णअं हसइ ।

जह जम्पइ अफुद्धत्थं सह से हिअअट्ठिअं किं पि ॥ ९६ ॥

[पश्यत्यलङ्घ्यत् दीर्घं निःशसिति शून्यं हसति ।

यथा जल्पत्यस्फुटार्थं तथा तेषां हृदयस्थितं निगमि ॥]

नागरिकः सहचरशिक्षार्थमसतीनां प्रयुत्पन्नमतिरवमाह—

गहमइ गजोह सरणं रक्खत्तु एअं त्ति अहअणा भगिरी ।

सहसागअरस तुरिअं पइणो विवअ जारमप्पेइ ॥ ९७ ॥

[गृहपते गतोऽस्माकं शरणं रक्षैनमित्यसनी भणित्वा ।

सहसागतस्य स्वरितं वस्तुरेव जारमर्पयति ॥]

निद्वयमानोऽपि भावः स्वभावादेवाविर्भवतीति प्रतिपादयन्ती कपि पत्नी शिक्ष-

यितुमाह—

हिअअट्ठिअस्स द्विज्जउ तनुआअन्ति मा पेच्छइ पिउच्छा ।

हिअअट्ठिओम्ह कंतो भणिउं मोहं गआ कुंमरी ॥ ९८ ॥

१. 'भगिनि' इति ग-गुल्फे, 'मातुति' इति च ग-गुल्फे पाठः. २. 'यं स रत्न-
नाः' इति ग-पाठः. ३. 'प्रेक्षते' इति ग घ-पाठः. ४. 'शून्यकं' इति घ-पाठः.
५. 'अस्या' इति ग-पाठः. ६. 'अभिउणा अभिउम्' इति ग-पाठः. ७. 'गृहपति' इति
ग-पाठः. ८. 'रक्षसैनमित्यतिनिपुणं भवित्वा' इति ग-पाठः. ९. 'मणनचोला' इति
घ-पाठः. १०. 'निउच्छा' इति ग-पाठः. ११. 'कुंमरी' इति ग-पाठः.

[हृदयेऽस्थितस्य दीयतां तेनूभवन्तीं न पश्यय पितृघ्नसः ।

हृदयेऽस्थितोऽस्माकं कुतो मणित्वा मोहं गता कुमारी ॥]

अयमर्थः—कौमारदशायामेव कस्मिन्नपि पुरुषे कस्याश्चिदनुप्राप्तं दृष्ट्वा कयापि विदग्धया पितृघ्नसारं प्रत्युक्तम्—इयं हृदयेऽस्थिताय कस्यैचिदीयतामिति । ततः स्वाशयनिवृत्तार्थं तयास्माकं कुमारीणां हृदयेऽस्थितः कुत इत्युक्त्वा प्रियस्मरणवेगान्मोहः प्राप्त इति ॥

मुजंगप्रलोभनाय दूती नामिकायाः सुरतावसानोपचारचातुर्यमाह—

खिण्णरस धरे पैङ्गो ठषेइ गिम्हावरणहरमिअस्स ।

धोलं गलन्तकुसुमं ण्हाणसुअन्धं चित्तरभारम् ॥ ९९ ॥

[खिन्नसोरसि पत्युः स्थापयति ग्रीष्मापराद्धरमितस ।

ज्वर्द्धं गलत्कुसुमं आनयैगन्धं चिकुरभारम् ॥]

श्लोत्नायां केलिरसिको युवा कान्तायाः कपोलकान्तिं वर्णयति—

अहं सरसदन्तमण्डलकपोलपद्मिमागजो मज्जच्छीय ।

अन्तो सिन्दूरिअसङ्खवत्तकरणिं वहइ चन्दो ॥ १०० ॥

[असौ सरसदन्तमण्डलकपोलप्रतिमागतो मृगाश्याः ।

अन्तः सिन्दूरितशङ्खपौनसादृश्यं वदति चन्द्रः ॥]

सरसदन्तमण्डलं मण्डलाकारं दन्तज्ञतं ययोः कपोलयोः । प्रतिमागतः सैकान्तप्रति-
म्वचन्द्रः अन्तर्मेख्ये सिन्दूरितं संजातसिन्दूरे यच्छङ्खपात्रं तत्सारदृश्यं वहतीत्यर्थः ।
तत्क्षतसारकत्वात्सिन्दूरसाम्यम् । कपोलयोश्च खच्छत्वाच्छङ्खपात्रसादृश्यं बोध्यम् ॥

रसिअजणहिअअदइए कइवच्छलपसुहसुकइणिम्मअए ।

सच्चसअग्निं समज्जं तीअं गाहासअं एअम् ॥

[रसिकजनहृदयदयिते कविवत्सलप्रमुखमुकविनिर्मिते ।

सप्तशतके समाप्तं तृतीयं गाथाशतकमेतत् ॥]

१. 'हृदयेऽस्थितस्य' इति घ-पाठः. २. 'दुर्बल्यमानां' इति ग-पुस्तके, 'तनुकाय-
जनां' इति च घ-पुस्तके पाठः. ३. 'हृदयेऽस्थितो' इति घ-पाठः; 'हृदयेऽस्थितमस्माकं'
त इति मणिद्र मोहमुपागता इति ग-पाठः. ४. 'वह्णो' इति ग-पाठः. ५. 'मुगन्धि'
ति घ-पाठः. ६. 'मिअच्छीया' इति ग-पाठः. ७. 'पात्रकरणि' इति ग-पुस्तके,
'पात्रधमता' इति च घ-पुस्तके पाठः.

चतुर्थं शतकम् ।

धविदग्धे भर्तरे यथा तथा चारनिहव कुलटाः कुर्वन्तीति सहचरशिष्यार्थं नाग
रिक्त धाद—

अह अम्ह आम्हो अज्ज कुलहराओ त्ति छेञ्छई जारम् ।

सहसागअस्स तुरिअ पइणो कण्ठ मिलेवेइ ॥ १ ॥

[असावसाकमागतोऽयं कुलगृहादित्यसती आरम् ।

सहसागतस्य स्वरितं पत्यु कण्ठे लैगयति ॥]

छेञ्छईत्यसतीवाचको देशीशब्दः ॥

अविषयेऽपि पत्युलुनयादरेण सखी नायिकाया सौभाग्यं क्वापयितुमाह—

पुंसिआ अण्णाहरणेन्दणीलकिरणाहआ ससिमऊहा ।

माणिणिवअणम्मि सकज्जलसुसङ्काइ दइएण ॥ २ ॥

[प्रोञ्जिता वर्णाभरणेन्द्रीलकिरणाहता सशिमयूहा ।

मानिनीवदने सकज्जलाधुसङ्काया दयितेन ॥]

नामकप्रलेमनाय दूती कस्याधि-सौ-दर्यंतिशयं वर्णयति—

एइहमेत्तम्मि जए सुन्दरमहिलासहस्सभरिए वि ।

अणुहरइ णवर विस्सा वामद दाहिणदस्स ॥ ३ ॥

[एतावन्मात्रे जगति सुन्दरमहिलासहस्रभूतेऽपि ।

अनुहरति केवलं तस्या वामार्धं दक्षिणार्धस्य ॥]

कृतापराधेऽपि प्रिये किं मानविमुखी स्वमसीति वक्ष्योक्ता क्वाप्यामनोऽनुरागं स्थि
रजेहतां च सूचयन्ती तामाह—

जह जह वाएइ विओ तह तह णञ्चामि चञ्चले पेम्मे ।

वही वलेइ अङ्ग सहावर्येहे वि रुक्कसम्मि ॥ ४ ॥

[यथा यथा चादयति प्रियस्तथा तथा नृत्यामि चञ्चले प्रेम्णि ।

वही बलदत्यङ्गं स्वभावस्तन्त्रेऽपि वृष्टे ॥]

यद्वा निराश्रयतया स्यानुमताया एता यथा स्तब्ध वृत्तमाधिस्य विव्रति तथाहमाप

१ 'आम्हो' इति क-स्य पाठ २ 'छिञ्छई' इति च-याठ ३ 'मिलेवेइ'
इति ग-पाठ ४ 'अयमसाक' इति ग-याठ ५. 'लैगयति' इति क-घ-पाठ ६
'पुच्छिम' इति ग-याठ ७ 'किञ्चा' इति ग-याठ ८ 'लीलहर' इति ग-याठ
९ 'दिष्ट' इति क-पुस्तके, 'उद्धे' इति च ग-पुस्तके पाठः

नटप्रायमधममननुरक्तमप्याधिल विष्टामि यत्त्वदुत्तमं कमप्यासादयामीति दूर्ती प्रति कु-
लदायाः कस्याधिदियमुक्तिः ॥

महता प्रयत्नेन लब्धस्य नायकस्यानभिज्ञतां प्रकटयन्ती कापि सखी यनिर्वेदमाह-
दुक्परेहिं लम्भइ पिओ लदो दुक्परेहिं होइ साहीणो ।

लदो वि अलदो विवअ जइ जह हिअअं तह ण होइ ॥ ५ ॥

[दुःखैर्लभ्यते प्रियो लब्धो दुःखैर्मयति स्तापीनः ।

लब्धोऽप्यलब्ध एव यदि यथा हृदयं तथा न भवति ॥]

कलहान्तरिता जातानुतापा श्रियसखीमाह—

अव्वो अणुणअसुहकङ्किरीअ अकअं कअं कुणन्तीए ।

सरलसहायो वि पिओ अविणअममगं चलणीओ ॥ ६ ॥

[कष्टमनुनयमुखैर्काङ्क्षुणशीलयाकृतं कृतं कुर्वत्या ।

सरलस्तमायोऽपि प्रियोऽविनयमार्गे बलाघ्नीतः ॥]

कष्टमित्यर्थे अव्वो इति देशी । करोतिरप्रोक्षारणे । अकृतमप्यपराधं कृतमिति स-
उक्षारयन्त्येत्यर्थः । मयेति शेषः ॥

प्रोषितपतिकाया विरहाति मुग्धतां च सूचयन्ती दूती नायकसमीपगामिन
शान्यमाह—

हत्थेसु अ पापसु अ अहुलिगणणाइ अइगआ दिअहा ।

एण्हि उण केण गणिज्जउ चि भेणिअ कअइ मुद्धा ॥ ७ ॥

[हस्तयोश्च पादयोश्चाहुलिगणनयातिमता दिवसाः ।

इदानीं पुनः केन गण्यतामिति भणित्वा रोदिति मुग्धा ॥]

प्रवासोद्यतस्य नायकस्य गमनाक्षिपाय काव्यपशवुनगर्भं वसन्तं वर्णयति—

कीरमुहसैच्छहोहिं रेहइ वसुहा पलासकुसुमेहिं ।

बुद्धस्स चरणवन्दणपट्टिण्हिं वं भिक्खुसंपेहिं ॥ ८ ॥

[कीरमुखसैरेहै राजते वसुधा पलाशकुसुमैः ।

बुद्धस्य चरणवन्दनपतितैरिव भिक्षुसंघैः ॥]

अत्र बुद्धस्येत्याद्युत्तरार्धमपशकुनसूचनार्थमेवोपात्तम् ॥

१. 'अव्वो' इति ग-पुस्तके, 'अहो' इति च घ-पुस्तके पाठः. २. 'काङ्क्षिणा' इति ग-पाठः. ३. 'गणणाहि' इति क-पाठः. ४. 'भजेउ' इति ख-पाठः. ५. 'सच्छ-
इहि' इति झ-पाठः. ६. 'अ' इति क-पाठः. ७. 'सदशैः' इति ग-इ सङ्गः. ८. 'स-
पातैः' इति घ-पाठः.

अनुनयं ग्राहयितुं सखी मानवतीमाह—

जं जं पिङ्गलं जङ्गं तं तं जाअं किसोअरि किसं ते ।

जं जं तणुअं तं तं पि पिङ्गिअं किं त्य माणेण ॥ ९ ॥

[यद्यत्पुण्ड्रमङ्गं तत्तज्जातं कृशोदरि कृशं ते ।

यद्यस्तनुकं तत्तदपि निष्ठितं किमन मानेन ॥]

निष्ठितं निष्ठां प्रकुर्ये गतम् । अतिदुर्बलं जातमित्यर्थः ॥

निजमण्डरेव न सा वाग्मा सत्कथं तस्या गुणानसौदीरित्यभियोज्येनोक्ता एता

तमाह—

ण गुणेण हीरइ जणो हीरइ जो जेण भाविओ तेण ।

मोत्तूण पुलिन्दा मोत्तिआई गुञ्जाओ मेहन्ति ॥ १० ॥

[न गुणेन हियते जनो हियते यो येन भावितस्तेन ।

मुक्त्वा पुलिन्दा मौक्तिकानि गुञ्जा गृह्णन्ति ॥]

हियते वशीक्रियते ॥

गमनाय पृष्टा किमिति किमप्युत्तरे न ददातीति श्रियेणोक्ताया वज्जाः संवन्धिनी
इदा काविदाह—

लङ्कालजाणं पुत्तअ वसन्तमासेकलद्वपसराणम् ।

आपीअलोहिआणं धीदेइ जणो पलाशानम् ॥ ११ ॥

[लङ्कालयानां पुत्रक वसन्तमासैकलम्बप्रसराणम् ।

आपीतलोहितानां विमेति जनः पलाशानाम् ॥]

पलाशानामिति शेषविवक्षया एवमर्थे वशी । पलाशेभ्यः किञ्चकपुष्पेभ्यो वपूष्वने
विभेदीत्यर्थः । अथ य पलं मांसमदन्ति मधुयन्तीति पलाशा रक्षसाः । तेभ्यो जनो
विभेदीति श्लेषः । पुण्यपक्षे सङ्गा छाया । पक्षे राक्षसनगरी । 'लङ्का रक्षपुरीसाया'
शाकिनीकुलटागु च" इति मेदिनीशेषः । तथा (राक्षसपक्षे छाया) पलाशप्रमादिकलम्ब-
प्रसराणम् । पुण्यपक्षे आ ईश्वरीतवर्णानि च तानि लोहितानि च । पक्षे आ व-
सन्तात्पीतं लोहितं रुचिरं वैश्लेष्यम् । वसन्तसूचकपलाशकुसुमभीता तत्र गमनं नशी-
करोतीति भावः ॥

१. 'गुणे' इति ग-पाठः. २. 'गुञ्जा' इति क-ख-पाठः. ३. 'गुणे' इति
ग-पाठः. ४. 'भावीअ' इति ख-पाठः. ५. 'विदेइ' इति ग-पाठः.

सखी सख्या कान्तं श्रुत्यनुरागातिशयमाह—

घेत्तूण चुण्णमुट्ठि हरिसूससिआप् वेपमानाए ।

भिसणेमिच्छि पिअअमं हत्थे गन्धोदअ जाअम् ॥ १२ ॥

। [गृहीत्वा चूर्णमुट्ठि ह्येषोत्सुकिताया वेपमानाया ।

अवकिरामीति प्रियतम हस्ते गन्धोदक जातम् ॥]

प्रियतम विच्छुरामीति चूर्णमुट्ठि गृहीत्वा ह्येषोत्सुकिताया वेपमानाया हस्ते गन्धो-
दक जातमित्यन्वयः । कान्तदर्शनजनितसार्वकभावात्मकस्नेहाचूर्णमुट्ठिरेव गन्धोदक
जातमित्यर्थः । चूर्णमुट्ठि कर्पूरादिभृङ्गन्धव्यधूलिः । भिसणेमि इति विच्छुरणे देशी ॥

सपत्न्या देवराभिसारं सूचयन्ती सखी सायाह—

पुट्ठि पुससु किसोअरि पेडोहरड्कोलपत्तचित्तलिअम् ।

छेआहिं दिअरजाआहिं उज्जुए मा कलिजिहिसि ॥ १३ ॥ ✓

[पृष्ठ प्रोञ्छ कुशोदरि पश्चाद्गृहाङ्कोटपत्रविनितम् ।

विदेग्याभिर्देवरजायाभि ऋजुके मा कैलिष्यसे ॥]

ऋजुके अभिसरणप्रच्छादनानभिरे । पश्चाद्गृहे विपमानो योऽङ्कोटवृक्षस्तस्य पत्रैर्वि-
नितं पृष्ठ प्रोञ्छ । पेडोहराब्द पश्चाद्गृहववनो देशी ॥

कृतापराधे प्रिये मान कारयन्ती सखी काप्यात्मनोऽनुरागातिशयेन आनाक्षमता-
ह—

अच्छीइं वा यइस्स दोहिं वि हत्थेहिं वि तस्सिं दिट्ठे ।

अज्जं कैलन्वत्तुसुम व पुलइअं कहें णु ढकिरस्सम् ॥ १४ ॥

[अक्षिणी तावत्सैर्गयिष्यामि ह्याम्बामपि हस्ताभ्या तस्मिन्देहे ।

अज्ज कदम्बकुसुममिव पुलकित कथं नु चैछौदविष्यामि ॥]

१ 'भिसणेमि' इति ख पुस्तके, 'असरेमि' इति च क-पुस्तके पाठः । २. 'वर्ण
[टि] इति घ-पाठः । ३. 'ह्येषोत्सुकिताया' इति ग घ-पाठः । ४. 'भरिष्यामि प्रियतम
मेति हस्ते' इति ग पुस्तके, 'विजहामीति प्रियतमहस्ते' इति च घ पुस्तके पाठः ।
५. 'पुलोहर' इति ग पाठः । ६. 'छेआहि' इति क पाठः । ७. 'जाआहि' इति क
पाठः । ८. 'प्रोञ्छय' इति ग-पाठः । ९. 'छेआमि' इति ग घ पाठः । १०. 'भार्या-
मे' इति घ पाठः । ११. 'किरस्स' इति ग-पाठः । १२. 'अच्छीइ' इति ख-ग-पाठः ।
१३. 'कदम्ब' इति ग-पाठः । १४. 'स्योयस्ये' इति ग पाठः । १५. 'सादयिमे' इति
ग-पाठः ।

नायकसमीपगङ्गामुपधिकमुखेन सखीजनो नायिकाया अवस्थां पृष्ट्वा विशेषतां च सदृशग्राह—

झञ्झावाततृणितं धरन्मि रोज्ज्वलं नीसहस्रिणसण्णम् ।

दावेइ व गजवइअं विज्जुओओ जलहराणम् ॥ १५ ॥

[झञ्झावातोत्तृणिते गृहे रुदिरा नि.सहस्रिणसण्णम् ।

दर्शयतीवै गतपतिका विज्जुदोतो जलघराणाम् ॥]

झञ्झावातो वर्षानिलः । सेनोत्तृणिते तृणशब्दोऽस्ते गृहे नि सहे यथा स्यात्तथा नि-
षण्णां प्रोक्षितपतिकां विज्जुदोतो जलघरेभ्यो दर्शयति । भवदुदयादियमेतामवस्थां
प्राप्ता, तदस्याः पत्युस्तृणितं कुरुत येनासी झटिस्त्रायासखीलाशयेनेति भावः ॥

आम्यलोचमोने मन्दादरे नायकं प्रवर्तयितुं दूती अन्यापदेशेनाह—

मुञ्जसु जं साहीणं कुतो खोणं कुगामरिद्धमिम् ।

सुहअ सल्लोणेण वि किं वेण सिणोहो जहिं जत्थि ॥ १६ ॥

[मुञ्जसु यास्वाधीन कुतो लवण कुगामरिद्धे ।

सुमग सल्लोणेनापि तेन जेहो यत्र नास्ति ॥]

लवण सामुद्रिकम् । जेहो लावण्यम् । जेहो घृतादि । पक्षे प्रेम । यद्यपि कुगाम-
रिद्धादियं कुवेशे तथापि त्वयि प्रेमातिशययुजेति भावः ॥

विरसमप्यनुरागवशास्सुरसं भवतीति कापि सखीमाह—

सुहपुच्छिआइ हलिओ सुहपङ्कअसुरहिपवणणिज्जविअम् ।

सह पिअइ पेअइकहुअं पि ओसहं जह ण णिट्ठाइ ॥ १७ ॥

[सुहपुच्छिकाया लिको मुखपङ्कजसुरभिपवननिर्वापितम् ।

तथा पिबति प्रकृतिकटुकमप्यौषध यथा न तिष्ठेति ॥]

अयमर्थ—ज्वरितस्य नायकस्य सुखप्रभार्यमागतया नायिकया जग्न कायौषधं पू-
ष्कारेण शीतलं कृतम् । ततस्तेन तिष्ठमपि तन्नि.शेष पीतमिति ॥

सा तत्र न गता, अहं तु निकृजे चिरं स्थित्वा समागत इति वदन्तं जारं दूती ना-
यिकायास्तत्र गमनं प्रतिपादयन्त्याह—

अहं सा तहिं तहिं ज्विअ वाणीरवणम्मि चुक्कसंकेआ ।

सुह दंसणं विमग्गइ पन्मट्टणिहाणठाणं च ॥ १८ ॥

१. 'दावेइ पत्यपइअ' इति क पुस्तके, 'दावेइअ' इति च ख पुस्तके पाठ
२. 'ह' इति क ख घ-पुस्तकेषु नास्ति ३. 'विज्जुदोतो' इति घ-पाठः. ४. 'उ-
च्छिआइ' इति ग पाठः. ५. 'पक्किदिकहुअम्मि' इति ग-पाठः. ६. 'मुखपुच्छिका-
या' इति घ-पाठः. ७. 'निर्वाति' इति ग घ पाठः.

[अथ सा तत्रैव वानीरवने विस्मृतसंकेता ।

तव दर्शने विमोर्गति प्रग्रष्टनिधानस्यानमिव ॥]

अथ त्वद्गमनानन्तरं विस्मृतं संकेतस्थानं यथा सा पृथादशी सा यत्र त्व गतस्तत्रैव वानीरवने त्वामन्वेषयतीति भावः ॥

कृतापराधं नायकसहचरं मयाप्रायकोपसर्पणविमुखमभिमुखयितुं काचिदाह—

दृढरोषकलुसिअस्स वि सुअणस्स मुहाहिं विप्पिअं कन्तो ।

राहुमुदग्मि वि सत्तिणो किरणा अमअं विअ मुअन्ति ॥ १९ ॥ ५

[दृढरोषकलुषितस्यापि सुजनस्य सुखार्देप्रियं कुतः ।

राहुमुखेऽपि शशिनाः किरणा अमृतमेव मुच्यन्ति ॥]

काचि जाराभिमत्तर्गपादनासमर्थो तत्कृतोपहारं परिहरन्ती कोऽत्र दोष इति वदन्ती प्रतीमाह—

अवमानिओ वि णं तथा दुम्मिअइ सज्जणो विहवहीणो ।

पेडिकाउं असमत्थो माणिज्जन्तो जह परेण ॥ २० ॥

[अवमानितोऽपि न तथा दीयते सज्जनो विभवहीनः ।

प्रतिकर्तुमसमर्थो मन्यमानो यथा परेण ॥]

प्रतिकर्तुं प्रमुपकर्तुम् । मान्यमानो दानादिनां सत्कियमाणः ॥

विश्वासकथनाय प्रोत्साहयन्ती दूती नाविक्रमन्यापदेशेनाह—

कलहन्तरे वि अविणिग्गाआइं हिअअग्मि जरमुवगआइं ।

सुअणकआइं रहस्साइं उहइ आउक्खए अग्गी ॥ २१ ॥

[कलहान्तरेऽप्यविनिर्गतानि हृदये जरामुपगतानि ।

सुजनश्रुतानि रहस्यानि दहत्यायुःक्षयेऽयिः ॥]

कलहान्तरेऽपि कलहमध्येऽप्यविनिर्गतान्यप्रकटानि । हृदयान्तरे हृदयमध्ये ॥
पगतानि बहुकालं स्थितानि । आयुःक्षये सत्यमिदं इति । न पुनरन्यसिन्धुसकामः
भावः ॥

१. 'तस्मिन् तस्मिन्नेव' इति ग-पाठः. २. 'ग्रष्टसंकेता' इति ग-पुस्तके 'मुक्क-
संकेता' इति च घ-पुस्तके पाठः. ३. 'मार्गेयति' इति ग-पाठः. ४. 'विप्रियं' इति
ग-घ-पाठः. ५. 'पेडिआउं' इति ग-पाठः. ६. 'दुर्मनायते' इति ग-पाठः. ७. 'सं-
मानितो' इति ग-पुस्तके, 'मन्यमानो' इति च घ-पुस्तके पाठः. ८. 'कृतानि' इति
ग-घ-पाठः.

इती प्रोषितभर्तृकाण्डाज्ञायाः माधवीलताकुञ्जगहनत्वेन दिवैवाभिसरणयोग्यताम्,
नायिकायाश्च वसन्तकालप्राप्त्योत्कण्ठातिशयेन सुसाध्यता प्रतिपादयन्ती नायकमाह—

लुम्बीओ अङ्गणमाधवीणं दारगगलाउ जाआउ ।

आसासो पन्थप्पलोअणे वि पिट्ठो गैअवईणम् ॥ २२ ॥

[स्तनका अङ्गणमाधवीनां द्वारागला जाताः ।

आभासः पान्थप्रलोकनेऽपि नैद्यो गतपतिकानाम् ॥]

लुम्बीति स्वर्णे देशी । यद्वा पन्थप्रलोअणे वर्त्मप्रलोकने । अर्थात्पत्युः । एतेन वस-
तोऽपि संवृत्तो वर्तमानलोकनविनोदोऽपि नष्ट इति नायिकाया उत्कण्ठातिशयो प-
नेतः ॥

सखी सख्याः कान्त्वं प्रत्यनुरागातिशयं नयनप्रशंसां वाह—

पिअदंसणसुहरसमउलिआई जइ से ण होन्ति णभणाई ।

ता केण कण्णरैइअं लक्खिअइ कुँवलअं तिस्सि ॥ २३ ॥

[प्रियदर्शनसुखरसमुकुलिते यदि तस्या न भवतो नयने ।

तैवा केन कर्णरचितं लक्ष्यते कुण्डलं तस्याः ॥]

आद्यस्य नयनपदेन द्वितीयस्य च कुण्डलपदेनान्वयात्तस्या इति पदद्वयस्य न वैय-
र्थ्यमिति ध्येयम् ॥

अभ्युदयहेतुरपि कार्यवशादुद्रेग जनयतीति प्रतिपादयन्नागरिकः सहचरमाह—

चिक्खिअल्लुत्तहउसुहकडुणसिठिले पैइम्मि पासुत्ते ।

अप्पत्तमोहणसुहा धणसमअं पामरी सवइ ॥ २४ ॥

[किंदमममदलमुखकर्षणशिक्षिणे पैत्यौ प्रसुप्ते ।

अप्राप्तमोहनसुखा घनसमय पामरी शपति ॥]

चिक्खिअल्लुत्तहउसुहकडुणसिठिले शब्देन शिथिले शान्ते पत्यौ
भगवशासुप्ते सति अप्राप्त मोहनमुखं सुरतमुखं यथा सा पामरी घनसमय शपति । नि-
न्दतीत्यर्थः । यद्वा विद्यमानेऽपि पत्यौ हल्लिङ्गवद्वाः सुलभत्वं प्रतिपादयन्त्या इत्या जार
प्रतीयमुक्तिः ॥

१. 'पन्थहिअप्रलोअणे' इति क पाठः. २. 'गअपइआण' इति क-पुस्तके, 'गअव-
ईण' इति च ग पुस्तके पाठः. ३. 'विगतो' इति घ पाठः. ४. 'लग' इति क-पाठः.
५. 'कुणलअ' इति क-पाठः. ६. 'तत्केन' इति घ-पाठः. ७. 'पिअम्मि' इति ग-
पाठः. ८. 'कदमाक्षिअ' इति ग-पाठः. ९. 'प्रिये' इति ग पाठः.

गमनोद्यतस्य मर्तुर्गमनाक्षेपाय विरहदुःसहत्वं प्रकाशयन्ती कापि स्मरसरनमस्कार-
लक्षणेनाह—

दुग्मेन्ति देन्ति सोक्यं कुणन्ति अणुराजं रमावेन्ति ।

अरद्भरद्भन्धवाणं णमो णमो मअणवाणाणम् ॥ २५ ॥

। [दुग्मेन्ति ददति सोक्यं कुर्न्त्यैतुरागं रमयन्ति ।

अरतिरतिबन्धवेभ्यो नमो नमो मदनबोधेभ्यः ॥]

विरहे दुःसदावृत्ताक्षेपमे च सुखदावृत्तादरतिरतिबन्धवत्वम् ॥

कापि कामवाणव्यापारवैचित्र्यवर्णनेन कमपि युवानं प्रत्याभनो मन्मथप्रथमाह—

कुसुममजा वि अइलरा अलङ्घफंसा वि दूसइपआवा ।

मिन्दन्ता वि रइअरा कामस्स सरा बहुविअप्पा ॥ २६ ॥

[कुसुममया अप्यतिस्तरा अलङ्घ्यस्पर्शा अपि दुःसहप्रतापाः ।

मिन्दन्तोऽपि रतिकराः कामस्य शिरा बहुविकल्पाः ॥]

बहुप्रकारा इत्यर्थः ॥

उत्कण्ठाधिनोदनार्थं प्रोषितमर्तुषा प्रियगुणानाह—

ईसं अणेन्ति दीवेन्ति मम्महं विप्पिअं सहावेन्ति ।

विरहेण देन्ति मरिउं अहो गुणा तस्स बहुमग्गा ॥ २७ ॥

[ईर्ष्या जनयन्ति दीर्घयन्ति मन्मथे विप्रियं सहायन्ति ।

विरहे म ददाति मर्तुर्महो गुणास्तस्य बहुमार्गाः ॥]

ईर्ष्या जनयन्तीत्यनेनाभ्यवनिताभिः काम्यमानस्वार्सन्दर्भातिशयः । दीर्घयन्ति मन्म-
थमिति मुरतकलाक्षेपम् । विप्रियं साहयन्तीत्यनुवचाद्वचानुपमम् । विरहे न ददति
मर्तुमित्यनेन पुनः समागमाशानिबन्धः श्रेयसद्वावधं व्यज्यते । तस्य प्रियस्य गुणा व-
हुमार्गा बहुप्रकाराः । 'तस्य कामशस्य गुणा इत्यर्थः' इति कथितम् ॥

स्वप्नपुरणा सा वामनकदामव्याजेन गृहं गृहं प्रयन्ती तत्रापि गृहं गता । तत्रापि
त्वं तया न गृहं इति इती शोपालम्भं वमप्याह—

णीआइं अज्ज निदिक्क पिणद्धणधरइअओइ वराईए ।

धरपरिवाडीअ पहेणआइं सुहं दंसणासाए ॥ २८ ॥

१. 'दुग्मेनायन्ते' इति ॥ पुलके, 'दुग्मेन्ति' इति च घ पुलके पाठः, २. 'आरयन्ति'
इति ग-पाठः, ३. 'अनुशासक' इति घ-पाठः, ४. 'अमिरतिबन्धवान्' इति ग-पाठः,
५. 'वाणानाम्' इति ग-पाठः, ६. 'विभारा' इति ग-पाठः, ७. 'मिन्दमात्रा' इति
ग-पाठः, ८. 'वाणा' इति ग-पाठः, ९. 'दीवेन्ति' इति ग-पाठः, १०. 'दग्मेन्ति'
इति घ-पाठः, ११. 'गृहयन्ति' इति ग-पुलके, 'वाचयन्ति' इति च घ-पुलके पाठः.

[नीतान्यय निष्कृप पिनद्धनवरङ्गकया वरावया ।

गृहपरिपाल्या ग्रहेणकानि तव दर्शनाशया ॥]

नवरङ्गके नूतनरक्षवस्त्रम् । ग्रहेणकानि वायनकानि । 'ग्रहेणकं वायनकम्' इति हारावली । अयं भावः— धन्यस्त्वमस्ति यमुत्सवव्याजेन गृहगृहभ्रमणखेदमगणयन्ती सा त्वां दिदृक्षते । अतस्तामात्मदर्शनेनानुकम्पयेति ॥

दरिद्रनायकासक्तो नायिकं तल्लक्षणसूचनेन सखी निवारयितुमाह—

सूत्रजइ हेमन्तम्मि दुग्गओ पुप्फुआसुअन्धेण ।

धूमकविलेण पेरिविरलतन्तुणा जुण्णवडएण ॥ २९ ॥

[सूच्यते हेमन्ते दुर्गतः करीपाप्रिसुगन्धेन ।

धूमकपिलेन परिविरलतन्तुना जीर्णपटकेन ॥]

पुष्पुआ इति करीपाम्नी देशी ॥

शिशिरसमये प्रवासोद्यतस्य नायकस्य गमनाक्षेपाय नायिका शिशिरप्रवासिनोऽवस्थ वर्णयति—

✓ सरत्तिप्पिरंउल्लिहिआई कुणइ पहिओ हिमागमपहाए ।

आअमणजलोह्लिअहत्थफंसमसिणाई अङ्गाई ॥ ३० ॥

[तीक्ष्णपललोह्लिखितानि करोति पथिको हिमागमप्रभाते ।

आचमनजलार्द्रितहस्तस्पर्शमसृणान्यङ्गानि ॥]

सिप्पिरं पलालः । ओल्लिओ आर्द्रितः । देशी द्वयम् । यदीदानीं त्वया गम्यते तव

तथापीयमवस्था भविष्यतीति भावः ॥

परिगृहीतोत्तमस्त्रीवमधर्मं चौरं कामुकजनेऽभिदधति सति कोऽप्युत्कृष्टनायिकाप रिप्रहरितिकस्य निकृष्टस्य निवेद्यान्यापदेसेमाह—

✓ णक्खक्खसुद्धिअं सहआरमञ्जरिं पामरस्स सीतम्मि ।

बन्दिम्मिव हीरतिं अमरजुआणा अणुसरन्ति ॥ ३१ ॥

[नखोत्खण्डितां सहकारमञ्जरीं पामरस्य शीघ्रे ।

• बन्दीमिव, हियमाणां अमरयुवानोऽनुसरन्ति ॥]

त्वयाप्युत्तमस्त्रीपरिग्रहे कृते युवान उपद्रावविष्यन्तीति भावः । यद्वा विपन्नस्त्राय

१. 'परिपाला पथिनयनानि' इति घ पाठः. २. 'धुम्म' इति ग पाठः. ३. 'परि रत्त' इति ग-पाठः. ४. 'सुगन्धिना' इति ग पाठः. ५. 'सिप्पिरंउल्लिहि' इति क-पाठः. ६. 'पुस' इति क-स्व-पाठः. ७. 'तीक्ष्णतृणाग्रो' इति ग-पुस्तके, 'क्षरपलाल' इति च घ-पुस्तके पाठः.

कस्याधिप्रायिकायाः सखी तस्या विषदुदरण्यान्यापदेशेन नायकमाह—नवस्तण्डनपा-
मरशिरोवस्थानरूपविपत्यतितां सहकारमञ्जरीं तिर्यञ्चो भ्रमरा व्यप्यनुसरन्तीति रसिक-
शिरोमणेस्तवीदासीन्यमनुचितमित्याशयः ॥

विदिताभिप्रायोऽसि मयेति व्यञ्जयन्ती इती नायक विश्वासयितुमाह—

सूरच्छलेण पुत्तम कस्स तुमं अज्झलिं पणामेसि ।

हासकडक्खुम्मिस्सा ण होन्ति देवाणं जेकारा ॥ ३२ ॥

[सूर्यच्छलेन पुत्रक कैसै त्वमज्जलिं प्रणामयसि ।

हासकटाक्षोन्मिथा न मयन्ति देवानां जयकाराः ॥]

जयकारा जयजयेत्यादिकाः स्तुतयः । जेकारो नमस्कारे देशीति कथित् ॥

चौरैरतप्रशंसया इती नायिका मुत्कण्ठयितुमाह—

मुहविज्झविजपईवं गिरुद्धसासं ससद्धिओह्मावम् ।

सवहसभरक्खिअओहुं चोरिअरमिअं मुहावेइ ॥ ३३ ॥

[मुहविज्झावित्तप्रदीपं निरुद्धकणं ससद्धितोक्षणम् ।

शपथशतरक्षितोष्ठं चोरिकारमितं मुखयति ॥]

मुखेन मुखवातेन विष्माकितो निर्वाकितः प्रदीपो यत्र तत् ॥

रहस्यकथया इती नायिका विश्वासयितुमाह—

गेजच्छलेण भरिअं कस्स तुमं हज्जसि गिअमरुक्कण्ठम् ।

मण्णुपडिहकड्कण्ठद्वगिन्तल्लिअक्खरुह्मावम् ॥ ३४ ॥

[गियच्छलेन स्मृत्वा कस त्वं रोदिपि निर्भरोत्कण्ठम् ।

मण्डुप्रतिरुद्धकण्ठार्धनिर्यस्तखलिताद्यरोह्याम् ॥]

कस स्मृत्वा त्वं रोदिपि । नैवविध गीतं भवतीति मया ज्ञातम् । यदर्धं खिद्ये तमहं
पदिष्मामीति भावः ॥

सपथती प्रतिवेशिजारे प्रति स्वावसरं व्यापयितुमाह—

यहलवमा हमराई अज्ज पउत्थो पई धरं मुण्णम् ।

वह जग्गेसु सअज्जिअ ण जहा अम्हे मुंसिआमो ॥ ३५ ॥

१. 'देव्याण' इति क-पाठः. २. 'जेकारा' इति ख पुस्तके, 'जेकारा' इति य
पुस्तके पाठः. ३. 'कस' इति ग घ-पाठः. ४. 'हास' इति घ-पाठः. ५. 'जो-
ता' इति ग-पाठः, 'जेकारास्यो नमस्कारे वर्तते' इति कुचालदेवः. ६. 'तास-
रकावम्' इति क-ग-पाठः. ७. 'निरुद्धक' इति ग घ-पाठः. ८. 'चोरित' इति
पाठः. ९. 'निर्मण्डल' इति ग-पाठः. १०. 'शुविआमो' इति क-पाठः.

[नेहलतमा हतरात्रिष प्रोषित पतिर्गृह शून्यम् ।

तथा जागृहि प्रतिवेशिष यथा वैय मुष्यामहे ॥]

बहुल समो यस्याभिलशनेन गाढा वकार आगच्छन्त कोऽपि न लक्षयतीति सूचितम् ।
अथ प्रोषित इत्यनेन तदागमनशङ्का निरस्य । गृह शून्यमिलनेनेहैव स्वच्छदमाग-
च्छेति ध्वनितम् ॥

प्रोषितमर्तुकाया सकी तत्कान्तस्यागमनस्वरार्थं तत्समीपगामिन पथिकमाह—

संजीवणोत्तहिन्मिव सुअरस रक्खइ अणणवावारा ।

सासू णवम्मदंसणकण्ठागज्जीविम सोहम् ॥ ३६ ॥

[संजीवनौषधिमिव सुतस्य रक्षत्यनन्दप्यापारा ।

अथूर्नवाभ्रदर्शनकण्ठागतजीवितां सुषाम् ॥]

यु सुषां सुतस्य संजीवनौषधिमिव रक्षतीति संबन्ध ॥

श्रुतिता प्रातरागतं नक्षदन्तसतापश्रुत कान्तं रोध्वेवाह—

णूणं हिअअणिहिस्ताइ वससि जाआइ अम्ह हिअअग्निम ।

अण्णइ मनोरहा मे सुहअ कइ सीअ विण्णाआ ॥ ३७ ॥

[नून हृदयनिहितया वससि जाययासाक इदये ।

अन्यथा मनोरथा मे सुभग कथं तथा विज्ञाता ॥]

जायया सहासाक इदये वसति । अन्यथा नक्षसतादिक यन्मया विकीर्णितं तत्तथा
कथं कृतमित्यर्थ ॥

इती नायिकाया अनुरागतिशय सूचयती नायकमाह—

तइ सुहअ अईसन्ते तिरसा अच्छीहिं कण्णलानेहिं ।

विण्ण घोळिरवाहेहिं पाणिअ दंसणसुहाणम् ॥ ३८ ॥

[त्वयि सुभग अहृदयमाने तस्मा अग्निभ्यां कर्णलप्राप्त्याम् ।

दत्त पूर्णनशीलबोधाभ्यां पानीय दर्शनमुन्नेभ्य ॥]

अहृदयमाने दर्शनपथमतिक्रम्य गते । कर्णलप्राप्त्या स्वरर्जनकोट्युत्पत्तिरतिताभ्यामि-

१ 'बहलापकारा' इति ग-पाठः. २. 'अस्मा मुष्णीयु' इति ग-पुण्डके, 'बवं
समुद्रिजाम' इति क-ग-पुण्डके पाठः. ३. 'संजीवनौषधिमिव' इति क-ग-पाठः.
४ 'कण्ठेद्रुत' इति घ-पाठः. ५. 'तामुहम' इति ग-पुण्डके, 'तामुभ' इति क-
पुण्डके पाठः. ६ 'मे कथय कथ' इति क-स-पुण्डको, 'मे एव कथ' इति घ-
पुण्डके पाठः. ७ 'अईसन्ते' इति क-पाठः. ८ 'अग्निभ्यां' इति ग-पाठः.
९ 'पूर्णमानभ्यां' इति ग-पाठः. १०. 'बाह्याभ्यां' इति घ-पाठः.

त्यर्थः । अतः परं त्वद्दर्शनं दुर्लभमिति मत्वा तस्यै परलोकगताय जलं दत्तमित्युत्प्रेक्षा ।
यद्वा त्वत्प्रेक्षाप्रदितं तथा, किंतु सुखाय जलाजलिरित्त इत्यपहृतिः ॥

शेषितभर्तृका कान्तं प्रति गायया सदेशमाह—

उपेक्ष्यागर्तुअमुहदंसणपठिरुद्धजीवितासाइ ।

दुहिआइ मए कालो केत्तिअमेत्तो ठव णेअव्वो ॥ ३९ ॥

[उत्प्रेक्षागतत्वनुसुखदर्शनप्रतिरुद्धजीविताशया ।

दुःखितया मया कालः कियन्मात्रो वै नेतव्यः ॥]

उत्प्रेक्षया भावनयागतस्य प्राप्तस्य तत्र सुखदर्शनेन प्रतिरुद्धा स्थाविता जीविताशा-
नस्यास्तया । अन्यथा जीविताशा गच्छेदेवेति भावः ॥

गतिरूपयोर्वनां कामपि कुलटा कुट्याह—

बोलीणालक्खिअरूअजोव्वणा पुत्ति कं ण दुम्मेसि ।

दिट्ठा पणट्ठोराणअणवआ जम्मभूमि ठव ॥ ४० ॥

[व्यतिष्कान्तलक्षितरूपसौगता पुरि कं न दुंत्तोप्ति ।

दृष्टा प्रणष्टपौषणजनपदा जन्मभूमिरिव ॥]

व्यतिक्रान्तमत एवालक्षितं रूपं यौवन च यस्याः सा । जनपदो लोकः ॥

वयस्यस्याभिमतं संपरस्यत इति नायकसहस्रेण पृष्टा दूती तथाह—

परिओसविअसिएहिं भणिअं अच्छीहिं तेण अणमज्जे ।

पड्डिवण्णं तीअ वि उव्वमन्तसेयाहिं अज्जेहिं ॥ ४१ ॥

[परितोषविकसिताभ्यां भणितमश्लिभ्यां तेन जनमप्ये ।

प्रतिपन्नं तथाप्युद्धमत्सेदैरङ्गैः ॥]

भणितमर्थास्त्राभिमतम् । प्रतिपन्नमङ्गीकृतम् ॥

परस्परानुरागवतीरपि कयोश्चित्तमागमयोग्यसकेतस्थलभासादभिप्रेतसिद्धिर्न जा-
येति नागरिकः सहचरमाह—

एक्ककमसंदेसाणुराअवहुन्तकोउहसाइ ।

दुक्खं असमत्तमणोरहाइं अंच्छन्ति मिहुणाइं ॥ ४२ ॥

१. 'तुह' इति ग-पाठः. २. 'दुहदया' इति ग-पाठः. ३. 'इति' इति ग-पुस्तके,
'इव' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४. 'बोलीणोलेखिअ' इति ग-पाठः. ५. 'दिट्ठपणट्ठ'
इति क-पाठः. ६. 'व्यतिष्कान्तोपलक्षित' इति ग-पाठः. ७. 'दुर्मेनायमाना भवसि'
इति ग-पुस्तके, 'दुर्मेसि' इति च घ-पुस्तके पाठः. ८. 'दृष्टा प्रणष्ट' इति ग-घ-पाठः.
९. 'वच्छन्त' इति क-पाठः. १०. 'अटन्ति' इति ग-पाठः.

[अन्योन्यसंदेशानुरागनर्घमानकौतूहलानि ।

दुःखमसमाप्तमनोरथानि तिष्ठन्ति मियुनानि ॥]

प्रियं प्रति जातमनुरागं शोपयन्तीं नायिकां सखी आह—

जैह सो ण बल्लहो विजअ गोत्तगगहणेण तस्स सखि कीस ।

होह मुहं ते रविअरफंसव्विसदं व तामरसम् ॥ ४३ ॥

[यदि स न बल्लभ एव गोत्रग्रहणेन तस्य सखि किमिति ।

भवति मुच्यं तच्च रविकरस्पर्शविक्रमितमित्र तामरसम् ॥]

गोत्रं नाम । विसदं विक्रितम् ।

कथं कृपिता त्व प्रसन्नासीति मातुलान्या वृथा कापि मानापनयहेतुमाह—

माणदुमपरुषपवणस्स मामि सख्वद्गणिंनुइअरस्स ।

अवऊहणस्स भदं रहणाहअपुध्वरङ्गस्स ॥ ४४ ॥

[मानदुमपरुषपवनस्य मातुलानि सर्वाङ्गनिर्भूतिकरस्य ।

अनगूहनस्य भद्रं रतिनाटकपूर्वरङ्गस्य ॥]

अवगूहनस्यालिङ्गनस्य । भद्रं भवत्विति शेषः । प्रियालिङ्गनान्मानोऽपगत इति

भाषः ॥

कमपि युवानं प्रति जातानुरागा कापि स्वहृदयनिषेधच्छेदेन संगमीत्युक्त्यमाह—

णिअआणुमाणणीसङ्क हिअअ दे विरम एत्ताहे ।

अमुणिअपरमत्यजणाणुलग्ग कीस म्ह लहुएसि ॥ ४५ ॥

[निजवानुमानेन शङ्क हृदयविशेषणम् । स्वमित्र परमपि परदुःखदुःखितं ज्ञात्वा

अज्ञातपरमार्थजनानुलभ किमित्यस्मादुपयमि ॥]

निजवानुमानेन निःशङ्केति हृदयविशेषणम् । स्वमित्र परमपि परदुःखदुःखितं ज्ञात्वा
स्वकमनोरथमङ्गमयेत्यर्थः । देशानन्दः संशोधने । अज्ञातपरमार्थं परव्ययानभिज्ञे जने-
ऽनुत्तम भाषक ॥

१. 'एवैककमसंदेशानुराग' इति ग-पुस्तके, 'एककमसंदेशानुराग' इति न घ-
पुस्तके पाठः. २. 'सन्ति' इति घ-पाठः. ३. इदं सटीका याया क पुस्तके नास्ति.
४. 'मियुनि' इति ग-पाठः. ५. 'मयिनि' इति ग-पुस्तके, 'मातुलि' इति घ-
पुस्तके पाठः. ६. 'हे हृदय' इति क-ख-ग-पाठः. ७. 'रिमैतावतेष' इति ग-पाठः.

आख्यामोदनाय दूती नायिकायाः सौन्दर्यातिशयं व्यापयितुमाह—

ओसेहिभजणो पइणा सलाहमाणेण अइचिरं हसिओ ।

चन्दो ति तुज्ज वजणे विईणकुसुमझलिविलक्खो ॥ ४६ ॥✓

[आवसथिकजनः पत्या स्नायमानेनातिचिरं हसितः ।

चन्द्र इति तव वदने वितीर्णकुसुमझलिविलङ्घः ॥]

आवसथिकचन्द्रार्घदानादितनियमस्यो जनचन्द्रधमेण स्वमुखे प्रक्षिप्तपुष्पाजलिः
पक्षा विहरित इत्यर्थः ॥

किमिति दुर्बलासीति सखीभिः पृष्टया त्वया किमुत्तरं दीयत इति धूर्तनायकेनोक्ता
नायिका तमाह—

छिज्जन्तोहं अपुदिणं पच्चक्खंमि वि तुमम्मि अङ्गेहि ।

बालअ पुच्छिज्जन्ती ण आणिमो करसं किं भणिमो ॥ ४७ ॥

[क्षीयमाणैरनुदिनं प्रत्यक्षेऽपि त्वय्यङ्गैः ।

बालक पृच्छयमाना न जानीमः कस्य किं भणामः ॥]

बालक उचितानभिह । क्षीयमाणैरङ्गैरुपलक्षिता । पृच्छयमाना किमिति दुर्बला-
सीति शेषः । पूर्वं तव प्रकाशो दुर्बलत्वे कारणमासीत्, अधुना तु सनिहिते त्वमि तव
दुधेशमप्रसीयतीषु सखीषु किं पृच्छयं तत्र जानीम इति भावः । प्राकृते बचनस्यानि-
यमात्पृच्छयमानैरपेक्षवचनं जानीम इति बहुवचनं च न विरुद्धमिति ध्येयम् ॥

प्रथमतः कृतशीलवृन्देन ततो मन्दादरं कमपि नायकमनुकूलयितुं दूती सोपा-
सम्भमाह—

अङ्गाणं सणुआरअ सिक्खावअ दीहरोहमन्वाणम् ।

विणआइकमआरअ मा मा णं पुन्हसिज्जासु ॥ ४८ ॥✓

[अङ्गानां तनुकारक शिक्षक दीर्घरोदितव्यानाम् ।

विनयातिक्रमकारक मा मा एनां प्रैस्करिष्यसि ॥]

तन्विति भावप्रधानो निर्देशः । तनुत्वकारकेत्यर्थः । विनयस्य शीलस्यातिक्रमः
सण्डनं तत्कारक ॥

१. 'मुमुहि सद्भिजणो' इति ग-पाठः. २. 'विमुक्' इति क-पुस्तके, 'विदिण्ण'
इति च ग-पुस्तके पाठः. ३. 'मुमुखि सखीजनो' इति ग-पाठः. ४. 'विदीर्णं' इति
ग-पाठः. ५. 'क्षीयमाणैः' इति ग-पाठः. ६. 'त्वयाङ्गे' इति ग-पाठः. ७. 'तनुत्व-
कारक' इति घ-पाठः. ८. 'शिक्षापक' इति ग-घ-पाठः. ९. 'प्रमार्जय' इति ग-
पुस्तके, 'प्रमंशय' इति च घ-पुस्तके पाठः.

प्रवासोद्यतस्य नायकस्य गमनाशेषाय काचिदाह—

अण्णह् ण तीरइ खिअ पैरिवहुन्तगरुअं पिअअमस्स ।

मरणविणोएण विणा विरमावेतं विरहदुक्खम् ॥ ४९ ॥

[अन्यथा न शक्यत एव परिवर्धमानगुरुकं प्रियतमस्य ।

मरणविनोदेन विना विरमयितुं विरहदुःखम् ॥]

प्रियतमस्य विरहदुःखं प्रियतमविरहेण जातं दुःखं स्वस्य मरणविनोदेन विना अन्यथा प्रकारान्तरेण विरमयितुं न शक्यत एवेत्यर्थः ॥

काप्यात्मनोऽदुरागं तस्य चान्यासक्तिं सूचयन्ती नायकमाह—

वण्णन्तीहिं तुह गुणे बहुसो अम्हेहिं छिच्छइपुरजो ।

बालअ सअमेअ कंओसि दुहोहो कस्स कुप्पामो ॥ ५० ॥

[वर्णयन्तीमित्यत्र गुणान्वहुशोऽस्माभिरसतीपुरतः ।

बालक स्वयमेव कृतोऽसि दुर्लभः कैसौ कुप्यामः ॥]

छिच्छइ अस्मत्ती । त्वद्वृणमुखरायाः स्वरूप एवाय ममानर्थ इति भावः ।

कापि स्वसौभाग्यप्रकटनामात्मनः प्रियस्य चान्योन्यादुरागमाह—

जाओ सो वि विलक्खो मए वि हसिऊण गाढमुपगूढो ।

पढमोसरिअस्स णिअंसणस्स गरिठ विमग्गन्तो ॥ ५१ ॥

[जातः सोऽपि विलक्षो मयापि हसित्वा गाढमुपगूढः ।

प्रथमापस्तस्य निवसनस्य अग्निं विमोर्गयमाणः ॥]

प्रथमेत्यदुरागादिशयेन प्रियस्पर्शापूर्वमेव स्थलितस्येत्यर्थः । विलक्ष्यापनयनाय मयापि गाढमालिङ्गित इति भावः ॥

अन्यासक्तिं नायकमनुकूलयितुं इती नायिकाया विरहवैधुर्यमाह—

कण्डुज्जुआ वराई अज्ज एए सा कआवराहेण ।

अलसाइअरुण्णविअम्भिआइ दिअहेण सिक्खविआ ॥ ५२ ॥

[कण्डर्जुका वराकी अथ त्वया सा कृतापराधेन ।

अलसायितरुदितविजृम्भितानि दिवसेन शिशिता ॥]

१. 'परिवहुन्तस्त गुरुअपेम्मस्स' इति क-ख-पाठः. २. 'परिवर्धमानस्य गुण केप्रेणः' इति घ-पाठः. ३. 'कस्स कुप्पामि' इति ग-पाठः. ४. 'णिअंसनसन्ध परिधानवध्वाचकः' इति कुलबालदेवः. ५. 'विमोर्गन्' इति ग-पुस्तके, 'विमृगमाण इति घ-पुस्तके पाठः. ६. 'सिक्खइआ' इति ग-पाठः. ७. 'कण्ठज्जुका' इति घ-पाठः.

काण्डवद्वज्रका । 'कण्णुज्जुआ' इति पाठे कर्णकजुवा कर्णदुर्बलेत्यर्थः । 'कन्या
कजुका इत्यर्थः' इति कथितम् ॥

वापि दाक्षिण्यादनुनयन्तं घटं नायकमाह—

अवराहेहिं वि ण तथा पत्तिअ जह मं इमेहिं दुम्मेसि ।

अवहत्तिअसच्चावेहिं सुहअ दक्खिण्णमणिएहिं ॥ ५३ ॥

[अपराधैरपि न तथा प्रतीहि यथा भोगेभिर्दुनोपि ।

अपहसितसद्भावैः सुमग दाक्षिण्यमणितैः ॥]

निद्राव्याजेन प्रियाशयजिज्ञासया परिभ्रमन्ती भुञ्जी निर्भर्त्सयन्ती नायिका नायक
आह—

मा जूर पिआलिङ्गणसरहसमभिरिणं बाहुलइआणम् ।

तुहिकपरुण्णेण अ इमिणा माणंसिणि सुहेण ॥ ५४ ॥

[मा कुप्यस्व प्रियालिङ्गनसरमसम्रमणशीलाम्या बाहुलतिकाम्याम् ।

तूष्णीकप्रवृत्तिरेव मेनेन मनस्विनि सुखेन ॥]

बाहुलतिकाम्यामित्यत्र 'कुप्यद्देर्घ्यामूयार्थानां यं प्रति कोपः' इति चतुर्थी । अत्र
सापदार्थं प्रियं प्रति कोपामावेन विशेषोक्तिः । अदोषो दोषो प्रति भोजनं च विभावना
दृष्टव्या । तादृशेण तु 'विशेषोक्तिरपठेपु कारणेषु फलावच' 'वियाद्याः प्रतिषेधेऽपि
फलव्यक्तिर्विभावना' इति काव्यप्रकाशकारोक्तं दृष्टव्यम् ॥

पुष्पावचयच्छलेन सनेतस्थानं गच्छन्तं वामुकं कवि जरतुरानी तपरिहासमाह—

मा वच्च पुष्फलाविर देवा उअअझलीहिं तूसन्ति ।

गोआअरीअ पुत्तअ सीलुम्मूलाईं कूलाईं ॥ ५५ ॥

[मा मग पुष्फलयनशील देवा उदकाञ्जलिमिस्तुष्यन्ति ।

गोदावरी. पुनरु शीलान्मूलानि कूलानि ॥]

पुष्पाणां लवणं छेदनम् । शीलं सञ्चरितसुन्मूलयन्ति निर्वृलं कुर्वन्तीति तथामृतानि ॥

कसिन्नपि यूनि जाताभिलाषां स्वाभिलाषं लब्ध्वा गोपयन्ती नायिका सखी आह—

वजणे वजणम्मि चलन्तसीसमुण्णावहाणहुंकारम् ।

सहि देन्ती णीसासन्तरेसु कीस म्हे दुम्मेसि ॥ ५६ ॥

१. 'दुम्मेसि' इति ग-पाठः. २. 'भामेतैरपहृमनायसे' इति ग-पुस्तके, 'भामेभिर्नो-
दुम्मेसि' इति च घ-पुस्तके पाठः. ३. 'जल' इति ग-पाठः. ४. 'अयि सुवसु मणंसिणि
हुंहेपण' इति ग-पाठः. ५. 'अयि खपिहि मनस्विनि सुखेन' इति ग-पाठः. ६. 'वि-
शान्तरेण' इति ग-पाठः.

प्रवासोद्यतस्य नायकस्य गमनाक्षेपाय काचिदाह—

अण्णह्ण ण तीरइ भिज पेरिवहुन्तगरुअं पिअअमस्स ।

मरणविणोएण विणा विरमावेउं विरहदुक्खम् ॥ ४९ ॥

[अन्यथा न शक्यत एव परिवर्धमानगुरुकं प्रियतमस्य ।

मरणविनोदेन विना विरमयितुं विरहदुःखम् ॥]

प्रियतमस्य विरहदुःखं प्रियतमविरहेण जातं दुःखं स्वस्य मरणविनोदेन विना अन्यथा प्रकारान्तरेण विरमयितुं न शक्यत एवेत्यर्थः ॥

काव्यात्मनोऽनुरागं तस्य चान्यासर्कं सूचयन्ती नायकमाह—

वण्णन्तीहिं तुह्णुणे बहुसो अन्हेहिं छिच्छइपुरओ ।

वालअ सअमेअ कंओसि दुहोहो कस्स कुप्पामो ॥ ५० ॥

[वर्णयन्तीमित्यव गुणान्वहुशोऽस्माभिरसतीपुरतः ।

वालक स्वयमेव कृतोऽस्ति दुर्लभः कैसौ कुप्यामः ॥]

छिच्छइ असती । रवहुणमुत्तरायाः स्मृत एवायं समानर्थे इति भावः ।

कापि स्वसौभाग्यप्रकटनायात्मनः प्रियस्य चान्योन्यानुपगमाह—

जाओ सो वि विलक्खो मए वि हसिऊण गाढमुपगूढो ।

पढमोत्तरिअस्स णिअंसणस्स गण्ठि विमग्गन्तो ॥ ५१ ॥

[जातः सोऽपि विलक्षो मयापि हसित्वा गाढमुपगूढः ।

प्रथमापस्तृतस्य निवसनस्य अग्निं विमोर्गयमाणः ॥]

प्रथमेलनुरागातिशयेन प्रियस्पर्शात्पूर्वमेव स्थलितस्येत्यर्थः । वैलक्ष्यापनयनाय मया गाढमालिङ्गित इति भावः ॥

अन्यासर्कं नायकमनुकूलयितुं दूती नायिकाया विरहवैधुर्यमाह—

कण्डुल्लुआ वराई अज्ज तए सा कआवराहेण ।

अलसाइअरुण्णविअम्भिआइ दिअहेण सिक्खविआ ॥ ५२ ॥

[कण्डर्जुका वराकी अद्य त्वया सा कृतापराधेन ।

अलसायितरुदितविनृम्भितानि दिवसेन शिशिता ॥]

१. 'परिवहुन्तस्य गरुअपेम्मस्य' इति क-ख-पाठः. २. 'परिवर्धमानस्य गुरु-
कप्रेम्णः' इति घ-पाठः. ३. 'कस्य कुप्यामि' इति च-पाठः. ४. 'णिअंसनशब्दः
परिधानवस्त्रवाचकः' इति कुलबालदेवः. ५. 'विमोर्गन्' इति ग-पुस्तके, 'विमृगमाणः'
इति घ-पुस्तके पाठः. ६. 'विमग्गन्' इति ग-पाठः. ७. 'कण्डर्जुका' इति घ-पाठः.

काण्डवहजुका । 'कण्णुज्जुका' इति पाठे कर्णञ्जुका कर्णदुर्वरेत्यर्थः । 'कन्या
हजुका इत्यर्थः' इति कश्चित् ॥

कापि दाक्षिण्यादनुनयन्तं शठं नायकमाह—

अवराद्धेहिं वि ण तहा पत्तिअ जह मं इमेहिं दुम्मेसि ।

अवहत्थियअसत्तमावेहिं मुहअ दक्खिण्णमणिएहिं ॥ ५३ ॥

[अपरधैरपि न तथा प्रतीहि यथा भोगेभिर्दुनोपि ।

अपहस्तितसद्भावे सुभग दाक्षिण्यमणितै ॥]

निद्राभ्यापेन प्रियाशयजिज्ञासया परिभ्रमन्ती मुनी निर्भर्त्सयन्ती नायिका नायक

मा जैर पिआलिङ्गणसरहसभमिरीणं बाहुलद्दआणम् ।

सुहृप्पकरुण्णेण ँ इमिणा माणंसिणि मुहेण ॥ ५४ ॥

[मा कुप्यस्व प्रियालिङ्गनसरमसन्नमनशीलाम्या बाहुलतिकाभ्याम् ।

तूष्णीकप्ररुदितेन चोनेन मनस्विनि मुखेन ॥

बाहुलतिकाभ्यामिलम्ब 'कुपडुहेध्यासूयापांवा य प्रति कोप' इति चतुर्थी । अत्र
राध प्रिय प्रति क्रोधाभावेन विशेषोक्तिः । अदोषो दोषो प्रति क्षोभेन च विभावना
भ्या । तद्वक्षणं तु 'विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलवच' 'वियाया प्रतिषेधेऽपि
व्यक्तिर्विभावना' इति काव्यप्रकाशकारोक्तं द्रष्टव्यम् ॥

पुष्पार्धवचच्छलेन सकेतस्थान गच्छन्तं कामुकं कापि वरस्कन्धी सपरिहासमाह—

मा वच पुष्फलाविर देवा उअअञ्जलीहिं तूसन्ति ।

गोआमरीअ पुत्तअ सीलुम्मूलाहं कूलाहं ॥ ५५ ॥

[मा प्रज पुष्पलवनशीलं देवा उदकाञ्जलिमिस्तुप्यन्ति ।

गोदावरी पुष्प शीलो मूलानि कूलानि ॥]

पुष्पाणां लवन छेदनम् । शीलं सधर्मितम् मूलवन्ति निर्मूलं कुर्वन्तीति तथाभूतानि ॥

कस्मिन्नपि मूनि जाताभिलाषां स्वाभिलाष एवमया गोपयन्ती नायिका सखी आह—

वअणे वअणम्मि चलन्तसीससुण्णावहाणहुंकारम् ।

सद्धि देन्ती णीसासन्तरेसु कीस म्हु दुम्मेसि ॥ ५६ ॥

१. 'दुम्मेसि' इति ग-पाठः । २. 'मामेतैरपदुर्मनायसे' इति ग-मुल्लके, 'मामेनिनो-
सि' इति च घ-मुल्लके पाठः । ३. 'जल' इति ग-पाठः । ४. 'अयि मुवसु मणसिणि
न' इति ग-पाठः । ५. 'अयि स्वपिहि मनस्विनि मुखेन' इति ग-पाठः । ६. 'पि-
नन्तरेण' इति ग-पाठः ।

[वचने वचने चलच्छीर्षिशून्वावधानहुंकारम् ।

सखि ददती नि.शासान्तरेषु किमित्यस्मान्दैनोपि ॥]

कृतापराध कान्त प्रति प्रियाया अनङ्गीकारं बोधयन्ती दूती आह—

सध्मावं पुच्छन्ती बालज रोमाविआ तुह पिआए ।

णत्थि च्चिअ कमसवहं हौसुम्मिस्सं मणन्तीए ॥ ५७ ॥

[सद्भावं पृच्छन्ती बालक रोदितां तव प्रियया ।

नास्त्येष कृतशपथं हासोन्मिश्रं मणन्त्या ॥]

रोदिता अहमिति शेषः । नास्त्येवेत्यनन्तरं दूतीति शेषः । अवि नाम स्थिरमेहोऽयं
सद्य पतिरिति पृष्टे नास्त्येव सद्भाव इति वययन्त्या रोदिताहमिति भावः ॥

संकल्पमानास्तास्त्रिवजभावा भवन्तीति वापि खबेदमर्थं व्यापयितुं सखीमाह—

एत्थ मए रमिअध्वं तीअ समं चिन्तिऊण रिअएण ।

पामरकरसेओहो णिवअइ तुवरी धविज्जन्ती ॥ ५८ ॥

[अत्र मया रन्तव्यं तथा समं चिन्तयित्वा हृदयेन ।

पामरकरसेदार्या निपतति तुवरी उप्यमाना ॥]

सममित्यनन्तरमितीति शेषः । इति चिन्तयित्वाप्यमानेति बोधना । तुवरी आढकी
'आढकी तु तुवर्यां स्त्री परिमाणान्तरे त्रिषु' इति मेदिनी ॥

वाप्यात्मनः पत्नी कस्याधिदत्तुरागं सूचयन्ती सखीमाह—

गह्वइमुओषिएसु वि फलहीवेण्ठेसु उअइ बहुआए ।

मोहं भमइ पुलओ बिलंगसेअहुली हत्थो ॥ ५९ ॥

[गृहपतिमुतावचितेष्वपि वर्षासमयेषु पश्यत वप्याः ।

भोषं जमति पुलनितो बिलंगसेदार्याः ॥]

१. 'नि.शासान्तरेण' इति ग-पाठः. २. 'दुर्मनायते' इति ग-पाठः. ३. 'हा
न्नीसं' इति ग-पाठः. ४. 'रोदितामि' इति ग-पाठः. ५. 'उहा' इति ग-
६. 'अविजन्ती' इति ख-पाठः. ७. 'रमित्य' इति घ-पाठः. ८. 'तुवरी वयमा' इति
इति ग-पुस्तके, 'दोसावकी उप्यमाना' इति ख घ-पुस्तके पाठः. ९. 'खण्डेसु' इति
ख-पुस्तके, 'वाटेसु' इति ख ख-पुस्तके पाठः. १०. 'मल्ल' इति ग-पाठः. ११.
'वाटेसु' इति घ-पाठः. १२. 'मल्ल' इति ग-घ-पाठः.

शोऽप्यस्मनो विश्रुत्वं ख्यापयन्सखायमाह—

अजं मोहणसुहिमं मुञ्चति मोक्षं पलाय्य हलिम् ।

दरकुहिजवेष्टभारोणमाह हसिमं च कैलहीम् ॥ ६० ॥

[आर्यो मोहनसुखितां मृतेति मुक्त्वा पलायिते हलिके ।

• दरकुहितवृन्तभारावनतया हसितमित्र कार्पासा ॥]

आर्यो तरुणीं श्रुतसेवेन निगीलितनयनां मृतेति ह्लात्वा हलिके पलायिते सति ईप-
त्कुदितवृन्तभारया लम्बावच्छादिबाधनतया कार्पासा हसितमित्र ॥

काप्यात्मनो निन्दाछेदेन धान्तं प्रलनुरागातिशयं प्रतिपादयन्ती सखीमाह—

णीसामुक्ताम्पिअपुलङ्गहि जाणन्ति णचिडं घण्णा ।

अम्हारिसीहि दिट्ठे पिअन्मि अप्पा वि वीसरिओ ॥ ६१ ॥

[नि. धासोत्कम्पितपुलरितैर्जानन्ति नर्तितुं घन्याः ।

अस्मादस्मीभिर्दृष्टे प्रिये आत्मापि विस्मृतः ॥]

अत्र ता अधन्या वयं तु घन्या इति व्यतिरेकालंकारो व्यङ्ग्यः ।

इष्टशिष्ये दूती नायिकाया व्याजमुक्तिमाह—

तणुएण वि तणुंइज्जइ तीएण वि रिज्जए बला इमिणा ।

मन्तयेण वि मज्जेण पुत्ति कह मुन्हा पडिवक्खो ॥ ६२ ॥

[तनुकेनापि तनूयते क्षीणेनापि क्षीयते बलादनेन ।

मध्यस्थेनापि मध्येन पुनरि कथं तत्र प्रतिपक्षः ॥]

यो हि मध्यस्थत्वादितुण्युक्तः ॥ परं न धीयति । अयं तु तत्र मध्यस्तनुरपि क्षी-
नोऽपि मध्यस्थोऽपि परं धीयतीत्यपि सन्देहो लो विरोधाभासः ॥

काप्यात्मनो वैदग्ध्यमनुरागं च सूचयन्ती कमप्याह—

वाहिज्ज वेअरहिओ धणरहिओ मुअणमज्झवासो व्व ।

रिवरिद्धिदंसणम्मिअ दूसहणीओ तुह विओओ ॥ ६३ ॥

१. 'मोनु' इति ग-पाठः. २. 'पुत्तिअ' इति क-ग-पाठः. ३. 'कलहीहि'
इति ग-पाठः. ४. 'ईपरपुता' इति ग-पुस्तके, 'वरतणुं' इति च घ-पुस्तके पाठः.

५. 'कलभारावनतया' इति ग-पुस्तके, 'इन्तभारावनतेन' इति च घ-पुस्तके पाठः.
हलिही कार्पासाः । वेष्टकुहः कर्पासवृक्षे वर्तते इति कुल्लयासदेवः. 'कण्ठसेन' इति
छं पाठः. ६. 'तामेव समिधेय' इति ग-पाठः. ७. 'तनुकेनापि तनुः कियते क्षामः
अथ ते क्षामेव' इति ग-पाठः.

[व्याधिरिव वैद्यरहितो घनरहित सजनमैष्यवास इव ।
रिपुऋद्धिदर्शनमिव ह सहनीयस्तव वियोग ॥]

प्रिय प्रति नायिकाया सदेशगायेयमिति केचित् ॥

येदशमाता खदुहितु पीनोन्नतपयोधरता प्रतिपादयन्ती चाट्टकस्या राजानमनुकूल-

यितुमाह—

कोत्थ जअम्मि समत्थो थइउ ^१‘नित्थिण्णणिम्मलुत्तुत्तम् ।

दिअअं तुज्झ पराहिं व गअणं च पओहर मोत्तम् ॥ ६४ ॥

[‘कोउ’ जगति समर्थ स्वगयितु विस्तीर्णनिर्मलेशुद्धम् ।

इदय तव नराधिप गैगन च पयोधरान्मुक्त्वा ॥]

पयोधर स्नान । पक्षे मेप ॥

सकेतस्यानमत जार कुट्टनी समाधासयितुमाह—

आअण्णेइ अउअणा कुडङ्गहेट्टम्मि दिण्णसकेआ ।

अगपअपेहिआणं मम्मरअ जुण्णपत्ताणम् ॥ ६५ ॥

[‘आकर्णयत्यसती पुञ्जाधो दत्तसकेता ।

अग्रपदप्रेरिताना मर्मरक् जीर्णपत्राणाम् ॥]

मर्मर पत्राणि । ‘अथ मर्मर । स्निते वस्त्रपर्णानाम्’ इत्यमर ॥

मुजगप्रलोमनार्थे दूती वस्त्राधिन्मुखसौरभ वर्णयति—

अहिलेन्ति सुरहिणीससिअपरिमलावद्धमण्डल भमरा ।

अमुणिअचन्दपरिहवं अपुव्वकमल मुह तिस्ता ॥ ६६ ॥

[‘अभिलीयते सुरभिनि शसितपरिमलावद्धमण्डल भमरा ।

अज्ञातचन्द्रपरिमवमपूर्वकमल मुख तस्या ॥]

भमरा भ्रमणशीला कामुका मृदाश्च । सुरभि यनि शसित तस्य परिमलेनावद्ध म

ण्डल यस्मिन्कर्मणि यथा भवतीति क्रियाविशेषणम् । ‘अहिलेन्ति अभिन्त्यन्तीत्यर्थे
इति कथित ॥

१ ‘अयोधरहितो’ इति ग-पाठः. २ ‘शृङ्गास’ इति ग-पाठः ३ ‘नित्थिण्ण
णिम्मल समुत्तुत्तम्’ इति ग-पाठः ४ ‘क समर्थो भवति पिषापयितु विस्तीर्णं निर्मल
समुत्तुत्तम्’ इति ग-पाठः ५ ‘गगनमिव’ इति ग-घ-पाठः ६ ‘पयोधरी’ इति
ग-पाठः. ७ ‘अउअणा’ इति ग-पाठः. ८. ‘आकर्णयत्यतिनिपुणा’ इति ग-पाठः.
९. ‘कुञ्जतटे’ इति घ-पाठः १०. ‘मण्डला भमरी’ इति क-पाठः ११. ‘अभिलपति
सुरभिनिर्मयित’ इति ग-पाठः

दूती नायिकाया अनुरागातिशय सूचयन्ती नायकमाह—

धीरावलम्बिरीअ वि गुरुअणपुरओ तुमम्मि बोलीजे ।
पडिओ से अच्छिणिमीलणेण पम्हट्टिओ बाहो ॥ ६७ ॥
[धैर्यैवलम्बनशीलाया अपि गुरुजनपुरतस्तथि व्यतिक्रान्ते ।
पतितस्तस्या अक्षिनिमीलनेन पद्मस्थितो बाष्पः ॥]

गुरुजनलज्जया तया नानुगमन कृतम्, बाष्पेण पुन कृतमेवेति भावः ॥
मानिन्या स्तस्मिन्ननुरागातिशयं स्वसौभाग्यं च सूचयन्नागरिकः सहचरमाह—

भरिमो से सअणपरम्मुहीअ विअलन्तमाणपसराए ।
कइअवसुत्तुवत्तणर्थेणकलसप्पेहणसुहेडिम् ॥ ६८ ॥

[सरामस्तस्याः शयनपराश्रय्या विगलन्मानप्रसराया ।
कैतवसुप्तोद्धर्तनस्तनकैलशप्रेरणमुखकैलिम् ॥]

कस्याधिदत्त आरेण कर्दमेनोक्षितं धीश्व कर्दमदातरि तस्या अनुरागातिशयं सूच-
यन्ती सखी सपरिहास तामाह—

फगुच्छण्णिदोसं केण वि कइमपसाहणं दिण्णम् ।
यणअलसमुहपलोद्वन्तसेअधोअ किणो धुअसि ॥ ६९ ॥

[फैलगुनोत्सवनिर्दोष केनापि कर्दमप्रसाधन दत्तम् ।
स्तनकलशमुखर्मलुठारस्वेदधौतं किमिति धौवयसि ॥]

धावयसि क्षालयतीत्यर्थः ॥

स्वदूचनादहं तत्समीप गतं, तथा तु मां विलोभयामि च किञ्चिदुक्तमिति नायकेनो-
दूती तमाह—

किं ण भणिओ सि बालअ गामणिधूआइ गुरुअणसमकर्तम् ।
अणिमिसमीसीसिवलन्तवअणणअणद्विट्ठेहि ॥ ७० ॥

१. 'धीरमयिलम्बिरी' इति ख-पाठः. २. 'धैर्यमवलम्बन्त्या' इति ग पाठः. ३. 'यण-
जुअलमुहपेहण' इति ख-पुस्तके, 'यणकलसापीडन' इति च ग पुस्तके पाठः. ४. 'कलशा-
लिङ्गनमुखकैलिम्' इति ग पुस्तके, 'कलशापीडनमुखम्' इति च घ-पुस्तके पाठः.
५. 'धौवयसि' इति ख ख-पाठः. ६. 'प्रवर्तमान' इति ख ख-पाठः. ७. 'धावसि' इति
क-ख-पाठः.

[किं न भणितोऽसि बालक आमणीपुत्र्या गुरुजनसमक्षम् ।
अनिमिषयीषदीपद्वलद्वदननयनार्धदृष्टैः ॥]

बालकः इति तानभिह । ईषदीपद्वलद्वदनं च नयनार्धदृष्टानि चेति कर्मधारयः ।
दृष्टानि निरीक्षणादि । कटाक्षनिरीक्षणेन संभावित एवास्ति । शत्रुरादिदर्शनाविर्भूतः
अपया वाचा केवलं नोक्तीऽसीति भावः ॥

उक्तमेवार्थं भण्यन्तरेणाह—

गणध्वजमन्तरधोलन्तबाहभरमन्थराइ दिट्ठीए ।

पुनरुत्तपेछिरीए बालक किं जं ण भणिओ सि ॥ ७१ ॥

[नयनाभ्यन्तरधूर्णमानवाष्पभरमन्थरया दृष्ट्या ।

पुनरुत्तप्रेक्षेणशीलया बालक किं यत्नं भणितोऽसि ॥]

कयापि तादृश्यावस्थायां धुरतसमये गणपतिरुपधानीकृतः, सैव बार्धकावस्थायां द
मेव गणपतिं पूजयन्ती अरामुपालभते—

जो सीसम्मि विइण्णो मज्झ जुआणेहिं गणवई आसी ।

तं त्विअ एहिं पणमामि हउजरे होहि संतुठा ॥ ७२ ॥

[यः शीर्षे त्रितीर्णे मम युवभिर्गणपतिरासीत् ।

तमेवेदानीं प्रणमामि हृत्तरे भव संतुष्टा ॥]

कापि मृतचौरिकामहिलां शोचन्तं कमध्वन्यापदेशेनाह—

अन्तोहुत्तं डँजइ जाआमुण्णे घरे हलिअउत्तो ।

उक्खाअणिहाणाइं व रमिअट्टाणाइं पेच्छन्तो ॥ ७३ ॥

[अन्तरभिमुखं दसते जायाश्रये गृहे हालिकपुत्रः ।

उत्खातनिधानानीव रमितत्त्वानानि पश्यन् ॥]

अन्तरभिमुखं हृदय एवेत्यर्थः । मृतधर्मक्रीकः पामरोऽपि बाह्याकारेण दुःखं ना-
विष्करोति, त्वं तु बिभ्रोऽपि सन्मृतचौरिकामहिलां प्रति शोचशीत्युक्तमेति भावः ॥

१. 'सुपमा' इति ग-गुस्तके, 'हुदिजा' इति च घ-गुस्तके पाठः. २. 'अनिमिष-
तियोगदनवलित' इति ग-पाठः. ३. 'वेत्तिरीए' इति ग-पाठः. ४. 'भ्देच्छित्तकवा'
इति ग-पाठः. 'भ्देच्छित्तं युत्तमापितम्' इति कुलवाल्देवः. ५. 'क्रियम्' इति ग-घ-
पाठः. ६. 'शिरसि' इति ग-पाठः. ७. 'भुवइ' इति ग-पाठः. ८. 'अन्तरा दग्धे'
इति ग-गुस्तके, 'अन्तर्भूतं दग्धे' इति च घ-गुस्तके पाठः. ९. 'प्रेक्षन्' इति ग-पाठः.

मान वरस्वेति शिष्यवतीं सखीं कानिदाह—

णिद्राभङ्गो आवण्डुरत्तण दीहरा अ णीसासा ।

जाअन्ति जस्स विरहे षेण सम कीरिसो माणो ॥ ७४ ॥

[निद्राभङ्ग आण्डुरत्व दीर्घोश्च नि सासा ।

जायन्ते यस्य विरहे तेन सम कीदृशो मान ॥]

कथं वृषितासीति नायकेन वृष्टाया धीरानाश्रित्या उक्तिरियमिति केचित् ॥

कृतापराध कात कापि सप्रणयरोपमाह—

तेण ण मरामि मण्णूहिं पूरिआ अज्ज जेण रे सुहअ ।

तोग्गअमणा मरन्ती मा तुज्ज पुणो वि'ल्लगिस्सं ॥ ७५ ॥

[तेन न म्रिये मन्युभि पूरिताय येन रे सुभग ।

रैवद्वतमना म्रियमाणा मा तव पुनरपि लैगिष्यामि ॥]

वद्वतचित्ताया मम मरणमेव युक्तम्, परं तु तव स्मरणापदि मम मरण भवति तदा
मातरैऽपि त्वमेव मम पतिर्दुःखदो भविष्यसीति भीत्या न म्रियेऽहमिति भावः ॥

कापि धैर्यमनुराग च व्यजयती कृतापराध कातमाह—

अवरज्जसु वीसअ सव्व ते सुहअ विसहिमो अम्हे ।

गुणणिच्चरम्मि हिअए पत्तिअ दोसा ण माअन्ति ॥ ७६ ॥

[अपराध्यस्तु विसंज्य सर्वे ते सुभग विषदामहे वयम् ।

गुणनिर्भरे हृदये प्रतीहि दोषा न शान्ति ॥]

अपराध्यस्त्रापराधं कुरु । गुणैर्योऽप्यसौ निर्भरे पूर्णं हृदये दोषा न शान्ति अवकाश
न भवते । अनुरक्तेन दोषो न श्रूयते इति भावः ॥

नायिकाया विरहोर्ति श्रुतिपादयती वृत्ती नायक स्वरयितुमाह—

भैरिउचरन्तपसन्निअपिअंभरणपिसुणो वराईए ।

परिवाहो विअ दुक्खस्स बहइ णअणट्ठिओ वाहो ॥ ७७ ॥

[श्रितोभर प्रसूतपियसस्मरणपिद्धो नो वराक्या ।

परीवाह इयं दुःखस्य पदति नयनस्थितो नाथ ॥]

- १ 'देरियो' इति ग पाठ २ 'दीर्घं च नि श्रुतम्' इति ग पाठ ३ 'त्वद्
तमनस्क' इति ग पाठ ४ 'लज्ज' इति ग पाठ ५ 'विषस' इति घ पाठ,
६ 'विषद्यामहे' इति ग पाठ ७ 'भरिउचरन्त' इति ख पाठ ८ 'पुणोन्नियमाण'
इति ग पुस्तके, 'श्रुतोऽहम्' इति च ख पुस्तके पाठ ९ 'दुक्खे' इति ग पाठ,
१०. 'परीवाहीव' इति ग पाठ ११ 'स्थित नाथम्' इति ग पाठ

वृतः पूर्णः । उच्चरन्निर्गच्छन् । प्रसृतः प्रवृद्धः । तथा त्रिवर्षस्मरणस्य पित्रुनः सू-
चकः । एतच्च परीवाहवाप्ययोर्ममयोरपि विशेषणम् ॥

नायिकाया अनुसन्धातिशयं प्रतिपादयन्ती दूती नायकमाह—

जं जं करोसि जं जं जप्पसि जह तुम जिअच्छेसि ।

सं तमणुसिक्खिरीए दीहो दिअहो ण संपडइ ॥ ७८ ॥

[यद्यत्करोषि यद्यज्जल्पसि यथा त्वं निरीक्षसे ।

तैस्तदनुशिखणशीलाया दीर्घो दिवसो न संपद्यते ॥]

त्वचेष्टितमनुकुर्वन्त्यास्तस्या, दिवसो लघुर्भवतीत्यर्थः ॥

काचित्पयिकेन समं रात्रौ कृतसंभोगा तद्वृणातिशयेन विरहकातरा प्रभाते रोदिति
नागरिकः स्वस्य विहायव्यापनाय सहचरमाह—

भण्णन्तीअ तणाइं सोत्तुं दिण्णाइं जरइं पहिअस्स ।

ताइं चेअ पहाए अज्जा आअट्टइ रुअन्ती ॥ ७९ ॥

[भर्त्सयन्त्या तृणानि सैतुं दत्तानि यानि पयिकस्य ।

तान्येव प्रभाते आर्या आकपेति रुदती ॥]

भण्णन्ती भर्त्सयन्ती । पट्टइ कुर्वन्नेति यावत् ॥

कोऽपि सहचरस्य गाम्भीर्यशिक्षार्थं सत्पुरुषप्रशंशामाह—

वसणम्मि अणुविदग्गा विद्वम्मि अगन्विआ मए भीरा ।

होन्ति अहिण्णसहावा समेसु विसमेसु सत्पुत्तिता ॥ ८० ॥

[व्यसनेऽनुद्विग्ना विभवेऽगर्विता मये भीराः ।

भवन्त्यभिघ्नस्तमायाः समेषु विषयेषु सत्पुरुषाः ॥]

केनापि प्रवाहिना पुरदेण प्रेयसीं स्मृत्वा प्रभाते गानं कृतम्, तत्पुत्रपुनोद्दीपितमि-
रहातला काचि श्रेयिभर्तृका सखीमाह—

अज्ज साहि केण गोसे षं पि मणे वल्लहं भरन्तेण ।

अम्हं मअणसराहअहिअमव्वणफोटनं गीअम् ॥ ८१ ॥

१. 'निर्भायसि' इति ग-पाठः. २. 'तत्तदनुशिखन्त्या' इति ग-पाठः. ३. 'स-
विभु' इति घ-पाठः. ४. 'इक्षरगुणा आकपेदते' इति त्र-पाठः. ५. 'विरतनुराकपेति'
इति च घ-पाठः. ६. 'विभवे' इति ग-पाठः. ७. 'प्रेयसीविहाः' इति ग-पाठः.

[अथ सखि केन प्रीतः कामपि मन्ये बल्लभां स्मरता ।

अस्माकं मदनशराहतहृदयव्रणस्फोटनं गीतम् ॥]

तद्दृष्टवर्धनेनास्माकं विरहदुःखं स्फुटितव्रणवदधिकं जातमिति भावः ॥

आयत्तिखेदकरं तदात्वेऽपि खेदयतीति निदर्शयन्कोऽपि सहचरमाह—

उद्वन्तमहारम्भे यणए ददूण सुखबहुआए ।

ओसण्णकवोलाए णीससिअं पढमघरिणीए ॥ ८२ ॥

[उत्तिष्ठन्महारम्भौ स्तनौ दृष्ट्वा सुखवत्याः ।

अवसन्नकपोलया निःश्वसितं प्रथमगृहिण्या ॥]

अवसन्नकपोलया शुष्ककपोलया । पतितस्तनीं भां विहायातः परमस्यामन्योन्या-
लिङ्गपनपीनकुचायामावृणो भविष्यति कान्त इति चिन्तयेति भावः ॥

कापि मन्दस्नेहं नायकमनुकूलयितुमन्यापदेशेनाह—

गजअङ्गुहाउलिअस्स वि बल्लहकरिणीमुहं भरन्तस्स ।

सरसो मुणालकबलो गजस्स हत्थे चिअ मिलाणो ॥ ८३ ॥

[गुरुकमुधाबुलितस्यापि बल्लभकरिणीमुखं स्मरतः ।

सरसो मृणालकबलो गजस्य हस्त एव स्थानः ॥]

मद्विमोहितबुद्धिना विरथा गजेनापि प्रियास्नेहातिशयान्मृणालकबलरक्षणः ।
पुनर्मोमपहाय महिलासदृशं रमयसीति ज्ञातस्तव स्नेह इत्युपालम्भो व्यक्तः ॥

वाचापि प्रियो नोद्वेजयितव्य इति सखीं शिक्षयितुं कापि धीराया नायिकायाः ।
यकेन सहोक्तिप्रत्युक्तिकौशलमाह—

पसिअ पिण्णुं का कुँविआ; सुअणुं तुमं परअणम्मि को कोवे; ।

को हु परो नाथ; तुमं कीस अपुण्णाण मे सत्ती ॥ ८४ ॥

[प्रसीद प्रिये का कुपिता सुतनु त्वं परजने कः कोपः ।

कः खलु परो नाथ त्वं किमित्यपुण्यानां मे शक्तिः ॥]

विप्रलब्धाया अनुरागातिशयं निरहार्तं च प्रतिपादयन्ती दूती नायकमाह—

एहिसि तुमं त्ति णिमिसं व जग्गिअं जामिणीअ पढमदम् ।

सेसं सेतावपरव्वसाह वरिसं क वोलीणम् ॥ ८५ ॥ व]

१. 'प्रभाते किमपि' इति ग-पाठः. २. 'कपोलया.' इति घ-पाठः. ३. 'गृहिण्याः'
इति घ-पाठः. ४. 'स्मरमाणस्य' इति ग-पाठः. ५. 'कुविदा' इति ग-पाठः. ६. 'प-
रिजने' इति घ-पाठः.

[ऐष्यसि त्वमिति निमिषमिव जैगरितं याभिण्याः प्रथमार्धम् ।

शेष सतापपरवशाया वर्षमिव व्यतिक्रान्तम् ॥

भूतादिप्रत्येयं स्त्री परित्थगतीति शङ्कमान जनं प्रति प्रोषितभर्तृकाया सः
काचिदाह—

अवलम्ब्य मा सङ्कष्टं ण इमा गहलङ्घिता परिभ्रमन् १।

अस्यैव गजि उच्यन्तहित्यहिअया पदिअजाआ ॥ ८६ ॥

[अवलम्ब्य मा शङ्क्य नेय गहलङ्घिता परिभ्रमति ।

आह्लिकगर्जितोन्नतनसहृदया पथिकजाया ॥]

हित्य प्रत्ययः । प्रहा भूतादयः ॥

स्वस्य गुणोत्कर्षं वयापयन्ती काप्यनेकश्लोत्पटं कान्तं मधुकरव्याजेनोपालभते—

केसररभविच्छेदं ममरन्दो होइ जेन्तिओ कमले ।

जह अमर तेन्तिओ अण्णहिपि वा सोहसि भमन्तो ॥ ८७ ॥

[केसररंज समूहे ममरन्दो भवति यागन्कमले ।

यदि अमर तावानन्यनापि तदा शोभसे भ्रमन् ॥]

विच्छेद समूहः ।

‘रम्याणां विह्वलितरिपि ध्रियं तनोति’ इति निर्वर्णयन्तोऽपि उल्लापमाह—

‘पेच्छन्ति अणिमिसच्छा पदिआ हलिअस्स पिट्ठपण्डुरिअम् ।

धूअं दुद्धसमुदुत्तरन्तलच्छि विअ सअह्मा ॥ ८८ ॥

[पेक्षन्तेऽनिमिषाक्षाः पथिका हलिकस्य पिष्टपाण्डुरिताम् ।

दुहितर दुग्धसमुद्रोत्तरलक्ष्मीमिव सनृष्णाः ॥]

धूआ दुहिता । पिष्टं तण्डुलादे । यथानिमिषाक्षा देवा लक्ष्मीमपश्यत्तया पथिका
अपीमामिषार्थः । हलिकगुतामपि साभिलाषं पश्यतामेवा वासो न देय इति सहर्षं
प्रति नागरिकस्योच्चिरिति केचित् ॥

कल्हान्तरितायाः खेदातिशय सूचयन्ती इती तत्कान्तमाह—

कस्स भरिसि चि भणिण को मे अत्थि ति जम्पमाणाए ।

उच्चिगगरोइरीए अम्हे वि रुआविआ तीए ॥ ८९ ॥

१. ‘आगमिष्यसि’ इति ग-याठ. २. ‘जायत’ इति ग-याठ. ३. ‘अरूपेक’ इति
ग-याठ. ४. ‘ममर होइ तेन्तिओ’ इति क ग-याठ. ५. ‘रजोपिष्टते’ इति ग घ
याठ ६. ‘तावानन्यसिन्’ इति घ-याठः.

[कस्य सरसीति भणिते को मेऽस्तीति जल्पमानया ।

उद्विधरोद्वनशीलया वयमपि रोदितास्तया ॥]

मानप्रदिलां नायिका भयं दर्शयन्ती सरसी मानमज्ञाय सरोपमाह—

पाअपडिअं अहव्वे किं दारिणं ण उट्ठवेसि मत्तारम् ।

एअं विअ अवसाणं दूरं पि गअस्स पेम्मस्स ॥ ९० ॥

[पादपतितममन्ये निमिदानीं नोत्थापयसि मर्तारम् ।

ऐतदेवावसानं दूरमपि गतस्य प्रेम्णः ॥]

अमन्ये इति सप्रणवरोप संशोधनम् । अगृहीतानुनया द्वेष्या मन्त्रिष्यतीति भावः ॥

आत्मनो विपरीतरताभिलाष सूचयन्ती नायिका वान्तमाह—

तडविणिहिअग्गहत्था वारितरङ्गेहिं घोलिरणिअम्मा ।

सालूरी पडिविम्बे पुरिसाअन्तिव्व मडिहाइ ॥ ९१ ॥

[तडविनिहितप्रहृष्टा वारितरङ्गेर्धूर्णनशीलकृन्तिरम्मा ।

शालूरी प्रतिविम्बे पुरुषायमाणेव प्रतिमाति ॥]

शालूरी भेकी । प्रतिविम्बे अर्थाः स्त्रीये ॥

कुसुम्भवाटिकायां कृन्तयिष्यता काचिदात्मन्यौर्वरसगोपनार्थमाह—

सिक्करिअमणिअमुह्वेविआइं धुअहत्थसिस्त्रिअव्वाइं ।

सिक्करन्तु घोडहीओ कुसुम्भ तुम्ह प्पसाएण ॥ ९२ ॥

[सीत्कृतमणितमुखपेपितानि धुतहस्तशिञ्जितव्यानि ।

शिञ्जन्तु कुम्भार्यः कुसुम्भ शुभ्रमध्यसादेन ॥]

घोडही 'कुमारी तदणी वा । सीत्कृत सीत्कारः । मणित रतिवृजितविशेषः । मुखपेपितमधरादिधूननम् । एतानि नखक्षतमुष्वापाताधरखण्डनैरपि भग्नानि कण्टकक्ष-
तेन च भवन्ति । तथा च सीत्कारादयो मेम कुसुम्भकण्टकक्षतायाता न तु सुरतेने-
त्याशयः ॥

१. 'जल्पन्त्या' इति घ-पाठः. २. 'उद्वटं रोदन्त्या' इति ग-पाठः. ३. 'माणस्स'
इति ग-पाठः. ४. 'इदमेव' इति ग-पाठः. ५. 'दूरं गतस्य' इति घ-पाठः. ६. 'मा-
नस्य' इति ग-पाठः. ७. 'मुहपरिवेविआइ' इति ख-ग-पाठः. ८. 'मुहपरिवेपितानि'
इति ग-पाठः. ९. 'शिञ्जितावि' इति ग-पाठः. १०. 'स्त्रिष्यन्तु प्राम्या' इति ग-पाठः.
११. 'तरुण्यः' इति घ-पाठः. १२. 'शुष्माक' इति ग-पाठः.

काप्यात्मनो जारं प्रत्यनुरागातिशयं धावयन्ती नितम्बोपालम्भव्याजेनाह—

जेत्तिअमेत्ता रच्छा णिअम्ब कह वेत्तिओ ण जाओसि ।

जं छिप्पइ गुरुअणलज्जिओ सरन्तो वि सो सुहओ ॥ ९३ ॥

[यौवत्प्रमाणा रक्ष्या नितम्ब कथं तौवन्न जातोऽसि ।

येन स्पृश्यते गुरुजनलज्जापसृतोऽपि स सुमग ॥]

तृणरुतापृह स्वतस्त्वानमिति जारं धावयन्ती काप्याह—

मरगअसूईविदं व मोत्तिअं पिअइ आअअर्गीओ ।

मोरो पाउसआले सणगगळगं छअअविन्दुम् ॥ ९४ ॥

[मरकतसूचीविद्धमिव मौक्तिकं पिबत्यायतग्रीवः ।

मयूर, प्रावृट्टोले तृणाग्रलघुमुदकविन्दुम् ॥]

अन मरकतसूच्या मौक्तिकवेद्यस्यासमावितस्योपमया दुष्प्रापनायिकाप्राप्तिं नायकस्य दूती सूचयतीति केचित् ॥

अभिचारिकायाः दृष्णपक्षाभिचारोचितं नीलकण्ठकं धावयन्ती दूती नायकमुत्तरं लयितुमाह—

अज्जाइ णीलकण्ठुअभरिउव्वरिअं विहाइ धणवट्टम् ।

जलभरिअजलहरन्तरदरुगगं चन्द्रबिम्ब उव ॥ ९५ ॥

[आर्याया नीलकण्ठकमूर्तोरुत्तरितं विभाति लनपृष्ठम् ।

जलभृतजलधरान्तरदरोद्गतं चन्द्रबिम्बमिव ॥]

कण्ठकं मृता महतादुर्वरितमित्यर्थः ॥

प्रवासीयतस्य पर्युर्गमनाशेषाय कापि वसन्तमासस्य पण्डितमयहेतुतां दर्शयति—

राअविठ्ठं व कहं पदिओ पदिअस्त साइइ संसट्टम् ।

जत्तो अम्याण दलं तत्तो दरणिगिअं किं पि ॥ ९६ ॥

१. 'जेण छिप्पिअइ गुरुअणलज्जोसमिओ' इति ख पाठः. २. 'यावन्मात्रा' इति ग-पाठः. ३. 'न तावन्मात्रो' इति ग पाठः. ४. 'यत्' इति ग पाठः. ५. 'लज्जा-पसरन्' इति ग-पाठः. ६. 'शोको' इति क-पाठः. ७. 'ईश्वरगुणाया' इति ग-पाठः. ८. 'मृतोन्नियमार्ग' इति ग-पुस्तके, 'मृतोदृत' इति च घ पुस्तके पाठः. ९. 'अत-परान्तरादौपदुत्तरं' इति ग-पाठः. १०. 'सपट्टो' इति क-पाठः.

[राजविरुद्धायपि कथां पथिकः पथिकस्य कथयति सशङ्कम् ।

येत आम्नाणां दलं तैत् ईषविर्गतं किमपि ॥]

दलं पत्रम् । किमप्यङ्कुरः ॥

सप्रे प्रियदर्शनेन विरहदुःखं कथं न निनोदयसीति प्रतिवेशिनीभिर्दृष्टा काचिदा-
मनोऽनुरागातिशयं कथापयितुमाह—

यन्मा ता महिलाओ जा दइअं सिविणए वि पेच्छन्ति ।

णिइ जिअ तेण विणा ण पइ का पेच्छए सिविणम् ॥ ९७ ॥

[यन्मास्ता महिला या दयितं सप्रेऽपि प्रेक्षन्ते ।

निद्रैव तेन विना नैति का प्रेक्षते स्वप्नम् ॥]

अत्र दूयमधन्याः, अहं तु धन्येति व्यज्यते ॥

पूर्वं समुद्रस्य कालवशेन गलितविभवस्य कस्यापि मतःसम्भाषनाय कृत्या-
परेक्षेनाह—

परिरद्धकणअकुण्डलगाण्डत्यलमणहरेसु सवणेसु ।

सैत्थ वि समअवसेण अ पंहिरत्तइ तालवेण्टजुअम् ॥ ९८ ॥

[परिरद्धकनककुण्डलगण्डत्यलमणोहरयोः अवणयोः ।

सैत्रापि समयवशेन [च] परिभ्रियते तालवृन्तयुगम् ॥]

तालवृन्तं तालपत्रताडकम् ॥

कथमेतादृशे ग्रीष्मे मम प्रिय आगमिष्यतीति विन्तवन्ती नायिका सहयाह—

मण्डहपत्थिअस्स वि गिन्हे पहिअस्स इरइ संवावम् ।

हिअअट्ठिअजामामुहमअङ्गजोह्वाजलप्पवहो ॥ ९९ ॥

[मध्याह्नप्रस्थितस्यापि ग्रीष्मे पथिकस्य हरेरिति संतापम् ।

हृदयस्थितगायामुखमृगाङ्गज्योत्स्नाजलप्रवाहः ॥]

१. 'शंसति' इति घ-पाठः. २. 'शवन्त्यामात्रा इलानि' इति ग-पाठः. ३. 'ता-
वदीषद्' इति ग-पुस्तके, 'ततो दरे' इति च घ-पुस्तके पाठः. ४. 'जालो' इति ख-
पाठः. ५. 'पश्यन्ति' इति ग घ-पाठः. ६. 'कपोलदोलनमण' इति ग-पाठः.
७. 'अण्णअसमअ' इति क-ख पाठः. ८. 'परिहिच्चद' इति ख-ग-पाठः. ९. 'प-
रि-
बद्ध' इति ग पाठः. १०. 'कपोलतरल' इति ग-पाठः. ११. 'मनोहरेषु कर्णेषु' इति
घ-पाठः. १२. 'तयोरपि समय' इति ग-पुस्तके, 'अन्तस्त्वयमवसन्न परिसिद्यते,
तालवृन्तयुगलम्' इति घ-पुस्तके पाठः. १३. 'तालपत्रयुगम्' इति ग-पाठः. १४. 'इ-
न्ति' इति ग-पाठः. १५. 'हृदयेष्वित' इति ग-पाठः.

प्रादृष्टमासमां मत्ता त्रियां दिवसवोऽगमितप्रोष्ममध्यंदिनदिनेशसंतापाः पयिकाः
पन्यानमतिवाहयन्तीत्यर्थः ॥

असययप्रार्थितया कान्तया क्षिप्तं नायक दूती सान्त्वयितुमाह—

भण को ण रुस्सइ जणो पत्थिज्जत्तो अपसकालम्भि ।

रतिवाअहा रुअन्तं पिअं वि पुत्तं सवइ माओ ॥ १०० ॥

[भेण को न रुष्यति जनः प्रार्थ्यमानोऽदेशकालं ।

रतिव्यावृता रुदन्तं प्रियमपि पुत्रं शेषते माता ॥]

ऐत्थ चउत्थं विरमइ गाहाण सअं सहावरमणिज्जम् ।

सोऊण जं ण लग्गइ हिअए मधुरत्तणेण अमअं पि ॥

[अत्र चतुर्थं विरमति गायानां शतं स्वभाररमणीयम् ।

श्रुता यत्र लगति हृदये मधुरत्वेनामृतमपि ॥]

पञ्चमं पाठकम् ।

प्रणामकाङ्क्षिणी नायकानुरक्त स्वहृदयमाह—

डङ्गसि डङ्गसु कट्टसि कट्टसु अह कुडसि हिअअ ता कुडसु ।

तह वि पैरिसेसिओ चिअ सोहु मए गलिअसब्भावो ॥ १ ॥

[दृष्टसे दृष्टस्य कम्प्यसे कम्प्यस्य अथ स्फुटति हृदय तरङ्गमुट ।

तथापि पैरिसेसित एव स खलु मया गलितसद्भावः ॥]

परिसेसितः परिच्छिन्नः । निर्णीत इत्यर्थः ।

यथक्षेत्रं संकेतस्थानमिति आरंभावयन्ती काचिदन्येषां मयप्रदर्शनार्थमाह—

दट्ठण रुन्दतुण्णं गगिग्गअं णिअसुअस्म दाढग्गम् ।

भोण्डी विणावि कज्जेण गामणिअडे जवे चरइ ॥ २ ॥

[दृष्टा विनालतुण्णैर्गमनिर्यतं निजमुत्तम दंष्ट्रामम् ।

सूत्री विनारि कैर्येण गामनिकटे यथाश्रति ॥]

१. 'काउला' इति क-पाठः. २. 'वद' इति ग-पाठः. ३. 'अदेशकालयोरपि' इति
* ग-पाठः. ४. 'तपति' इति ग-पाठः. ५. इयं गाथा ग-पुस्तके नास्ति. ६. 'कुड'
ग. ७. 'परिसेसितव्यो' ग. ८. 'अत्र मए' ग. ९. 'परिसेसितव्योऽय मया' ग.
१०. 'दृष्टतुण्णम्' ग. ११. 'दृष्टतुण्णम्' ग. 'वृद्धतुण्णम्' घ. १२. 'कार्य' ग.

स्वन्द विशालम् । भोण्डी सूकरी । यवक्षेत्रप्रस्थिताया अभिसारिकाया निवेधाय
इत्या उक्तिरियमिति केचित् ॥

अभिसारभीतां कामध्वनुलयितुं दूती नायकस्य आमप्रधानतां निप्रहानुप्रहक्षमतां
चान्यापदेशेनाह—

हेलाकरग्गअट्टिअजलरिकं साभरं पजासन्तो ।

जअइ अणिग्गअवडवग्गिभरिअगगणो गणाहिर्वई ॥ ३ ॥

[हेलाकराभाट्टजलरिकं सागर प्रकाशयन् ।

जयत्यनिप्रहवडयापिभृतगगनो गणाधिपतिः ॥

हेलया वराभेगाट्ट यज्जलं तेन रिक्कम् । अलनिप्रहानिप्रतिबन्धोरियतेन वडया-
प्रिना भूत गगन येन सः । गणाधिपतिर्विनायको मण्डलनायकश्च ॥

कोऽपि कामिनी चानुरागनायात्मनः स्त्रीपरतामसोकपल्यच्छलेनाह—

एएण चिअ कक्केहि तुज्ज तं णट्ठि जं ण पज्जत्तम् ।

उयमिज्जइ जं तुह पडवेण वरकामिणीहत्थो ॥ ४ ॥

[एतेनैव कक्केहे तत्र तन्नासि यन्न पर्याप्तम् ।

उपमीयते यत्तत्र पलवेन वरकामिनीहस्तः ॥]

कडेलिरशोकः ॥

पूर्वगाथार्थमेव भङ्गवन्तरेणाह—

रसिअ विअट्ट विलासिअ समअण्णअ सच्चअं असोभो सि ।

वरजुअइचलणकमलाहओ वि जं विअससि सपड्डम् ॥ ५ ॥

[रसिक विदग्ध विलासिन्समयश्च सैत्यमशोकोऽसि ।

वरयुवतिचरणकैमलाहतोऽपि यद्विकससि सतृष्णम् ॥]

समय आचार । नायिकावरणपात. प्रमाद एव मन्तव्य इति नायक शिक्षयितुं कु-
ख्या उक्तिरियमिति केचित् ॥

दौ.साधिकाभिदासस्य जारस्य परिहासकौशलं दूती तत्प्रियामानन्दयितुमाह—

वलिणो वाआवन्धे चोज्जं जिउअत्तणं च पअडन्तो ।

सुरसत्थकआणन्दो वामणरूवो हरी जअइ ॥ ६ ॥

[वलेर्वावानन्धे आश्रयं निपुणत्वं च प्रकटयन् ।

सुरसार्धकृतानन्दो वामनरूपो हरिर्जयति ॥]

बलेद्वैत्यविशेषस्य, पक्षे बलिनो बलवतः । वाचा वचनेन बन्धो नियमनं निरु-
सरीकरणं च । चोद्यमाध्वर्यम् । 'चोद्यं स्यादद्भुते प्रश्ने चोदनाहं तु वाच्यवत्' इति मे-
दिनीकोषात् 'चोद्यं' इत्येव मूलपाठः । निपुणत्वमिहितगुप्तिः । सुरसार्थो देवसमूहः शो-
भनरसवदर्थकं वचनं च । वामनः स्वर्वाकारो न्यग्भावापन्नश्च । इतिर्विष्णुः परदाराप-
हारी चेति यथायोगं योज्यम् ॥

वापि प्रियचित्तानुरञ्जनार्थं व्रीणा मृतेऽपि पलावनुराणातिशयं प्रतिपादयितुमाह—

१ विज्ञाविज्जइ जलणो गह्वइधूआइ वित्त्यअसिहो वि ।

अणुमरणघणालिङ्गेनपिअजमसुहसिजिरङ्गीए ॥ ७ ॥

[निर्वाप्यते ज्वलनो गृहपतिरुहित्रा विस्तृतशिखोऽपि ।

अनुमरणघनालिङ्गेनप्रियतमसुखसेदशीताश्रया ॥]

प्रादृष्टे पूर्वनिपातानियमातिप्रियतमघनालिङ्गेनेति योज्यम् ॥

वापि जारचित्तहरणार्थं पूर्वोक्तमिष्टाश्रया गापामाह—

जारमसाणसमुन्मवभूइसुहसंससिजिरङ्गीए ।

ण समप्पइ जेवकावालिआइ उद्धूलजारम्भो ॥ ८ ॥

[जारमसानसमुद्भवभूतिमुखस्पर्शसेदशीलाश्रयाः ।

न समाप्यते नवकापालिक्या उद्धूलजारम्भः ॥]

नवकापालिक्या गृहीताभिनवकापालिक्रमतायाः ।

सत्तारकारणसांनिध्यादेकस्मिन्नेके भावा भवन्तीति निदर्शयन्कोऽपि सहचरमाह—

१ एको पडुअइ थणो वीओ पुलएइ णहमुहालिहिओ ।

पुत्तस्स पिअअमस्स अ मग्गणिसण्णाएँ घरणीए ॥ ९ ॥

[एकः प्रसूतिं सनो द्वितीयं पुलितो भरति नखमुखाक्षितः ।

पुत्रस्य प्रियतमस्य च मध्यनिषण्णाया गृहिण्याः ॥]

जारं प्रत्यनवसरप्रकटनपरं दृष्ट्वा बचनमिदमिति केचित् ॥

ग्रामणीपुत्र्यां सामिलाव. कोऽपि ग्रहसनमाह—

एत्ताइथिअ मोहं जणेइ बालत्तणे वि वट्टन्ती ।

गामणिधूआ विसैकन्दलिव्व वट्टीअं काहिइ अणत्थम् ॥ १० ॥

१. 'विज्ञा विज्जइ' ख. २. 'लिङ्गित' ग. ३. 'विज्ञा निर्वाप्यते' ख, 'विष्माप्यते'
ग, 'निनिर्वाप्यते' घ. ४. 'लिङ्गितप्रियतमसुखसिपदश्रया...' ग. ५. 'नवकावातिशये'
ख. ६. 'पुलकति' घ. ७. 'विमलभम्ब' ग.

[एतावत्येव मोहं जनयति बालत्वेऽपि वर्तमाना ।

ग्रामणीर्दुहिता विषकन्दलीनं वर्धिता करिष्यत्यनर्थम् ॥]

प्रेतिक्रमवन्धरतेन प्रियेण प्रीयिता कापि हरेरुर्ध्वगतं चरणं नमस्यन्त्यन्यापदेशे-
नाह—

अपहुप्पन्तं महिमण्डलमिमं णहसंठिअं चिरं हरिणो ।

तारापुष्पफप्पअरब्धिअं व सइअं पअं णमह ॥ ११ ॥

[अप्रमवन्महीमण्डले नमः सस्थितं चिरं हरे ।

तारापुष्पप्रकाराश्रितमिव तृतीयं पदं नमत ॥]

अप्रमवद्वसमात् । हरिर्विष्णुः परदारापहारी च । तारानेग्रमस्य नक्षत्रं च ।

कस्याविदुःकण्ठितायां सखीभिरुक्तं सुप्यतामिति सा तास्माह—

सुप्पउं सइओ वि गओ आमोत्ति सहीओ कीस मं भणह ।

सेहालिआणं गन्धो ण देइ सोत्तु सुअह तुझे ॥ १२ ॥

[सुप्यता तृतीयोऽपि गतो याम इति सख्यं किमिति मा भणय ।

शेफालिकानां गन्धो नैव ददाति स्वसु स्वपतं यूयम् ॥]

षष्टिः, कथं तमेव निरमुकोशं स्मरसीति सख्योक्ता विरहोत्कण्ठिता तास्माह—

कइँ सो ण संभरिअइ ओ मे तह संठिआइँ अज्जाइँ ।

णिठ्यत्तिए वि सुरए णिज्झाअइ सुरअरसिओव्व ॥ १३ ॥

[कथं स न संस्मर्यते यो मम तथासंस्थितान्यद्भानि ।

निवर्तितेऽपि सुरते निष्यायति सुरतरसिक इव ॥]

निष्यायति पश्यति । तथासंस्थितानीत्यनेनानुभवैकगोचरोऽवस्थाविशेषो बोध्यते ।

कापि जादं प्रति संकेतस्थानमाह—

सुक्कलन्तवहलकइमधम्मविसूरन्तवमठपाठीणम् ।

दिट्ठं अदिट्ठउब्बं कालेण तल तहाअस्स ॥ १४ ॥

[शुष्यद्बहलवर्द्धमधर्मस्त्रिष्यमानकमठपाठीनम् ।

दृष्टमदृष्टपूर्वं कालेन तल तदागस ॥]

कर्दमान्तस्य पाठीनान्तेन कर्मधारयः । तथा च पूर्वं जलाद्याहरणार्थं शोकानां च

* १. 'श्रुता विरततेन वर्धमाना' ग. २. 'सुप्यतु' ग. ३. 'विशोध्यमान' ग
स्थित' घ.

तागतमासीत्, इदानीं तद्भावाधिष्ठित्युह विहरेति भावः । कस्यचिदतिसपन्नस्य पश्चात्
रिद्रीभूतस्यान्यापदेशेन कस्यिदनुशोचनमनया वायया करोतीति चेन्न । अहं सकेत
स्थान गता ॥ तमिति जारं प्रयुचिर्वा । अतृप्ता सुरतधान्ति कान्तमुरसाहयितुपन्न
मनस्कं करोतीति वा ॥

• कापि सपरिहास कामपि चाटुवादमाह—

चोरिअरअसद्धालुइ मा पुत्ति उभमसु अन्वआरम्भि ।

अहिमअरं लक्खिअज्जसि तमभरिए दीवमीहव्व ॥ १५ ॥

[चौरैरतथद्वासीले मा पुत्ति भ्रमान्वकारे ।

अधिकतर रक्ष्वमे तमोभूते दीपशिखेय ॥]

तमोभूते प्रदेश इति शेष ॥

सकेतस्थानवादादसती दु यितेति कारि सहचरमाह—

वाहिता पडिवअणं ण देइ रुसेइ एवमेवस्स ।

असइ कज्जेण विणा पइप्पमाने णईक्खळे ॥ १६ ॥

[व्याहता प्रतिवचन न ददाति रूप्यत्वेकैवस ।

असती कार्येण विना प्रदीप्यमाने नदीरंछे ॥]

प्रदीप्यमाने दहमाने ॥

त कुसटासीति प्रतिवेशिन्योक्ता कारि तामाह—

आम असइ ए ओमर पइव्वए ण तुह मइलिअं गोत्तम् ।

किं उण जणस्स जाअव्व चैन्दिलं ता णा कामेमो ॥ १७ ॥

[आम असत्यो वयमपसर पतिव्रते न तत्र भगिनिनं मोरम् ।

किं पुनर्जनस जायेन नापित तावन्न कामयावहे ॥]

आनेति सेष्वांशुमती । पतिव्रते इति शोचालम्भं सूचयन्म् । ताम् जायेत तस्मिन्
वैलम् । अथ भावः—भवामो वयं कुसटा, किं तुल्यमनापराधिनः । तं तु तमेव
भाषितासहेति । अथ च तव योऽयं नाम न मलिनितम्, ॥ तु कुलयेवेति ॥

वाप्यमनोऽनुज्ञावानिशय प्रणिपादयन्ती नायक्याह—

णिइं लहन्ति कदिअं मुणन्ति खल्लिअमगरं ण जम्पन्ति ।

जार्दि ण दिट्ठो मि तुभं ताओ सिअ मुइअ मुदिआओ ॥ १८ ॥

१. 'चौरिकरतप्रदालुके' श घ. २. 'चैन्दिलस्यो नापिते देशा' इति पुनरादेशः

[निद्रा लभन्ते कथितं शृण्वन्ति स्वस्तिताम्रं न जल्पन्ति ।

यामिर्न दृष्टोऽस्ति त्वं ता एव सुमगं सुखिता ॥]

य ए तु तदर्थेनाज्ञातमन्मयास्तद्विपरीता जाता इति माव ॥

इती कस्याधिदुःखानातिशयं प्रतिपादयन्ती नायकमाह—

वालजं तुमाह दिण्णं कण्णे काऊणं घोरसंघाडिम् ।

लैज्जालुत्तणीं वि बहू घरं गमां गामरच्छाए ॥ १९ ॥

[वालकं त्वया दत्तां कर्णे कृत्वा वेदरसघाटीम् ।

लैज्जालुत्तपि यधूर्गृहं गता गामरभ्यया ॥]

घोरे बदरीकल्म् । सपाटी युगल्म् । एतेनासारं यत्किंचिदपि त्वया दत्तं धात्यतीति
उक्तं निशयं सूचितं ॥

काचिन्मिषं प्रति शत्रुतमाना पचात्तापेन सखीभिवदमाह—

महं सो विलङ्घयहिअओ मए अ हन्वाएँ अगहिआणुणओ ।

परवज्जणशरीहिं सुद्धोहिं उवेविसओ णेन्तो ॥ २० ॥

[अथ स विलङ्घयद्दयो मया अमत्यया अगृहीतातुनय ।

परवाचनार्तनशीलाभिर्युष्माभिरुपेतितो निर्यन् ॥]

अपेति प्रभे । परसं वाचयुर्पेकं यत्प्रतेन कुमार्गप्रापणं मानशिक्षणरूपं तच्छरीरमभिः
निर्यन् गच्छन् । युष्माभिर्मनशिक्षावसरे मया यदाशङ्कितं तदिदं जातमित्याशयः ॥

विदग्धं कातमलभमाना कापि तस्मीमाह—

दीसन्तो णअणमुद्धो णिव्युइजणओ करेहिं वि छिवन्तो ।

अव्भत्तिओ ल लम्भइ चन्दो हव पिओ कलानिलओ ॥ २१ ॥

[हृदयमानो नयनमुखो निवृत्तिनयनं कराम्या [अपि] रष्टुम् ।

अभ्यर्पितो न लभ्यते चन्द्र इव प्रियं कलानिलम् ॥]

निवृत्तिनयनः सतापहृत् । कराम्या हस्ताभ्याम्, पक्षे करे निरणे । अभ्यर्पितः
शपितः, पक्षे अश्रितः गणनस्थितः । कलानिलं पटि, पक्षे घोरा ॥

कापि कालस्य तदर्थं प्रतिपादयन्ती आरं प्रति संकेतस्वानमत्र धारयति—

जे णालभमरभगगोलओ आसि णइअडुण्णओ ।

यातेण वलुला पिअवअस्स से यण्णुआ जाआ ॥ २२ ॥

१ 'लम्भइ' अत्र 'ल' 'वदरसंघाटिम्' अ. 'वदरसंघाटिम्' अ. २ 'लैज्जालुत्तणीं' अ. 'लैज्जालुत्तणीं' अ. ३ 'जे-तो' अ. ४ 'अपुण्णितो गच्छन्' अ. ५ 'कोरि' अ. ६ 'जे' अ. ७ 'विजयन्त' अ.

[ये नीलअमरमरमयगुच्छका आसन्नदीतटोत्सङ्गे ।

कालेन वैकुण्ठा प्रियवयस्य ते स्थाणवो जाता ॥]

स्थाणवो निष्पन्नशाखा ॥

अस्थिरमेह नायक प्रत्युद्विग्ना कापि दृढप्रेमप्रियप्राप्तीच्छाप्रकाशनच्छलेन कस्य
वकाशदानायाह—

रत्नभङ्गुरेण पेम्मेण माउआ हुम्मिअह्म एत्ताहे ।

सिबिणअणिहिंलम्भेण व दिट्ठपण्ठेण लोअम्मि ॥ २३ ॥

[क्षणमङ्गुरेण प्रेम्णा मानुष्यस्य दूना स इदानीम् ।

स्वप्ननिधिलम्भेनेव दृष्टप्रपन्थेन लोके ॥]

काव्यविरेणैव खण्डितप्रणया धूर्तं कान्तमन्यापदेशेनाह—

चावो सहावसरल विच्छिन्नवह सर गुणम्मि वि पडन्तम् ।

वङ्कस्स उज्जुअस्स अ संघन्धो किं चिरं होइ ॥ २४ ॥

[चाप स्वभावसरल विशिष्येति शरं गुणोऽपि पतन्तम् ।

वक्रस्य कज्जुकस्य च संबन्ध किं चिरं भवति ॥]

सरलो कज्जु , पक्षे निष्कपट गुणो मीर्वा । पक्षे सौन्दर्यादि । 'अथ प्रियो । १
धायो' इत्यमर ॥

कस्याधितस्तनयोऽस्मिन्व्याधोत्कर्षं साभिलाषः कोऽपि वर्णयति ।—

पदम वामनविहिणा पच्छा हु कओ विअम्ममरणेण ।

यणजुअलेण इमीम् महुमहणेण ध्व वल्लिअन्धो ॥ २५ ॥

[प्रथम वामनविधिना पश्चादखलु वृत्तो विनृम्भमाणेन ।

स्वनयुगलेनैतेत्या मधुमयनेनेव वल्लिबन्ध ॥]

वामन स्वरूप खर्ववध । वल्लिखिलितरसुरभेदवध । वययोरेभ्यः ॥

दुष्टो न केवलं साधूनामपकारमात्रं करोति, किं त्वसाधूनामुपचारमपीति कोऽपि
न्यापदेशेनाह—

माहइकुसुमाहँ कुँलुअिउण मा जाणि णिव्वुओ सिसिरो ।

काअव्वा अज्जवि णिग्गुणार्णे कुन्दार्णे वि समद्धी ॥ २६ ॥

१ 'अतोऽथ प्रियावतसस्यानका' ग. २. 'निष्कपट' घ. ३ 'गुणे वर्तमानः' ग. 'गुणे निपतन्तम्' घ. ४. 'मज्झस्स' ग. ५ 'मम्यस्य' ग. 'तस्या' घ ६ 'व
पुदिउण' क. 'इण्णकम्भेण' ग.

[मालतीकुसुमानि दग्ध्वा मा जानीहि निर्वृतः शिशिरः ।

कर्तव्याद्यापि निर्गुणाना कुन्दानामपि समृद्धिः ॥]

न केवलं तव दौर्भाग्य मया कृतं किं तु त्वत्सपत्नीना सौभाग्यमपि विधेयमित्यग्नि-
यवादिनी नायिका प्रति कुपितनायकेन ध्वनितमिति केचित् ॥

कोऽपि गलितयौवनायाः स्तनावालोक्य सपरिहासमाह—

तुङ्गाणं विसेसनिरन्तराणं [सरस]वगलद्धसोद्दणम् ।

कमकजाणं भ्रङ्गाणं च थणाणं पट्टणं वि रमणिजम् ॥ २७ ॥

[तुङ्गयोर्विशेषनिरन्तरयोः [सरस]वगलद्धशोभयोः ।

कृतकार्ययोर्भट्टयोरिव स्तनयोः पतनमपि रमणीयम् ॥]

तुङ्गयोरुन्नतयोर्मानोन्नतयोश्च । विशेषेण निरन्तरयोरन्योन्यलम्पयोः परस्परनिर्वि-
शेषयोश्च ॥

कोऽपि कस्याधियुवत्याः पीनोन्नतौ स्तनौ वर्णयति—

परिमलणसुहा गुरुभा अलद्धविवरा सलक्षणहरणा ।

थणभा कळ्वालाय ठग कस्स हिअए ण लगन्ति ॥ २८ ॥

[परिमलणसुहा गुरुभा अलद्धविवराः सलक्षणाभरणाः ।

स्तनकाः धाव्यालापा इव कस्य हृदये न लगन्ति ॥

परिमलनं मर्दनं विचारश्च । गुरुभाः पीनोन्नता अर्धगुहवाश्च । विवरं रन्ध्रं दूषणं
। लक्षणं भ्रीफलदिसाहरणं पाणिन्यादिप्रोक्तं च । आभरणं हारादिकमुपमानुप्रा-
दैकं च ॥

उपादेयोऽर्थः कदाचिदनुपादेयतां यातीति निदर्शयन्कविदाह—

सिप्पइ हारो थणमण्डलाहि तरुणीअ रमणपरिरम्भे ।

अधिअगुणा वि गुणिनो लहन्ति लहुअत्तणं काले ॥ २९ ॥

[क्षिप्यते हारः स्तनमण्डलात्तरुणीभी रमणपरिरम्भे ।

अधितगुणा अपि गुणिनो लभन्ते लघुत्वं कालेन ॥]

गुणः शून्यं शौर्योदिकं च ॥

काव्यात्मनः कस्मिन्पञ्चपुराणं मन्मथव्यपां च सूचयन्ती सतीमाह—

अण्णो को वि मुहावो मन्महसिहिणो हला हआसस्स ।

विज्झाइ णीरसाणं हिअए सरसाणं सत्ति पञ्चलइ ॥ ३० ॥

१. 'मलानानि कृत्वा' अ, 'सदृशं यमानानीव निर्वृत.' घ. २. घ-पुस्तके तुङ्गाना-
मित्यदि बहुवचनं सर्वत्र वर्तते. १. 'क्षिप्पइ' क.

[अन्यः कोऽपि स्वभावो भन्मघशिमिनो हृत्ता हताशस्य ।

निर्याति नीरमानां हृदये सरसानां शटिति प्रचलति ॥]

हृत्ता सति । हताशस्येतुष्टेयपूचम् । नीरमानामनुरागरदितानां शुरुणां
सरसानां रागिणामाद्राणां च ॥

कापि मानमद्विलासाः सहसाः गण्डितं सौभाग्यं मानुलान्दां सतिम्यदमार—

तद् तस्मै भाणपरिवड्डिअस्स चिरपणमघद्धमूलस्स ।

मांमि पडन्तस्स सुओ सहो वि ण पेम्नरक्करस्स ॥ ३१ ॥

[तथा तस्य मानपरिधितस्य चिरपणमघद्धमूलस्य ।

मानुलाने एतत्तः शुभः शब्दोऽपि न प्रेमवृक्षस्य ॥]

मानेन सत्कारेण परिधितस्य । चिरपणय एव यद्दं मूलमस्य । मनुष्यमस्य र
नुराणस्य कलविन्दया इवमुत्केरिति केचित् ॥

अपट्टीतानुनवां मनीं सखो सन्नेदमाह—

पाअपट्टिओ ण मणिओ पिअं भणन्तो वि अप्पिअं मणिओ

यचन्तो वि ण गट्ठो मग कम्प कए कओ माणो ॥ ३२ ॥

[पादपतितो न गणितः पियं मगघ्नप्यप्रियं मणितः ।

मगघ्नपि न गट्ठो मग कम्प कृते कृतो मानः ॥]

पादपतितोऽर्थात्त्रय इति दृश्यम् । पादपतनाधिक्येव मानस्य पादम् । मनुः
मेवेत्यर्थः । मगघ्न कस्य कृते कं पुमानं समन्ति तु रजसा मानस्यैनादगरः संशयि
गोपालकं सत्या वचनम् ॥

सत्त्वत्या दुषरितं मृचवन्ती कावि गोपालमभाह—

मुसइ खणं पुवइ खणं गप्पोहइ सखणं अभाणन्ती ।

मुदवइ यणरट्टे दिण्णं इहण्णं णहरयअम् ॥ ३३ ॥

[श्रोत्राणि क्षणं क्षणयन्ति क्षणं मग्गोटयन्ती तैस्सममदान्ती ।

मुग्गयण्णं खणवेदे दत्त दयितेन नगरपदम् ॥]

नायकमुक्कटयितु नाविहाया नयदीरन प्रतीतिरदन्त्या दृष्टा इवमुक्तिर्वा ॥

आमनः संकेतस्त्वन्मननं जारं प्रतीतिं धावन्ती कावि वादुर्जनमाह—

सौमार्हसे उण्णअपओहरे जोत्तणे एव बोलीने ।

पट्टमेअकामपुमुमं दीमइ पट्टिअं च घरणीए ॥ ३४ ॥

१. 'मगघ्नप्य' अ. २. 'मगघ्नप्य' अ. ३. 'मगघ्नप्य' अ. ४. 'मगघ्नप्य' अ. ५. 'मगघ्नप्य' अ. ६. 'मगघ्नप्य' अ.

[वर्षाकाले उत्ततपयोधरे यौवन इयं व्यतिक्रान्ते ।

प्रथमैककान्तकुसुमं दृश्यते पलितमिव धरण्याः ॥

उत्ततपयोधरे उत्ततमेधे । पक्षे उत्ततसने । अहं तां काशभूमिं गता त्वं तु नागत इति भावः । यद्वा न केवलं मामेव वार्धकं प्रसते पश्य धरण्या अधीमामवस्थामिति हसन्ते मित्रं प्रति जरद्वेखायाः कल्याधिदियमुक्तिः ॥

प्रवातोद्यतस्य प्रियस्य गमननिषेधाय कापि वर्षाकालं वर्णयति—

कस्य गतं रद्विस्म्यं कस्य पणट्टाओ चन्दसाराओ ।

गमणे बलाअपेन्ति कालो होरं व कट्टेइ ॥ ३५ ॥

[कुत्र गतं रद्विस्म्यं कुत्र प्रणष्टाश्चन्द्रतारकाः ।

गमने बलाकापिङ्गु कालो होरामिवाकर्षति ॥]

होरा कठिनीरेखा । अन्योऽपि ज्योतिर्विस्तूर्यादिप्रहप्रतिमाधनार्थं कठिनीरेखामा-
कर्षतीत्यर्थः । 'होरा समेऽपि राश्यधे रेखाशान्निहोरपि' इति मेदिनी ॥

सद्यङ्गं जारं नि.सङ्गं कर्तुं काचिदाह—

अविरलपतन्तणजलधाराज्जुपट्टिअं पमत्तेण ।

अपहुत्तो उरुत्तेतुं रसइ व मेहो महिं उअह ॥ ३६ ॥

[अविरलपतन्तणजलधाराज्जुपट्टितां प्रयत्नेन ।

अप्रभवमुत्तेतुं रसतीन मेघो महीं पश्यत ॥]

अविरल पतन्तलो नवजलधारा एव रज्ज्वलानिर्पट्टितां बद्धां महींमुग्धेभुमप्रभवतः—
वग्मेघो रसतीय शब्दावयव द्वय । अतिशृष्टो जलप्रचाराभावाभि.सङ्गं रमस्तेति भावः ॥

कापि क्षान्तानयनाय तस्यी त्वरयितुं हृदयोक्तम्भन्याजेनात्यपीडा भावयति—

ओ हिअअ ओहिदिअहं तइआ पडियज्जिऊण दइमरस ।

अत्येफाउल वीसम्भघाइ किं तइ समारदम् ॥ ३७ ॥

[हे हृदय अवभिदिवसं तदा प्रतिपद्य दयितस्य ।

अकलादापुल विसम्भघातिन् किं त्वया समारदम् ॥]

ओ इति दुःसामूचनपूर्वकं संजोधने । प्रतिपद्याहोहल ॥

रतप्रवृत्तभारप्रवृत्तयाः तपन्दायारिप्रवृत्तयेन प्रकाशयन्ती काचिदाह—

ओ वि ण आणइ तरस वि बहेइ भग्गाइ तेण यलआइ ।

अइउमुआ बराइ अह व पिओ से इआसाए ॥ ३८ ॥

[योऽपि न जानाति तस्यापि कथयन्ति मघानि तेन वलयानि ।

अतिश्रुतुका वराकी अथवा प्रियस्तासा हताशायाः ॥]

वलयानीत्यनन्तरं इतीति शेषः । अतिश्रुतुका अप्रकाशनीयार्थप्रकाशनाः । मघदेति मया अप्रानि वलयानीति जतोऽपि वदतीति भावः ॥

कोऽपि कस्याधिहावस्यं वर्णयन्माननधुम्यवाभिन्नावं प्रकाशयति—

सामाद् गरुजजोद्वज्जवित्सेसमरिण कवोलमूलमि ।

पिञ्ज्रह अहोमुद्देण च कण्णवमंसेण लावण्यम् ॥ ३९ ॥

[इयामाया मुहुरयोरनभिसेवगृणे कपोलमूले ।

पीयनेऽपोमुमंनेर कर्णावतंसेन लावण्यम् ॥

इयामाया उल्लसनादिकायाः । वाननभिसेवेन भूते वीर्यविते ॥

अल्लागवत्सां वाग्रमर्षेइवत्ताः कस्याधिरुत काति वलीतिशार्थमाह—

सेहल्लिभसब्बद्दी गोचग्गहणेण तम्मा मुहअरत्त ।

दुहं वट्ठाएन्ती तरमेअ घरद्दणं पत्ता ॥ ४० ॥

[स्वेदीर्क्षाश्रुतसर्वाद्दी गोचमहणेन तम् मुमगम ।

दुती प्रस्थापयन्ती (मंदितान्ती वा) तमेव गृहादनेन प्राप्ता ॥]

कापि कुमुदतारमरकारवृत्तेन एतनो दुःमहां विरहदेवतां प्रकाशयन्ती कान्तव्यमाय सतीत्यने तदिति नुमाह—

[निजपक्षारोपितदेहभारनिपुणं रसं लभमानेन ।

विकास्य पीयेत मालतीकलिका मधुकरेण ॥]

यद्वा स्वामपीड्यभेदासौ रमयिष्यतीति नववधूमाश्वासयितुं नायकस्य भववधूसंभोग-
कौशलमन्यापदेशेन प्रतिपादयन्त्या द्रव्या इत्यमुक्तिः ॥

विरमिद्विर्णिगो युवतीं सखी समाश्वासयितुमाह—

कुरुणाहो विव्रज पहिओ दूमिज्जइ माहवस्स मिलिएण ।

भीमेण जहिछिआए दाहिणवाएण छिप्पन्तो ॥ ४३ ॥

[कुरुनाथ इव पथिको दूयते माधवस्य मिलितेन ।

भीमेन येयेच्छ्रया दक्षिणवातेन ईश्वर्यमानः ॥]

कुरुनाथो दुर्योधनः । माधवस्य कृष्णस्य वैशाखस्य च । भीमेन भीमसेनेन भयान-
केन च । दक्षिणवातेन मलयानिलेन, पक्षे दक्षिणपादेन । वसन्तवातमथाद्विप्लवे-
गमिष्यति ते प्रिय इति भावः । यद्वा आसमे वसन्ते कान्तस्य प्रवासनिषेधार्थं नाभि-
दाया इत्यमुक्तिः ॥

अज्ञातदीवनेना जायया सह रममाण कापि सानुरागपरिहासमन्यापदेशेनाह—

जाव ण कोसविकासं पावइ ईसीस मालईकलिआ ।

मअरन्दपाणलोहिह भमर तावविअ मलेसि ॥ ४४ ॥

[यानघ कोपविदासं शमोतीर्वेन्मालतीकलिका ।

मकरन्दपानलोभयुक्त भ्रमर तावदेव मर्दयति ॥]

कोप दुःखलः, पक्षे दुःखलावारं वराहम् । मकरन्द सुपरसः, पक्षे रत्तिमुत्तम् ।
अपमादायः—दुर्दिदग्धः यस्त्वष्टि वस्त्वमस्तद्विष युवतिजन विहायास्थाने द्विश्यतीति ।
यद्वा—अस्यामेव दद्यामीं प्रियः सुखावहा भवन्ति तस्मान्नमर्दयन्मी भेष्यतीति सखी-
वचमेतत् ॥

कापि मन्दलेहं जारमनुकूलयितुं दुष्करलेहचर्चांमाह—

अकअण्णुअ तुज्ज कए पाउसराईसु जं भए सुण्णम् ।

उप्पेकरामि अलज्जिर अज्ज वि तं गामचिक्सिहम् ॥ ४५ ॥

[अकृतञ्च तत्र कृते प्राशुद्वात्रिषु यो मया सुण्यः ।

उत्प्रेक्ष्याम्यलज्जालील अद्यापि तं ग्रामपद्मम् ॥]

१. 'विहता' ग घ. २. 'दुम्मिज्जइ' ग. ३. 'दुर्मनहः कियसे' ग. ४. 'यह-
च्छदा' ग घ. ५. 'दक्षिणवसेनेन' ग. ६. 'एश्वर्य' ग. ७. 'मनायापि' ग. ८. 'लेमिठ'
ग 'उत्त' घ. ९. 'उत्प्रेक्षे' ग-घ.

उपेक्षामीलसोत्प्रेक्षे भ्रमामीति वार्थ । त्वनिमित्त मया बहुतरं दुःखमनुभूत
किमेति मा प्रायुदासीनोऽसीति भाव ॥

रिपरीतरते मुग्धवधूप्रोचनार्थं नागरीक कस्याधितुस्यायित वणंपति—

रेहइ गलन्तरेसखलन्तरुण्डलललन्तहारलमा ।

अदुप्पइआ विजाहरि वय पुरुसाइरी वाला ॥ ४६ ॥ .

[राजते गलत्वे शस्मलत्पुण्डलललद्वारलता ।

अघोत्पत्तिना विद्याधरीव पुरुषायिता वाला ॥]

‘उदुप्पइआ’ इति पाठे ऊर्ध्वोत्पत्तिरेत्यर्थं ॥

आरमाराम निरनिशयानन्दनिधिममि भक्तामुपहास्य गृहीतलीलाविमर्दं लम्बितज्वार-
भावं धीकृष्ण सौभाग्यगर्विता वधूवी काचिदाह—

जइ भमसि भमसु एमेअ कह सोहग्गगठिवरो गोठे ।

महिलाणं दोसगुणे विचारअइउं जइ रमो सि ॥ ४७ ॥

[यदि भ्रमसि भ्रम एवमेव कृष्ण सौभाग्यगर्विनो गोष्ठे ।

महिलानां दोषैर्गुणौ विचारयितु यदि श्रमोऽग्नि ॥]

मत्तारो वनमा दुर्लभा त्वयेति भाव ॥

मानिन्या सखी लक्षान्तमनुनयपरास्मरामन्यापदेशेनाह—

संज्ञासमए जलपूरिअञ्जलिं विहडिअवचामअरम् ।

गोरीअ कोसपाणुज्जम य पमहादिय णमह ॥ ४८ ॥

[सप्याममये जलपूरिताञ्जलिं विपटितेवचामवरम् ।

गौर्यै कोषपानोद्यनमिष प्रमथाधिप नमत ॥]

विपटितोऽर्धाद्रीयां एको वान करो यम्य । जानक्यन्तरराहाया गौर्यां प्रगापि
कोषपानादय दिव्य संमुखि करोतीति स्वपारीयमवश्यमनुयेति भाव ॥

कापि सौभाग्यस्योपादेयतां प्रतिपादयन्ती सखीमह—

गामणिणो सख्यासु वि पिआसु अणुमग्गणाहिअवेमासु ।

मम्मच्छेण्णु वि चएहाइ उपरी चउइ दिट्ठी ॥ ४९ ॥

[मौमण्या सर्वास्वनि प्रियामनुमरणगृहीतरेषामु ।

मर्मच्छेदेध्वनि यत्तमाया उपरि यच्छे दृष्टि ॥]

१ ‘पुरापित्तोत्थ’ य २ ‘विचररगमो अउइ वि ण होति’ य. ‘विचारिउ’
म. ३ ‘एवमेव’ य. ४ ‘दोसगुणविचारसज्जोऽपारिअ भवति’ य. ‘दोसगुणे’ विचार-
विशुद्धयति न श्रमोऽग्नि’ य. ५ ‘माममुग्धत्व’ य.

यदायं गणदशमापन्नोऽपि सुभगमेव पश्यति युष्मास्वद्यापि विरक्तः तस्मादनु-
 रणात्प्रवर्तध्वं कुरुध्वं च जारमित्यभिप्रायेण कुट्टन्या इयमुक्तिरिति ध्येयम् ॥
 वयमेवं प्रियवादिनमपि कान्तमवधीरयसीति वदन्ती मातुलानी काचिदाह—

मामि सरसक्कराणं वि अत्थि विमेसो पयम्पिअन्वाणम् ।

प्रेहमइजाणं अण्णो अण्णो उवरोहमइआणम् ॥ ५० ॥

[मातुलानि सदृशाक्षराणामप्यस्ति विशेषः प्रजल्पितव्यानाम् ।

प्रेहमयानामन्योऽन्य उपरोधमयानाम् ॥]

* प्रजल्पितव्यानां वचनानाम् । जेहं विनापि शठः परान्वययितुं मधुरं भाषते । तथा-
 यनुभवसाक्षिकः स्वरविशेष एव भेदक इति भावः । 'मामि' इति स्थाने 'मुहम' इति
 वित्पाठः । 'सुभग' इत्यर्थः । तत्र कथं मामवधीरयसीति वदन्त नायकः प्रति नायिकाय ।
 इयमुक्तियोज्या ॥

अन्यासक्त दाक्षिण्यात्प्रियवादिनं नायकं कापि सरोपमाह—

हिअआहिन्तो पसरन्ति जाहँ अण्णाहँ ताहँ वअणाहँ ।

ओसरमु किं इमेहि अहरुत्तरमेत्तमणिएहि ॥ ५१ ॥

[हृदयेभ्यः प्रसरन्ति यावन्त्यानि तानि वचनानि ।

अपसर विमेभिरधरोत्तरमानमणितैः ॥]

अपरेति मुखमात्रप्रवृत्तैर्न तु हृदयप्रवृत्तैरित्यर्थः ॥

गोत्रस्थलितं कान्त धीरा नायिका सदैवगन्धमाह—

कहँ सा सोहग्गुणं मए संमं वहइ णिणिघण तुमम्मि ।

जीअ हरिज्जइ गोत्तं हरिऊण अ दिज्जए मग्ग ॥ ५२ ॥

[कथं सा सौभाग्यगुणं मया समं वहति निर्घृण स्वयि ।

यस्य हियते नाम इत्या च दीयते ममम् ॥]

विराजनितात्मनः काश्यमत्र नदी कापि प्रीतिभर्तृका तल्लीलाह—

सहि साहसु सत्त्वावेण पुन्निठमो किं अत्तेसमहिलाणम् ।

वहुन्ति करठिआ त्विअ बलआ दइए पैउट्टम्मि ॥ ५३ ॥

[सखि वयस्य सद्भावेन वृच्छाम् निमग्नमहिलानाम् ।

वर्धन्ते वरसिता एव बलया दयिते प्रीयिते ॥]

'बलयोऽन्नियम्' इत्यमरः ॥

१. 'मुहम' रा-ग. २. 'मुग्ग' ग-घ. ३. 'हृदयस्यापि' ग. ४. 'समं' ख-
 'पउट्टे' घ. ५. 'करत्ता.' ग.

दुर्गन्तं रोगिणं वा पतिं लक्ष्मिच्छन्तीं परपुण्याभिमुखीं निषेदुं कान्दिद्व्यापदेहेनाह—

भमइ पलित्तइ जुरइ उक्खियविउं से करं पसारइ ।

करिणो पङ्ककखुत्तस्स णेहणिअलाइआ करिणी ॥ ५४ ॥

[अमति पेरितं खिद्यते उत्थेसु तैस कर प्रसारयति ।

करिण पेङ्कनिमग्रस्य सेहनिगदिता करिणी ॥]

हानि सत्याः शिखार्थं पार्वत्याः सन्ध्यामपि स्नेहाभिव्यक्तिवैराग्यं दर्शयति—

रइकेलिहिअणिअंसणकरकिसलअरुद्धणअणजुअलस्स ।

रुहस तइअणअणं पन्वइपरिउम्भियं जअइ ॥ ५५ ॥

[रतिवेलिहृतनिवसनकरकिसलयरुद्धनयनपुगलस्य ।

रुद्रस्य तृतीयनयनं पार्वतीपरिचुम्बितं जयति ॥]

ताडनाभिलाषाकृतकलितं हलिकस्य कस्यापिदुःसायं सूचयनापरिकलमाह—

धावइ पुरओ पासेसु ममइ दिट्ठीपहम्मि संठाइ ।

णवलइकरस्स तुह हलिअउच्च दे पहरसु वराइम् ॥ ५६ ॥

[धावति पुरतः पार्श्वयोर्भ्रमति दृष्टिपथे सतिष्ठते ।

नवलतिकाकरस्य तव हलिकपुत्र हे प्रहरसु वराकीम् ॥]

हेगन्धः स्वोदधे । यद्वा नवलताकुत्र सकेतस्थानं त्वं गतो न त्विवमिति कृतापराधानेना प्रहरेति सोपहासं कुटनीववनमिदम् ॥

कृत्रिम सर्वमुपहासास्पदं भवतीति निदर्शयन्कथितस्य वैदग्ध्यव्यापनाय सहचरमाह—

कारिममाणन्दवडं भामिज्जन्तं यहूअ संहिआहिं ।

पेच्छइ कुमारिजारो हासुम्मिस्सेहिं अच्छीहिं ॥ ५७ ॥

[कृत्रिममाणन्दपट आभ्यगाजं बन्धा सखीभिः ।

प्रेक्षते कुमारीजारो हासोन्मिश्राभ्यामस्मिभ्याम् ॥]

१. 'मिअरीकिआ' ग. २. 'परितप्ता' ग. 'प्रलम्बवर्ते' घ. ३. 'क्षिद्यति' घ. ४. 'अस्य' ग. ५. 'पङ्कनिघातस्य' ग. ६. 'सेहे निरुणीकृता' ग. 'सेहनिगदिता' घ. ७. 'णवलः आह तूह' ख. ८. 'पार्श्वे' घ. ९. 'नवलताकरस्य तव' ग. 'नवलतिका तव' घ. १०. 'वन्दूहि' क. ग.

आनन्दपटः प्रथमपुष्पवतीवस्त्रम् । प्रथमरजोदर्शने जाते तद्वस्त्रं बन्धुभिलोक्येपु प्रद-
स्येत इति देशविशेषे आचारः । चारसंबन्धवदृष्टोपिताया अस्थानं संभ्रमदर्शनेन जा-
रस्य हास इति बोध्यम् ॥

शिशिरसमये अधरे मधूच्छिष्टं लापवन्ती तरुणी वीक्ष्य कोऽप्यारमनो वैदग्ध्य-
स्थापनायाह—

सजिअं सजिअं ललिअंझुलीअ मअणवडलाअणमिसेण ।

यन्धेइ धवलवणवट्टअं य वणिआहरे तरुणी ॥ ५८ ॥

[शनकैः शनकेल्लिताहुल्या मदनपटलापनमिषेण ।

बधाति धवलवणपट्टमिव व्रणिताधरे तरुणी ॥]

कापि कुलवधूत्तं विधयितुं सखीमाह—

रहविरमलज्जिआओ अप्पत्तिअंसणाओ संहस व्व ।

ढक्कन्ति पिअअमालिङ्गणेण जहणं कुलवहुओ ॥ ५९ ॥

[रतिविरामलज्जिता अप्राप्तनिवसनाः संहसैव ।

आच्छादयन्ति प्रियतमालिङ्गनेन जघनं कुलबन्धुः ॥]

कापि कस्याबिन्तमीभाग्यमन्यापदेशेनाह—

पाअट्ठिअं सोहग्गं तम्वाए उअह गोठुमज्झम्मि ।

दुट्ठवसहरस्स सिङ्गे अक्खिडडं कण्डुअन्तीए ॥ ६० ॥

[प्रकटित सौभाग्यं गता पश्यत गोष्ठमध्ये ।

दुष्टवृषभस्य शङ्गे अक्षिपुटं कैङ्कर्यन्त्या ॥]

तस्या गौः ॥

चारप्रलोभनाय वृत्ती कस्याधिदत्तत्पदतामाह—

उह संभमविकिखत्तं रमिअव्वअलेह्लायं असइए ।

णवरङ्गअं कुड्ढे धअं य दिण्णं अविणअस्स ॥ ६१ ॥

[पश्य संभ्रमविक्षिप्तं रत्नज्वलम्बटया असत्या ।

नवरङ्गकं कुण्डो ध्वजमिव दत्तमविनयस ॥]

१. 'अहुलीदि' ग. २. 'वणिअहारा' ख. ३. 'वहिकामिव' घ. ४. 'वणिताधरा'
ख-घ. ५. 'जिअंसणा हसन्तीओ' क. ६. 'सहसति' ख-ग. ७. 'सहसेति' ग घ.
८. 'पश्यत' क-ख पुस्तकयोर्नास्ति. ९. 'कण्ड्यमानया' ग-घ. १०. 'रतिरहल्लि-
ङ्गया' ग, 'रतिरहलेह्लया' घ. ११. 'निकुण्डे' ग.

सुखानमिवादौ चतुर्थ्यर्थे षष्ठी । पादपतनादिभ्यः सुखेभ्यो भटासीत्यर्थः । दर्शनमात्रेण प्रसङ्गे इति मुग्धाविशेषणम् । 'रमसो वेगद्वययो' इति कोपः ॥

प्रणयकुपितां कान्तां कोऽपि प्रसादयितुमाह—

दे सुअणु पसिअ एहिं पुणो वि मुलहाई रुसिअव्वाइ ।

'एसा मअच्छि मअलञ्छणुज्जला गलइ छणराई ॥ ६६ ॥

[हे सुतनु प्रसन्नेदानीं पुनरपि सुखमानि रोषितव्यानि ।

एषा मृगाति मृगग्रन्थनोज्ज्वला गलति क्षणरात्रि ॥]

रोषितव्यानि रोषा । क्षणरात्रिरुत्तरात्रि । 'दे सुदअ' इति पाठे 'हे सुभा' इत्यर्थः । तत्रान्योन्यपृथीतमानौ प्रति द्वतीयचनत्वेन व्याख्येयम् ॥

कामार्तायास्तस्याः प्रतीकारं कर्तुं त्वमेव राक्ष इत्यन्यापदेशेन दूरी कमप्याह—

आवण्णाई छुलाई दो विअ जाणन्ति उण्णइ जेउम् ।

गोरीअ हिअअदेइओ अहवा सालाहणपरिन्दो ॥ ६७ ॥

[आपन्नानि कुलानि द्वायेव जानीत उन्नतिं नेतुम् ।

गौर्या हृदयदयितोऽथवा शालिग्रामनरेभ्यः ॥]

आपन्नायापदं प्राप्तानि । पक्षे ७. अपर्णाणि । अपर्णां पार्वती तत्सम्बन्धीनि ॥

विरमशीलकुलिनानि रामामासकं कथ्यन्त्यापदेशेन निवर्तयितुं काचिदाह—

गिक्कण्ड दुरारोहं पुत्तअ भा पाडळिं समारुइसु ।

आरुडणिबडिआ के इमीअ ण कआ हआसाए ॥ ६८ ॥

[निष्काण्डदुरारोहा पुत्रक मा पाटलिं सैमारोह ।

आरुडनिरतिता के अनया न कृता हताशया ॥]

काण्ड स्फण्डोऽवतराद्यः । तच्छून्यवाहुतरोहो दुराक्रमणीया प्रत्यययहेतुसगमा च ॥

मामणीवनितासक्तो देवसो निवार्यतानित्यभिप्रायेण काव्यव्यपदेशेन श्रद्धमाह—

गामणिघरम्मि अत्ता एक विअ पाडला इह गगामे ।

बहुपाडळं च सीसं द्विअरस्स ण सुन्दर एअम् ॥ ६९ ॥

[मामणिगृहे श्वश्रु एकैव पाटला इह आमे ।

बहुपाटलं च शीर्षं देवरस्य न सुन्दरमेतत् ॥]

बहूनि पाटलानि पाटत्रिपुष्पाणि यस्मिंस्तत् ॥

भुजंगप्रलोभनाय दूती कस्याधि कृतास्तैक्ष्ण्य वर्णयति—

अण्णाणं वि होन्ति मुहं पम्हलधवल्लोहं दीहकसणाहं ।

णअणाहं सुन्दरीण वह वि हु दट्ट ण जाणन्ति ॥ ७० ॥

[अन्यातामपि मरन्ति मुखे पद्मलधवल्लानि दीर्घतृष्णानि ।

नयनानि सुन्दरीणा तथापि खलु द्रष्टु न जानन्ति ॥]

सहजा अपि गुणा भूविद्यासादि वेदगन्ध विना न शोभन्त इति भावः ॥

दण्डयात्रोद्यतस्य राह्य प्रतिपेधाय राजकुलतिव्याज्जेन वर्षागत राहो वर्णयति—

हमेहिं ष तुह रणजलअसमअमअचलिअनिहलवक्खेहिं ।

परिसेसिअपोम्मासेहिं माणसं गम्मइ रिज्जहिं ॥ ७१ ॥

[हंसरिव तव रणजलदसमयमयचलितविह्वलपक्षैः ।

परिशेषितपद्माशैर्मानसं गम्यते रिपुमि ॥]

हे राजन्, तव रिपुभिर्मानसं मनः । तवैत्यर्थात् । गम्यतेऽनुवर्त्यते । त्वत्सेवया स्थाप्यत इति यावत् । हंसपक्षे मानसं सरोविशेषः । गम्यते प्राप्यते । कीदृशी । रण एव जलदसमय तद्भयाचलिता पलायिता अत एव विह्वला पक्षा सहया येवा तैः । हंसपक्षे—रणन्त शब्दायमाना ये जलदालङ्घयाचलिता कम्पिता पक्षादुदा येवाम् । पुन कीदृशी । परिशेषिता स्वका पद्माया लक्ष्या । पक्षे—पद्माना कमलानामाशा वै ।

अनायाससाधमेव प्रार्थनीयमिति सद्यो शिक्षयितुं काचिदाह—

दुग्गअचरम्मि घरिणी रक्खन्ती आउल्लसणं पट्ठो ।

पुण्णिअदोहलसद्धा पुणो वि उअअ विअ कहेइ ॥ ७२ ॥

[दुर्गतगृहे गृहिणी रक्षन्ती आकुलत्वं पत्युः ।

पृष्ठदोहदधद्धा पुनरप्युदकमेव कथयति ॥]

दुर्लभवस्तुप्रार्थनायामद्यो व्याकुलो भविष्यतीति बुद्ध्या उदकमेव प्रार्थयत् इत्यर्थः ॥

ज्ञाता एव युक्तो ग्रीष्मे रमयतीति वर्णयन्कोऽपि वयसमाह—

आअम्मरलोअण्णाणं ओल्लंसुअपाअडोरुजहणाणम् ।

अवरद्धमज्जिरीण कए ण कामो वैहइ चावम् ॥ ७३ ॥

[आताम्रलोचनानामार्द्रांशुकप्रकटोरुजघनानाम् ।

अपरद्धमैज्जनशीलानां कृते न कामो बहति चापम् ॥]

आर्द्रांशुकेन प्रकटमूरु जघन यासामिल्यर्थः । ईदृगवस्थान युवतीनां रक्षणार्थमेव कामश्चाप बहति । अन्यथा निरर्थकत्वात्त्यक्तमेव स्यादिति भावः ॥

कोऽपि वेद्यास्त्रीणां सकलव्यामोहकतां प्रतिपादयितुमाह—

के उच्चरिआ के इह ण खण्डिआ के ण लुत्तगुरुविहवा ।

णह्माइ वेसिणिओ गणनारेखा उव वहन्ति ॥ ७४ ॥

[के उर्वरिता के इह न खण्डिता के न लुत्तगुरुविहवा ।

नखराणि वेद्या गणनारेखा इव वहन्ति ॥]

के उर्वरिता वेद्याभिरनाहृष्टा । के न खण्डिता । केषां प्रतखण्डनं न कृतमित्यर्थः ।
खराणि मयक्षतानि । 'नखरोऽश्वियाम्' इत्यमरः । यद्वा—णह्माइ नखराणिम् । नख-
तरङ्गिमिति यावत् । कामुन्दतनखक्षतपङ्क्तिव्यानेन के उर्वरिता इत्यादि गणनारेखा
हृत्तीत्यर्थः ॥

प्रभासादागत कात्त प्रति विरहदुःख निवेदयितुं कापि सर्वदग्ध्यमाह—

विरहेण मन्दरेण व ह्रिअअ दुद्धोअहिं व महिऊण ।

उम्मूलिआहँ अम्हो अम्ह रअणाहँ व सुहाइ ॥ ७५ ॥

[विरहेण मन्दरेणैव हृदयं दुग्धोदधिमिव मथित्वा ।

उम्मूलितानि कैष्टमस्माकं रक्षानीनं मुखानि ॥]

उम्मूलितानि दरीटतानि । अम्हो इति वक्ष्यस्वकमव्ययम् । 'अम्हो सुबुद्धिदु-
खो' इति वैशीरोपः । सद्भिरहँ दुःखमेव केवलं मया अनुभूतमतः परं मा विहाय न ग-
न्त्वमिति भावः ॥

पयु प्रियमेव सद्यदा कृतव्यमिति वदन्तीं सखीं कापि वयुर्बदग्न्यमीर्ष्यां च
सौद्रेणमाह—

उज्जुभरणे ण तूसइ यक्कम्मिदि आअम विअप्पेइ ।

एत्थ अह्वारणं मए पिए पिअ कहुँ णु काअठरम् ॥ ७६ ॥

[ननुवरते न तुष्यति यकेऽप्यागमं विकल्पयति ।

अन्नाभ्यया मया प्रिये प्रियं कथं नु कर्तव्यम् ॥]

ननुके हावभावदिरहिते । यक्क हावभावमणितसी कृतद-तक्षतनखक्षतचुम्बनासन
विशेषादियुक्ते । कुतोऽनया शिक्षितमित्यागमं विकल्पयति । 'आगम' इत्यस्य स्थाने
आशय' इति वचित्पाठः ॥

रतिकौशलदर्शनेनान्यथाभावशङ्कितं काचिदाह—

वहुविहविलासरसिए मुरए महिलारणं को उवज्झाओ ।

सिक्खइ असिक्खिआहँ वि सव्वो जेहाणुवन्धेण ॥ ७७ ॥

१ 'वेक्षिन्यो गणनारेखा उपबहन्ति' घ २ 'अहो ग घ' ३ 'आशय घ'.

[यद्विषयविलाससिक्ते सुरते महिलानां क उपाध्यायः ।

शिक्ष्यते अशिक्षितान्यपि सर्वः स्नेहानुबन्धेन ॥]

नायकसौन्दर्यं प्रकटयन्ती दूती नायिका प्ररोचयितुमाह—

यैष्णवसि ए विअत्थसि सच्चं विअ सो तुए ण संभविओ ।

ण हु होन्ति तस्मि दिट्ठे सुत्थावत्थाई अक्काई ॥ ७८ ॥

[वैष्णवशिते विकरयसे सत्यमेव स एव न संभावितः ।

न खलु भवन्ति तस्मिन्दृष्टे स्वस्थावस्थान्वद्गानि ॥]

वर्णो गुणधरणेन तेन वशीकृते इति संबोधनम् । 'वर्णो द्विजादिशुद्धादियशोगुणकथयितु' इति मेदिनी । विकरयसे मया दृष्ट इत्यात्मस्थाया ऊरुरे । न संभावितो न दृष्टः अत्र हेतुमाह—न खल्विति । स्वस्थावस्थानि न भवन्ति, किं तु स्वेदकम्परोमाद्यनृश्मश्रुभङ्गमोशयितादिभाषावृत्तानि भवन्तीत्यर्थः ॥

अभिनवविषयालरक्तं. पूर्वातन्भूतमवधोरयसीति निदर्शयन्त्येऽपि वचनमाह—

आसण्णविआहदिंणे अहिणववहुसंगमस्सुअमणस्स ।

पढमपरिणीअ सुरअ वरस्स हिअए ण संठाइ ॥ ७९ ॥

[आसन्नविवाहदिने अभिनववधूसंगमोलुक्कमनसः ।

प्रथमगृहिण्या. सुरतं परस्व हृदये न सतिष्ठते ॥]

अतिमदनाकान्तहृदयः कोऽपि दोष जानमपि रागीतरण्यप्रेयस्या सहचरीमाह—

जइ लोकणिन्दिअं जइ अमहलं जइ विमुक्कमज्जाअम् ।

पुप्फवइदंसणं तंहवि देई हिअअस्स णिब्बाणम् ॥ ८० ॥

[यदि लोचनिन्दितं ययमहलं यदि विमुक्कमयादम् ।

पुष्पवतीदर्शनं तेषां ददाति हृदयस्य निर्माणम् ॥]

निर्वाणं सुतम् ॥

पुष्पवतीसंतादुद्विजमान कान्त कापि सविनयोपात्मनाह—

जइ ण छिवसि पुप्फवइं पुरओ वा कीस वारिओ ठासि ।

छित्तोसि चुलचुलन्तेहिं धाविउण अम्ह इत्थेहिं ॥ ८१ ॥

१. 'रमिते' ग. २. 'एणरतिए' ग. ३. 'सचरिओ' ग. ४. 'अरप्परलिके' ग.
५. 'सचरित.' ग. ६. 'स्वस्थान्वद्गानि' ग. ७. 'दिसेसु णव' ग. ८. 'दिनेसु नव' ग.
९. 'दह सहवि देइ हिअअग्नि' ग. १०. 'तव तयापि ददाति हृदये' ग. 'तव तयापि
मम ददाति हृदये—'घ.

[यदि न स्पृशसि पुष्पवतीं पुरतस्तत्किमिति वारितस्तिष्ठसि । '

स्पृशेऽसि चुलचुलायमानैर्घावित्वास्माकं हस्तैः ॥]

चुलचुलेत्यनुकरणमुत्पन्नातिशयसूचकम् । कण्ठ्यमानैरित्यर्थः ॥

नायिकाया विप्रलम्भावस्थाकथनेन नायकापरार्थं प्रकटयन्ती दूती नायकमाह—

उज्जागरकसाद्रअगुरुअच्छी मोहमण्डणविलक्खा ।

लज्जइ लज्जालुइणी सा सुहअ सहीहिं वि बराई ॥ ८२ ॥

[उज्जागरककपायितगुरुकाक्षी मोघमण्डनविलक्षा ।

लज्जते लज्जाशीत्य सा सुमग सेखीम्योऽपि बराकी ॥]

उज्जागरेण कपायिते गुरुके अक्षिणी बस्याः । मोघेन तिरर्थेनेन मण्डनेन विलक्षा ॥

गर्भमरेण ह्राम्यन्ती सखी सखी तपरिहासमाह—

ण वि सह अइगरुएण वि तन्मइ हिअए भरेण गब्भस्स ।

जह विपरीअणिहुअणं पिअम्मि सोह्वा अपावन्ती ॥ ८३ ॥

[नैपि तथातिगुरुकेणापि ताम्यसि हृदये भरेण गर्भस्य ।

यथा विपरीतनिर्धुवनं 'प्रिये स्नुषा अप्राप्नुवती ॥]

गर्भिणीपीवरादीनां विपरीतगुरतल निषिद्धत्वादिति भावः ॥

नायिकानुरागप्रकाशनेन दूती नायकमुत्पन्नायितुमाह—

अगणिअजणाववाअं अवहत्थिअगुरुअणं बराईए ।

सुह गलिअदंसणाए तीए वलिउण चिरं रुण्णम् ॥ ८४ ॥

[अगणितजनपवादमपहस्तितगुरुजनं बराक्या ।

तय गलितदर्शनया तथा वैलित्या चिर रुदितम् ॥]

बादान्त जनान्तं च क्रियाविशेषणम् ॥

प्रोषितपतिका, तत्सखी वा लेखमुखेन नायकमाह—

हिअअं हिअए णिदिअं चित्तालिहिअ व्य सुह सुहे दिट्ठी ।

आलिङ्गणरहिआइं णवरं खिजन्ति अङ्गाइं ॥ ८५ ॥

१. 'लज्जावती' घ. २. 'सखीनां' घ. ३. 'नैव' ग. ४. 'पुरत' क-ख. ५. 'प्रियमपि' ग. ६. 'दर्शनाशया' क-ख. ७. 'चलित्वा' घ. ८. 'उद्दिमाह' ग.

[हृदयं हृदये निहित विभालिखितेव तव मुखे दृष्टिः ।

आलिङ्गनरहितानि केवलं क्षीयन्तेऽङ्गानि ॥]

‘आलिङ्गनदुहिमाह’ इति पाठे आलिङ्गनं विना दुःखितानीत्यर्थः ॥

काचिदतिविरहदुःखिता मुक्ता सखीमाह—

अहञ्चं विओअतणुई दुसहो विरहाणलो चलं जीअम् ।

अप्पाहिजउ किं सदि जाणसि तं चेव जं जुअम् ॥ ८६ ॥

[अहं नियोगतन्वी दु सहो विरहानलचलं जीअम् ।

अभिधीयतां किं सखि जानासि तमेव ययुक्ताम् ॥]

प्रियानयनमेव मुक्तमिति भावः ॥

कलहान्तरिताया नायिकाया विरहदुःखं प्रतिपादयन्ती दूरी नायकमाह—

दुह विरहुज्जागरओ सिधिणे वि ण देह दंसणमुहाई ।

याहेण जहालोअणविणोअणं से हञ्चं तं पि ॥ ८७ ॥

[तत्र विरहोजागरवः स्वप्नेऽपि न ददाति दर्शनमुखानि ।

स्वाप्नेष यदोलोकनविनोदनं तस्मा हतं तदपि ॥]

अनुरक्त कान्तं कापि सोपालम्भमाह—

अण्णावराहकुविओ जहतह कालेण गम्मइ पसाअम् ।

वेसत्तणावराहे कुविअं कहँ तं पसाइस्सम् ॥ ८८ ॥

[अन्यापराधकुपितो यथातथा कालेन गच्छति प्रसादम् ।

द्वेष्यत्वापराधे कुपितं कथं तं प्रसादयिष्यामि ॥]

अस्य आह्लात्तण्ड्यादिरूपे सोऽपराधस्तेन कुपितः । द्वेष्यत्वं सहायिहो द्वेषस्तद्
वेऽपराधे ॥

अहृदयप्रचारिणं प्रियवादिनं नायकं कापि सोपालम्भमाह—

दीससि पिआणि जम्पसि सत्त्मावो सुहअ एत्तिअ न्वेअ ।

फालेइऊण हिअअं साहसु को दावए कस्स ॥ ८९ ॥

१. ‘दु खितानि’ ग-घ. २. ‘सदिश्यता’ ग, ‘आदिश्यता’ घ. ३. ‘विरहे जागरण’
ग. ४. ‘अमलोज्ज्वल’ क-ख. ५. ‘अभिप्रास्यह्वयं तत्’ ग. ६. ‘गम्यते’ घ. ७. ‘प्रसाद-
विधे’ ग-घ. ८. ‘अणसि’ क-ख.

[दृश्यसे प्रियाणि जल्पसि सद्भावः सुमम एतावानेव ।

यौटयित्वा हृदयं केनय को दर्शयति कस्य ॥]

वकावतिवचनादिकमतिमधुरम्, हृदय ॥ कालकूटघटितमिवेति भावः ॥

काव्यस्थिरश्रेहं पनिमुपालब्धुमन्यापदेशोनाह—

उज्ज्वलं लहिष्ठण सत्तापिआणणा होन्ति के वि सविसेसम् ।

रित्ता गमन्ति सुहरं रहट्टघडिअ एव कापुरिसा ॥ ९० ॥

[उदकं लब्ध्वा उत्तानितानना भवन्ति केऽपि सविशेषम् ।

रित्ता गमन्ति सुचिरं रहट्ट(अरघट्ट)घटिका इव कापुराणाः ॥]

रश्मौ घटीयन्त्रं तत्संयन्धिनः भुश घटा इव । उक्तं च—‘जीवन्मरणे नमा गृहीत्वा
उपगतताः । किं कनिष्ठाः किमु ज्येष्ठा घटीयन्त्रस्य दुर्जनाः ॥’ इति ॥

सुधामधुरमयूखमण्डलीधवलिते दिङ्मुखे प्रियसंगममलभमानान्वहारभिसारिका
मोदिते स्वगतमाह—

भगपिअसंगमे केत्तिअं व जोह्वाजलं गहसरम्मि ।

चैन्वअरपणालणिअसरनिवहपडन्तं न णिट्ठाह ॥ ९१ ॥

[मधुप्रियसंगमे कियदिय ज्योत्स्नाजलं नमःसरति ।

चन्द्रकलपणालनिर्गन्निवहपटर्ज निसिष्ठति ॥]

मम प्रियसंगमो येन तद् । तथा चन्द्रकला एव प्रणालनिर्गन्निवहास्तेभ्यः पतन
नि शेष तिष्ठति । न समाप्नोतीत्यर्थः ॥

नापिकादुरागं सूक्ष्मगती दृष्टी नामकमाह—

सुन्दरजुआणजणसंहुले वि तुह दंसर्ण विमग्गन्ती ।

रण एव भमइ दिट्ठी बराइआए समुच्चिग्गा ॥ ९२ ॥

[सुन्दरयुवजनसंकुलेऽपि तव दर्शने विमौर्गयन्ती ।

अरण्य इव भ्रमति दृष्टिर्वरुणिवायाः समुद्रिभा ॥]

मपारण्ये शून्यप्रदेशे कमपि न पश्यति तथा त्वद्गतचित्ता सतोऽपि बहुन्यूनो न प-
श्यति किं तु स्वामेवोद्गीर्यत इति भावः । ‘अनुचिन्ता’ इति शब्दे त्वदर्शनहीनुत्वाद्-
गणितसेवेत्यर्थः ॥

१. ‘मणसि’ घ. २. ‘वालयित्वा’ घ. ३. ‘निमहदयं’ ग. ४. ‘यंग’ घ. ५. ‘कस्य
दर्शयति’ व. ग. ६. ‘कूटघटिका’ घ. ७. ‘पतन्तं’ ग. घ. ८. ‘न निर्वसि’ ग,
‘न तिष्ठति’ घ. ९. ‘वहते’ ग. १०. ‘विमौर्गयन्ती’ ग.

प्रोषितपतिव्याया विरहावस्था सखी सरस्वन्तसमीपगामिना पथिकमाह—

अङ्कोरणा वि सासू रुआविआ गजवईअ सोह्णाए ।

पाअपडणोण्णआए दोसु वि गलिणसु वलणसु ॥ ९३ ॥

[अतिकोपनापि अश्रू रोदिता गतपतिव्याया स्तुपया ।

पादपतनावनतया द्वयोरपि गलितयोर्नलययो ॥]

द्वयोर्मुपद्रवविधृतयो । वलययोरिति सतिसप्तमी । एवमिय मत्पुनरुक्ते कृशा जाता येनानया मत्पादवन्दनावनतया वलयपातोऽपि न ज्ञात इत्याशेष्य निष्टुगपि क्षधूरो दीदिति भ व ॥

प्रयासोद्यतस्य कांतस्य गमननिषेधाय प्रीत्यातरस्य तु सहस्र कापि वणयति—

रोषन्ति व्व अरण्णे दूसहरइकिरणफससतत्ता ।

अइतारसिल्लिविरुएहिं पाअवा गिन्हमग्गद्धे ॥ ९४ ॥

[रुदन्तीनारण्ये तु सहस्रविकिरणस्पर्शसतता ।

अतितारसिल्लीविरुते पादपा प्रीष्ममप्याहे ॥]

द्विती 'सौगुर' इति वाच्यकुञ्जभाषया प्रसिद्ध कीटनिषेध । अचेतनात् पादपाना मपीयमवस्था किं पुनश्चेतनामामिति भाव । यद्वा संकेतबनोपगत लोकागम शङ्भान कात प्रत्यभिसारिकाया इयमुक्ति । नाय अनवरणसवरणवलिपप्रचक्षति, किंतु त्रिग्री ध्वनिरिति नि शङ्ख रमस्वेति भाव ॥

संकेतितसरस्तीरमह गता, एव तु न गत, इति आर भावयन्ती कापि कमलवनवण नच्छलेन सखीमाह—

पडमणिलीणमधुरमधुलोहलालिउलवद्धक्षकारम् ।

अहिमभरकिरणणिउरम्भचुम्भिअ दलइ कमलवणम् ॥ ९५ ॥

[प्रथमनिलीनमधुरमधुलुब्धालिकुलवद्धक्षकारम् ।

अहिमभरकिरणनिकुलम्भचुम्भित दलति कमलवनम् ॥]

प्रथमनिलीनेन मधुरमधुलुब्धेनातिक्रमेन यद्धो क्षकारो यत्र सत् । पाठान्तरे प्रथमनिलीनमधुरीकुलवेलथ । तत्र प्रथमनिलीनेति मधुरीविशेषणम् । सुप्तस्य रात्र प्रबोधनाय वैतात्रित्येद वचनमिति चेचित् । साध्यो विचिरनुष्टीयतामिति, सुरभयो मुच्यतामिति, विक्रेयवस्तूनि प्रसार्यन्तामिति, नाकीदानीं पिशाचादिभयमिति, पथिक प्रतिष्ठवेत्यादि प्रत्यावेदशकतादिभेदापुनरनेकविधो व्याख्योऽय सहृदये स्वयमूहनीय ॥

प्रवासावसरमधिगम्य वसामप्यभिद्योतुर्जोरस्य निरासार्थं दत्ताह—

आउच्छणविच्छाअं जाआइ मुहं णिअच्छमाणेण ।

पहिण्ण सोअणिअलाविण्ण गन्तुं विअ ण इट्ठम् ॥ १०० ॥

[आपृच्छनविच्छाय जायाया मुख निरीक्षमाणेन ।

पश्चिक्केन शोकनिर्गदितेन गन्तुमेव नेष्टम् ॥]

आपृच्छन गन्तुमनुजानीहीति प्रश्नः ॥

रसिअजणहिअअदइए फइवच्छलपमुहसुकइणिम्मइए ।

सत्तसअम्मि समत्तं पच्चमै गाहासअं एअम् ॥

[रसिजवदहृदयदयिते कवित्सलप्रमुखमुखविनिर्मिते ।

सत्तशतके समाप्त पञ्चम गाथाशतकमेतत् ॥]

“^१ पठ शतकम् ।

जनपशादभयादशास्य^२ सल्लोदना कृत्या सखीमाह—

सूखेहे सुसलं विच्छहमाणेण ददुलोएण ।

एक्कगामे वि पिओसमअं अट्ठीहिं वि ण दिट्ठो ॥ १ ॥

[सूखीवेपे सुसलं निक्षिपता दग्धलोकेन ।

एकग्रामेऽपि प्रिय समाम्यामक्षिम्यापि न ददुः ॥]

सूखीवेप इति । अल्पमति दूषण बहु कुर्वतेत्यर्थः । दग्धशब्दो निर्वेदसूचने । स
माभ्यां सर्वभ्याम् । ‘समं सदति सर्वस्मिन्’ इति शेषः ॥

कापि पतिगमनम्यात्ममरणहेतुतां प्रतिपादयती पत्युर्गमनविधेयार्थं सखीमाह—

अजं पि ताव ण्णं मां मं वारेहि पिअसहि रअन्तिम् ।

कहिं उण तम्मि गय जइ ण मुआ ता ण रोदिस्सम् ॥ २ ॥

[अथापि तात्रेदेक मा मां वारय प्रियतसि रुदतीम् ।

कस्ये पुनस्तस्मिन्गते यदि न मृता तदा न रोदिष्यामि ॥]

अपिरवधारणे । अर्धवेत्यर्थः । एक दिनमित्यर्थाद ॥

कृतुमत्ता सुवत्ता वेदग्ध सूचयन्ती कापि सखी शिषयितुमाह—

एहि ति वाहरन्तम्मि पिअअमे उअह ओणअमुहीए ।

विउणावेट्ठिअजहणत्यलाइ लज्जाणअ हसिअम् ॥ ३ ॥

१. ‘निगडावित्तेन’ घ. २. ‘विच्छुहमाणम्मि ददुतोअम्मि’ ग. ३. ‘विशिष्यमाणे
न, ‘प्रक्षिपता’ घ. ४. ‘मास’ ग. ५. ‘प्रिये न रोदिष्ये’ ग.

[एहीति व्याहरति प्रियतमे पश्यतावनतमुख्या ।

द्विगुणावेष्टितजघनस्यलया लज्जावनतं हसितम् ॥]

बोऽपि युवलाः कटाक्षवर्णनेन स्वाभिताप प्रकाशयन्नाह—

मारेसि कं ण मुद्धे इमेण रत्तन्ततिक्खविस्समेण ।

भुलआचावविणिग्गअतिक्खअरद्धच्छिभहेण ॥ ४ ॥

[मारयसि कं न मुग्धे अनेन रत्तान्ततीक्ष्णनिपमेण ।

भूलताचापनिर्निर्गततीक्ष्णतरार्धाक्षिभहेन ॥]

भा. काण्डभेदः । 'रत्तन्ततिक्ख' इति स्थाने 'पेरन्तरत्त' इति कविस्थाठः । तत्र 'पर्यन्तरत्त' इत्यर्थः ।

नायिकाया अनुरागातिशय प्रकाशयन्ती वृत्तिं जारमाह—

मुह दंसणे सअह्हा सहं सोऊण णिग्गदा जाहं ।

तह बोलीणे ताहं पआहं बोढव्विआ जाआ ॥ ५ ॥

[तय दर्शने सतृष्णा शब्दं श्रुत्वा निर्गता यानि ।

त्वयि व्यतिक्रान्ते तानि पदानि बोढव्या जाता ॥]

शब्दं तव वचनम् । त्वदर्शनोत्साहेन गमनावसरेऽज्ञातज्ञेया त्वयि नेत्रपथातीते पुनर्ग-

तजीमितेव परस्वभावा जातास्त्वयः ॥

निमित्येव कृशासीति पृष्टा कापि मातुलानीमाह—

ईसामच्छररहिण्हिं णिहिं मां रेहिं मामि अच्छीहिं ।

एहिं जणो जणम्मिअ णिरिच्छए कहं ण छिंजामो ॥ ६ ॥

[ईर्ष्यामात्सररहिताभ्या निर्विकाराम्बा भ्रातुलान्यक्षिभ्याम् ।

इदानीं जनो जनमिव निरीक्षते कथं न क्षीयामहे ॥]

जनः प्रियः । जनमिव साधारणमिव । निरीक्षते अलानिति शेषः । ईर्ष्यामात्सरधू-

भ्रादिमनुरागहापकमिति तदभावात्स्त्रीणास्तीति भावः ॥

दुहितुः किञ्चिदपि सौभाग्यसूचक मातरं तोषयतीति कापि कस्यचिच्छिक्षापमाह—

वाउद्धअसिअविह्वाविओरुदिट्ठेण दन्तमग्गेण ।

बहुमाआ तोसिअहं णिहाणकलसस्स व मुहेण ॥ ७ ॥

[वातोद्धतसिचयविभावितोरुद्वेगेन दन्तमार्गेण ।

बधूमाता तोष्यते निधानकलशस्येव मुखेन ॥]

१. 'पेरन्तरत्त' ख. २. 'पर्यन्तरत्त' घ. ३. 'छिजामो' क. ४. 'मातुलि' घ.

५. 'तुष्यति' ग.

दन्तमार्गेण दन्तक्षतेन । ऊरुप्रदेशे दन्तनखघातादयः सुरते वर्तव्या इति व
मनुज येदमुक्तम् ॥

काप्यात्मन इध्यादोष परिहरन्ती स्नेहानुत्थयै बन्धमाह—

हिअअम्मि वससि ण करेसि मण्णुअ तह वि णेहमरिएहिं
सद्धिज्जसि जुअइसुहावगलिअधीरोहिं अम्हेहिं ॥ ८ ॥

[हृदये वससि न करोषि मन्यु तथापि स्नेहभृताभि ।

शश्वसे युनतिस्वभावागलितधैर्याभिरस्त्राभि ॥]

यद्यपीदानीं क्षिप्तसि तथाप्यग्रे विरस्यस इति मनसि सशयो भवतीति भाव
कापि कस्मिन्नपि यूनि जाताभिन्नापा तस्य भार्यापारतभ्य सूचयन्ती
सनिर्बेदमाह—

अण्ण पि किं पि पाविहिसि मूढ मा तम्म दुक्खमेत्तेण ।

हिअअ पराहीणजण मग्गेन्त तुह केत्तिअ एअम् ॥ ९ ॥

[अन्यदपि किमपि प्राप्स्यसि मूढ मा ताम्य दुःखमात्रेण ।

हृदय पराधीनजन सैगयमाण तव नियमानमिदम् ॥]

किमपीति । प्रियविप्रयोगवच्छरीरवियोगमपि प्राप्स्यसीत्यर्थः । मरणस्य पदा
पादानममङ्गलदात्म्यस्त्रीनामहमिति किमपी युक्तम् ॥

कान्तस्यान्यस्यामनुरागम्, तस्याश्च तस्मिन् द्वेषम्, आत्मनश्च तस्मिन्ननुरागम्
चात्मनि द्वेषं सूचयन्ती कापि नायम्माह—

वेसोसि जीअ पमुल अहिअ ^{चआते} _{बते} चहमा तुज्ज ।

इअ जाणिऊण वि मए ण ईसिअ दङ्कुपेम्मरस ॥ १० ॥

[द्वेष्योऽसि यस्याः पासुल अधिकतर सा खलु बहमा तव ।

इति शास्त्रापि मया न ईर्ष्यित दग्धप्रेम्णा ॥]

चतुर्थं पद्यम् । प्रेम्णे इत्यर्थः । अयमाक्षय — अवगत मया यो यस्त्वा द्वेति
तव प्रियः । यथा भक्तपत्नी । मया तु त्वम्यनुरक्तया कथं प्रियया भवितव्यं
प्रेम्णे कथं नेर्ष्या न कृतेति । यद्वा प्रम्णा इति पद्यमी । ईषतमिति तुभ्यमिति
प्रेमवशाद्द्वेषो न कृत इत्यर्थः । चिन्तापतापीर्ष्या प्रेम्णा प्रतिवन्धाच्च निष्पन्नेति भा
अपरां निपुणा प्रेयसीं खलु त कात कापि सेर्ष्यमाह—

सा आम सुहअ गुणरुअसोहिरी आम णिरगुणा अ अहम् ।

भण सीअ जो ण सरिसो किं सो सव्वो जणो मरउ ॥ ११ ॥

१ 'स्नेहयते' क ख. २ 'धैर्ये' क ख. ३ 'अमयमान तव नियदेत'
'इच्छन् तव नियदेतत्' घ. ४. 'जीव' घ

[सा सैत्यं सुभग गुणरूपशोभनशीला सैत्यं निर्गुणा चाहम् ।

मण तस्या यो न सदृशः किं ॥ सर्वो जनो म्रियताम् ॥]

आमेति सैत्यानुमतौ । सत्यमित्यर्थः । अत्र विपरीतलक्षणया रागान्वस्त्य गुणरूपा-

दिकं विवेक्तुमेव न जानासि । यतोऽघमामपि तां बहु मन्यस इति व्यज्यते ॥

दुर्लभाभिलाषिणीं स्वगृहवधू प्रति वैराग्यजननार्थं कोऽपि पुत्रमाह—

सन्तमसन्तं दुक्खं सुहं च जाओ घरस्स जाणन्ति ।

ता पुत्तअ महिलाओ सेसाओ जरा मनुस्साणम् ॥ १२ ॥

[सदसदुःखं सुखं च या गृहस्य जानन्ति ।

ता पुत्रक महिलाः शेषा जरा मनुष्याणम् ॥]

गृहस्य गृहपते । सद्विद्यमानम् । असदविद्यमानम् । यद्विवर्ति शेषः । यथा सुखं
दुःखं च या जानन्ति ता महिला गृहिणीपदधिशिष्यारिण्यः । अन्यास्तु जरा, क्षयहेतु-
रादित्यर्थः ॥

वापि सत्याः शिक्षार्थं कुलवधूवृत्तमाह—

इसिएहि उवांलम्भा अनुषचारेहिं रिज्झिअन्वाइं ।

अंसूहिं मण्डणाइं एसो मग्गो सुमहिलाणम् ॥ १३ ॥

[इमितैरुपालम्भा अत्युपचारीः खेदितव्यानि ।

अधुभिः कलहा एव मार्गः सुमहिलानाम् ॥]

इतितैर्न तु रोदने, उपचारैर्न तु गृहकृत्यपरिहासेन, अधुभिर्न तु वचोभिरिति भावः ॥

जनापवादभयादकृतसभाषणे प्रेयस्सलमुद्वेगेनेति वदन्ती इती कापि रात्रणयरो-

पमाह—

उल्लापो मा दिज्जउ लोअविरुद्धं चि णाम कौऊण ।

सँमुहापडिण को उण वेसें वि दिट्ठिं ण पाडेइ ॥ १४ ॥

[उल्लापो मा दीयतां लोकविरुद्ध इति नाम कृत्वा ।

संमुखापत्तिरिति कः पुनर्द्वेष्टेऽपि दष्टि न पातयति ॥]

लोकविरुद्ध इति कृत्वा उल्लापो मा दीयतां नामेलम्बयः । नाम कृत्वा नामग्रहण-
पूर्वकमिति वार्थः । यद्वा परपुरुषसमायण लोकविरुद्धमिति मा क्रियताम्, कथं पुनस्त-
मद्राशीरपि नेति साध्वी प्रति बुद्ध्या इयमुक्तिः ॥

अतिक्रान्तस्यैतसमया प्रिया प्रति कोऽपि सोद्वेगमाह—

साहीणपिअअमो दुग्गओ वि मण्णइ कअत्यमप्पाणम् ।

पिअरहिओ उण पुहविं वि पाविउण दुग्गओ वेअ ॥ १५ ॥

[स्वाधीनप्रियतमो दुर्गतोऽपि मन्यते कृतार्थमात्मानम् ।

प्रियैरहित पुन पृथिवीमपि श्रेष्ठ्य दुर्गत एव ॥]

स्वाधीना प्रियतमा यस्येति बहुव्रीहि । यद्वा किमेव वृत्तोऽसीति पृष्ठस्वैच्छानुरूपा प्रियामलभमानस्य कस्यचिदिवमुक्तिः ॥

कामप्यप्राप्तप्रियतमा लोभमयादृढयस्थित क्षेद गोपायन्तीं सख्याह—

किं हवसि किं अ सोअसि किं कुप्पसि सुअणु एक्कमेक्कस्स ।

पेम्म विस व विसम साहसु को रुन्धिउ तरइ ॥ १६ ॥

[किं रोदिपि किं च शोचसि किं कुप्यसि सुतनु ऐकैकस्मै ।

प्रेम विषमिन् निषम कथय को रोदु शक्नोति ॥]

प्रेमवशादुद्विगता भवति, इयास्मा प्रति कोष मा कृया इति भावः ॥

अनन्युपगच्छतीममिथोज्यामन्नीकारयितु इती स्नानुभूतानामेवार्थानामनिलता माह—

से अ जुआणा ता गामसपआ त च अम्ह वारुण्णम् ।

अकराणअ व लोओ कहेहि अम्हे वि त सुणिमो ॥ १७ ॥

[ते च युवानस्ता ग्रामसपदस्त्रिधास्माक तारुण्यम् ।

आख्यानकमिव लोक कथयति वयमपि तच्छृणुम ॥]

सदेवमनिले ससारे तथाविधविदग्धवह्नभसमागममुख निमित्ति परिहरसीति भावः ॥

चातेन सशपथमनुनीयमानाया वान्त प्रतुद्वेगवाद सखीं सखीमाह—

वाहोहमरिअगण्ढाहराणं भणिअ विलकरइसिरीए ।

अज्ज वि किं रुसिज्जइ सवहावस्य गअ पेम्मम् ॥ १८ ॥

[वैष्णोयभृतगण्ढाधरया मणित विलेखहसनशीलया ।

अद्यापि किं रूप्यते शपथावस्थां गतं प्रेम ॥]

‘प्रियारहित’ ग २ ‘प्राप्तो’ घ ३ ‘किं हवसि’ ग ४. ‘किं कुप्यसि’ ग. ‘ऐकैकस्मै’ घ ६ ‘बाहोऽनुकुरेज’ ग ७ ‘वाग्वादस्फुरित’ ग ८. ‘मणित’ घ १३ ‘हस्त्या’ ग.

‘वाहोहफुरिअगण्डाहारा’ इति पाठे ‘वाण्यार्द्रैरफुरितगण्डाधरया’ इत्यर्थः । शपथेति ।
 वेदलं शपथेनैव प्रेम वर्तत इति ज्ञायते, न त्वनुभूयत इति भावः ॥

प्रियस्य मन्दब्रेहता सूचयन्ती सखी सनिर्वेदं सखीमाह—

वण्णअघअलिप्पमुहिं जो मं अइआभरेण चुम्बन्तो ।

एहिं सो भूसणभूसिअं पि अलसाअइ छिचन्तो ॥ १९ ॥

[वर्ण[क]घृतलितमुखी यो मामत्यादरेण चुम्बन् ।

इदानीं स भूषणभूषितामप्यलसायते स्पृशन् ॥]

पूर्वं पुष्पवतीमपि मामत्यादरेण योऽस्मप्राक्षीत्स इदानीं शुद्धामपि मा स्पृशत्यपि
 नैल्लयं ॥

कस्याधिन्मलिनवस्त्रतापोपं परिहरन्ती दूती वक्षस्य रतामुपयोगित्वमाह—

णीलपडपाचअङ्गी त्ति मा हु णं परिहरिज्जासु ।

पट्टंसुअं पि णद्धं रअम्मि अवणिज्जइ वेअ ॥ २० ॥

[नीलपटप्रावृताङ्गीति मा खल्वेना परिहर ।

पट्टांशुकमपि नद्धं रतेऽपनीयत एव ॥]

नद्धं परिहितम् । तद्वज्रो गुण व्रीणामुपादेय, न त्वाहार्य इति भावः ॥

भक्तिमाने दोषं प्रदर्शयन्ती दूती मानिनीमनुनेतुमाह—

सच्चं कलहे कलहे सुरआरम्भा पुणो णवा होन्वि ।

माणो उण माणंसिणि गरुओ पेम्मं विणासेइ ॥ २१ ॥

[सत्यं कलहे कलहे सुरतारम्भा, पुनर्नवा भवन्ति ।

मानः पुनर्नखिनि गुरुक प्रेम विनाशयति ॥]

कलहान्तराभविति गुरते वक्षसि रक्षयिषो कम्पते वयाप्यतिमानेव प्रेम्णि गते
 क्लिं गुरतेनेति मुश्च मानमिति भावः ॥

अगृहीतागुनयविक्षेपेण प्रियेणावधीरिता कलहान्तरिता सातुतां इतीमाह—

माणुम्मत्ताइ मए अकारणं कारणं कुणन्तीए ।

अहंसणेण पेम्मं विणासिअं पोढवाएण ॥ २२ ॥

[मानोन्मत्तया मया अकारणं कारणं कुर्वता ।

अहंसेन प्रेम विनाशितं प्रौढवादेन ॥]

अकारणमिति । अदोषमेव दोषं कल्पयन्त्येत्यर्थः । माननिमित्तं विनैवाप्तहेण निमित्तं
सपाद्य मानं विदधत्वा मयानुनयमपि त्रियो नावलोकितः सप्रत्यक्षनाल्लेह एव गतः ।
कथं तद्वर्त्तनं भवतीति भावः । ग्रीडवाद् सप्रतिष्ठप्रत्याख्यायाम् ॥

वृत्तापराधमनुनयन्त कापि मन्त्राह्वात्म्यमाह—

अणुऊलं विअ घोत्तु बहु बल्लह बल्लहे वि वेसे वि ।

कुविअं अ पसाएउं सिक्खइ लोओ तुमाहित्तो ॥ १३ ॥

[अनुकूलमेव वक्तु बहुबल्लभ बल्लभेऽपि द्वेष्येऽपि ।

कुपितं च प्रसादयितुं शिक्खते लोको सुप्पत्तः ॥]

सर्वमिदं तव हृदयवाक्यमित्यर्थः ॥

मन्दबोद्धस्य पान्तव्याकृतज्ञतां सूचयन्ती कापि सखीनाह—

लज्जा चत्ता सील अ खण्हिअं अजसणीसणा क्षिण्णी ।

जस्स कए णं पिअसहि सो चेअ जणो जाओ ॥ १४ ॥

[लज्जा त्यक्ता शीघ्रं च खण्डितमयशोचोपणा दत्ता ।

यस्य कृतेन (कृते ननु) प्रियमस्ति न एव जनो जनी जानः ॥]

जनो वक्ष्यते । जन उदासीनो जातः ॥

कापि सखाः शिक्षार्थं कुलधूतमाह—

हमिअं अदिट्ठदन्तं भमिअमणिवन्तदेहलीदेसम् ।

दिट्ठमणुक्खित्तमुहं एसो मग्गो कुलधूणम् ॥ १५ ॥

[हस्तिमहददन्तं भ्रमितामणिप्रान्तदेहलीदेसम् ।

हृष्टमनुत्क्षिप्तमुत्तमेव मार्गं कुलधूणम् ॥]

निषादिच्छदत्वा केनापि विन्दमानस्य नामकस्याभ्यासदेसेन गुणातिशयं दृष्टी न-
क्षिरामनुकूलयितुमाह—

धूलिमइलो नि पइद्धिओ वि तणरइअदेहमरणो वि ।

तद्द वि गेइन्द्रो गरुअत्तणेण टक्क समुज्जहइ ॥ १६ ॥

[धूलिमणिनोऽपि पद्मादितोऽपि दृणरचितदेहमरणोऽपि ।

तथापि गेनेन्द्रो गुरुकृतेन दृढा समुद्रहति ॥]

तस्मैव परं यशोद्विगिम्भ इति भावः । मरणं पोरणम् । गुरुत्वं परिमाणरित्येव इ-
त्यर्थः ॥

विपद्यि महतामुन्नतचित्तत्वमेवेति सखी शिक्षयितुं कापि सुभटस्त्रियाधौरेण सहो-
क्तिप्रत्युक्तिकौशलमाह—

करमरि फीस ण गम्भइ को गच्छो जेण मसिणगमणासि ।

अदिट्टदन्तहसिरीज जम्पिअं चोर जाणिहिसि ॥ २७ ॥

[वेन्दि किमिति न गम्यते को गच्छो येन मसुणगमनासि ।

अदिट्टदन्तहसनशीलया जल्पितं चोर ज्ञात्तसि ॥]

करमरी हट्टहत्तमहिला । यमनासीसनन्तरमिति चौरैर्नोक्तं सतीति शेषः । शास्त्र-
धीति । मम प्रिय आगच्छति दण्डदेवास्त्वामिनयस्य फलमनुभविष्यतीति भावः । 'अ-
दिट्ट' इति स्थाने 'दरदिट्ट' इति वचिपाठः । तत्र 'इपट्टदन्तहसनशीलया' इत्यर्थः ॥

कस्यान्वभियोगनिरासार्थं वृत्ती नायिकाया ऋतुकाष्ठेऽप्यनवसरमाह—

थोरंसुएहिं रुण्णं सयत्तिवग्गेण पुप्फवइआए ।

भुअसिहरं पाणो पेछिऊण सिरलगगतुप्पलिअम् ॥ २८ ॥

[स्थूलाश्रुमी रुदितं सपत्नीवर्गेण पुष्पवत्याः ।

भुअसिहरं मत्सु प्रेक्ष्य शिरोलम्बवर्णघृतलिप्तम् ॥]

रजसलामपि तामसौ न लज्जतीति भावः । पुष्पं वर्णघृतं रोमं लिप्तं तुप्पलिअम् ॥
अनुतागातिशयास्वोऽपि रजसलामाह—

लोओ जूरइ जूरउ थजणिअं होइ होउ तं णाम ।

एहि भिमज्जसु पासे पुप्फवइ ण एइ मे निदा ॥ २९ ॥

[लोक. लिघते लिघतु वचनीय भवति भवतु तत्ताम ।

एहि निर्मेज्ज पार्थे पुष्पवति नैति मे निद्रा ॥]

वचनीय परीषाद ॥

आप्यनुतागातिशयं व्यनयन्ती कमपि मुञ्चामाह—

जं जं पुलएमि दिसं पुरओ लिहिअ अ्व वीससे तत्तो ।

हुइ पडिमापडिवाडिं बहइ व सजलं दिसाअकम् ॥ ३० ॥

[या यां प्रलोकयामि दिशं पुरतो लिखित एव दृश्यसे तत्र ।

तत्र प्रतिमापरिपाटीं बहतीव सकल दिशाचक्रम् ॥]

प्रतिमा. प्रतिविम्बम् । परिपाटी परम्परा ॥

एकत्रानुभूतव्यसनस्तत्सदृशमन्यदभिलषितमप्युपादातुं विभेतीत्यन्यापदेशेन को-
ऽप्याह—

ओसरइ धुणइ साहं सोक्खामुहलो पुणो समुह्मिहइ ।

जम्बूफलं ण गेह्मइ भमरो त्ति कई पदमडक्को ॥ ३१ ॥

[अपसरति धुनोति शाखा खोच्छासुंखर. पुन. समुहिसति ।

जम्बूफल न गृह्णाति भ्रमर इति कपि. प्रथमदष्ट ॥]

खोलौ चनिविशेषः । उक्को दष्ट ॥

अभिमतमपि मूढः प्रतिकूलबुद्ध्या परिहरतीत्यन्यापदेशेन कोऽपि सहचरमाह—

ण छिवइ हत्थेण कई कैण्णइभएण पत्तलणिउञ्जे ।

दरल्लम्बिअगोच्छकइरुच्छुसच्छइ वाणरीहत्थम् ॥ ३२ ॥

[न स्पृशति हस्तेन कपि कैण्णइतिभयेन पत्तलनिकुञ्जे ।

ईषल्लम्बितगुच्छकपिकच्छुसच्छइ वाणरीहत्थम् ॥]

पत्तलः पत्रबहुलः । कपिकच्छुः शूकक्षिप्तिः । आरुते पूर्वनिपातानियमात्कपिक-
च्छुगुच्छसंशानिलयः ॥

नायिकाया विरहदुःखं सूचयन्ती दूती नायकमाह—

सरसा वि सूसइ थिअ जाणइ दुक्खआई मुद्धहिअआ वि ।

रत्ता वि पण्डुर थिअ जाआ वरई तुह विओप ॥ ३३ ॥

[सरसापि शुष्यत्येव जानाति दुःखानि मुग्धहृदयापि ।

रत्तापि पाण्डुरैव जाता वरक्री तव वियोगे ॥]

रस आर्द्रता इच्छा च । मुग्धत्वमचेतनत्वमितिकर्तव्यतातुद्धिराहितं च । रत्तः र-
त्नवर्णता प्रीतिविशेषश्च । अत्र विरोधात्मकारेण त्वद्विरहे सर्वमेव मुखसाधनं दुःखसाधनं
जातं तस्या इति वस्तु व्यज्यते ॥

कामपि गलितयौवना शीघ्रपानेन जातमन्यमपिरागं शरद्वर्णैश्चछलेनोपहृतमाग-
रिक्ः सहचरमाह—

आरुहइ जुण्णअं सुज्जअं वि जं उअह वहरी तउसो ।

णीलुप्पलपरिमलवासिअस्स सरअस्स सो दोसो ॥ ३४ ॥

१. 'शुखरः समुहसति' घ. २. 'खोखा वानरशब्द.' इति कुलशालदेव. ३. 'कण्ड-
अण' ख-ना. ४. 'कण्डूयन' ग-घ. ५. 'दरल्लम्बित' ग-घ. ६. 'सच्छवि' घ.

[आरोहति जीर्णं कुञ्जकमपि यत्पश्यत चेह्नशीला नृपुसी ।

नीलोत्पलपरिमलवासिताया शरदः स दोष ॥]

चेह्नशीला चेह्नशीला । पक्ष चेष्टिताप्यालिङ्गनशीला । नृपुसी कर्कटीविशेष ।
शोरो विकार । कर्कट्या पुनर्वनीकरण जरलाय युवतीकरण विकार । शरत्काले न
केटीनता यदेव पुर स्थित शुष्कमाद्रे सरल वक्र वा सदेवारोहति । तथा लतेव लता
नयिका इह तरुण वा यद्गन्ते नायमस्या दोष । किंतु सरवत्स सरकस इगुम-
यस्य । सरकोश्री शीघ्रगाने शीघ्रपात्रेणुशीघ्रगो' इति नेदिनी ॥

पूरमनुभूतमधू-सखा कापि प्रियविरहिता पुन प्ररुते मधून्सवे सखीमाह—

उष्पहपहाविहजणो पविजिम्हिअकलअळो पहाभूरो ।

अळो सो खेअ छणो तेण विणा गामहाहो व्व ॥ ३५ ॥

[उत्पथप्रधावितजन प्रविजृम्भितकलवल प्रहत्तर्त्य ।

हुँ ल स एव क्षणस्तेन विना गामदाह इव ॥]

उपपेति । उत्पथतरासया सन्नमाचेति माव । अळो इति दुःखाभिनये आभवे
य । क्षणो मधू-सख ॥

पल्लवप्रतिपद्य वापि सखीमाह—

उल्लावन्तेण ण होइ फस्स पासट्टिएण ठह्वेण ।

सङ्गा मसाणपाअवलम्बिअचोरेण व रल्लेण ॥ ३६ ॥

उल्लापयमानेन न भवति वल्ल पार्श्वस्थितेन सन्धेन ।

सङ्गा मसानपादपलम्बितचोरेणेन खलेन ॥]

उल्लापयमानेन समापमानेन पक्षेऽभिभवता । पार्श्वस्थितेन सनिहितेन, पक्षे पास
ट्टिएण पार्श्वस्थितेन । सन्धेन अङ्कुराद, पक्षे प्राणवायुविरहान् । यद्यपि वितर्क,
पक्षे भयम् ॥

नेपितमत्का प्रियसखी समभासयितु सखी विभृभयिनीमाह—

असमत्तगुरअयल्लो एहि परिण घर निअत्तन्ते ।

णयपाउसो पिउल्ला दसइ व हुइअट्टहासेहि ॥ ३७ ॥

१ 'लोणेतनूरमपि' ग २ 'वेदमाना दुडुरि' ग, 'वदरी प्रपुसी' घ. ३ 'वा
तिस्य सरस को दोष' घ ४ 'सूचित स एव' घ ५ 'उल्लापयमानेन' ग,
'उल्लापयमानेन' घ

[अममासगुरुककार्ये इदानीं पथिके गृहं प्रतिनिवर्तमाने ।
ननप्राट्ट् पितृध्वसः हसतीन कुटजाट्टहासैः ॥]

मचिहदर्शनाद्भीत प्रियाविरह सोढुमशनुन्नकृतकार्य एवाहं गृह प्रति प्रस्थित इति
हसतीवेलम् । कुटजकुसुमान्येवाट्टहासः ॥

कोऽपि वर्षोपक्रमे गृहगमनाय पथिकं स्वरयितुमाह—

ददृण उण्णामन्ते मेहे आमुक्कजीविआसाए ।

पहिअघरिणीअ डिम्भो ओरण्णमुहीअ सच्चविजो ॥ ३८ ॥

[दृष्ट्वा उग्रमतो मेघानामुक्तजीविताशया ।

पथिकगृहिण्या डिम्भोऽरुदितमुख्या ईष्ट. ॥]

अवहरितेति । का गतिरस्य भविषी केन कार्यं पालयितव्यम्यादि चिन्तयेति भावः ॥
कलहान्तरितया कोपोज्जितभूषणयापि न त्यक्तानि बलवानीति तस्याः पुत्रता वि-
रहकृताया च सूचयन्ती सखी तत्कान्तमाह—

अविह्वलक्लणवल्लभं ठाणं णेन्तो पुणो पुणो गलिअम् ।

सहिसत्थो छिअ माणंसिणीअ बलआरओ जाओ ॥ ३९ ॥

[अविधवालक्षणवल्लभं स्थानं नैयन्तु पुनर्गलितम् ।

सखीसार्थ एन मनसिन्या बल्यकारको जातः ॥]

बल्यकारको बल्यपरिपापकः ॥

कोऽपि दुर्गतविरहिष्वनस्थाप्रकटनेन प्राट्टपि पथिकं स्वरयितुमाह—

पहिअबहू विवरन्तरगलिअजलोले धरे अणोलं पि ।

उहेसं अविरअवाहसलिलनिवहेण उछेइ ॥ ४० ॥

[पथिकवधूविवरान्तरगलितजलार्द्रं गृहेऽनार्द्रमपि ।

उद्देशमविरतबाष्पसलिलनिवहेनार्द्रयति ॥]

उद्देश स्थानम् ॥

१. 'पीयूषा' घ. २. 'अवनतमुख्या' ग. ३. 'सञ्जायित.' ग, 'संस्थापित.' घ.
४. 'अपैपात्य' अ, 'अतिगह' घ. ५. 'वीर्यमानं' ग. ६. 'गम्भीरसू.' ग. घ. ७. 'बलया-
कारो' ग, 'बल्यारको' घ. ८. 'कुन्तर' ख-ग. ९. 'कुड्यान्तर' ग-घ. १०. 'प्र-
देश' ग.

अनुनेतुमागतं प्रियवादिनं कान्तं कलहान्तरिता सपरितोषमाह—

जीहाइ कुणन्ति पित्रं भवन्ति द्विअअम्मि जिह्वुइ काउम् ।

पीडिअन्ता वि रसं जणन्ति उच्छृ कुलीणा अ ॥ ४१ ॥

[जिह्वायां (पक्षे-जिह्वा) कुर्वन्ति प्रियं भवन्ति हृदये निर्वृतिं कर्तुम् ।

पीड्यमाना अपि रसं जनयन्तीक्ष्वः कुलीनाश्च ॥]

जिह्वायामिति मधुरवादिप्रियंवदत्वाच्च । भवन्ति प्रभवन्ति । निर्वृतिं सतापस्रोद्धे-
नस च प्रक्रमम् । पीड्यमाना दन्तेन निष्ठुरवादेन च । रस इव प्रीति य ॥

वसन्तागमं प्रति विप्रतिपद्यमानो श्वधू धधूराह—

दीसइ ण चूअमउलं अत्ता ण अ वाइ मलअगन्धवहो ।

पत्तं वसन्तमासं साहइ उक्कण्ठिअं चेअं ॥ ४२ ॥

[दृश्यते न चूतमुकुलं श्वधू न च घाति मलयगन्धवहः ।

प्राप्तं वसन्तमासं कथयत्युक्कण्ठितमेव ॥]

उक्कण्ठितमुक्कण्ठा । 'उक्कण्ठिअ चेअं' इति पाठे 'उक्कण्ठित चेत्.' इत्यर्थः ॥

आश्रयतिहि प्रोषितपतिके न जातो वसन्तारम्भ इति वदन्ती सखी वसन्तागममुक्कं
सहकाराङ्कुरोद्गम प्रतिपादयन्ती भाषिका आह—

अम्भवणे भमरउलं ण विणा फजेण ऊसुअं भमइ ।

कत्तो जलणेण विणा धूमस्स सिहाउ दीसन्ति ॥ ४३ ॥

[आश्रवणे भ्रमरकुलं न विना वायेंधोत्सुक भ्रमति ।

कुतो जलनेन विना धूमस्य तिखा दृश्यन्ते ॥]

उसुमेन विना नालिनो भ्रमन्ति । जाते आश्रङ्कृते प्रवृत्त एव वसन्त इति भावः ॥

वयमनलंकृतामेवैवो बहुमन्यस इति वदन्तं सहचरे निदग्धः कथिदाह—

वइअकरगहलुलिओ धम्मिहो सीहुगन्धिअं वअणम् ।

मअणम्मि एसिअं चिअ पसाहणं हरइ तरुणीणम् ॥ ४४ ॥

[दयितकरगहलुलितो धम्मिहः सीधुगन्धितं वैदनम् ।

मदने एतावदेव प्रसाधनं हरति तरुणीनाम् ॥]

मदने वसन्तोत्सवे । मदन इति निमित्तप्रसङ्गी वा । मदननिमित्तमित्यर्थः । एतावदे-
ति किमन्यैः सुरतानुपयोगिभिर्भारभूतैरिति भावः । निमलंकारेण । शीघ्रं कान्तमभिस-
'नि दत्तीवचनमिति कथिद ॥

१. 'करे-ति' ख-ग. २. 'हन्ति' ख. ३. 'हरन्ति हृदय' घ. ४. 'चेअं' ख.
५. 'आगत च' ग. ६. 'चेत्.' ग-घ. ७. 'वचनं' घ. ८. 'मदनेऽप्येतावदेव' ग.

ग्राम्यस्त्रियोऽप्यत्र रमणीया मवन्तीति वसन्तं सुवन्कोऽपि सहनरमाह—

गामतरुणीओं हिजअं हरन्ति छेआणं यणहरिहीओ ।

मअणे कुसुम्भरखिअकच्चु[इ]आहरणमेत्ताओ ॥ ४५ ॥

[ग्रामतरुण्यो हृदयं हरन्ति विदेग्धानां स्तनमारवत्य ।

मैदने कुसुम्भरागमुत्तकशुकराभरणमात्राः ॥]

प्राकृते पूर्वनिपातानिबन्धात्कमुक्ताग्रामरणा इत्यर्थः । एतादृश्यो ग्रामतरुण्योऽपि स्तुह-
णीया भवन्ति किमुत परापर्यभूषणमृषिता- प्रमदा इति भावः ॥

कोऽप्यनभ्यस्तप्रवासस्याभिनवपथिकस्य विरहवैधुर्यं कथयन्प्रवासनिषेधार्थं तनाह—

आलोअन्त दिसाओ ससन्त जम्मन्त गन्व रोअन्त ।

सुच्छन्त पछन्त खलन्त पदिअ किं ते पवरयेण ॥ ४६ ॥

[आलोक्यन्दिशः श्वसन्नुन्ममाण गायन्तदन् ।

सूक्ष्मपतन्त्रस्तलन्त्यधिक किं ते प्रेक्षितेन ॥]

चरितत्वादिशोऽवलोकयन्, प्रियास्वरणाच्छृण्वन्, मदवायासेन जन्ममाणः, दुःखवि-
मोदाय गायन्, पुनश्च निवेदाद्बुदन्, तदेवातकचित्तवान्मूर्च्छादिविकारं प्राप्नुवन् ते
पथिक, ते प्रवसितेन प्रवासेन किं परम् । गतोऽप्यकृतकृत्य एवामभिप्यति । यतः
संप्रत्येव तथेयमवस्था विचिदूरगमने नु कीदृशवस्था भविष्यतीति न जाने । तस्मात्प्रि-
तस्वेति भावः ॥

सद्यसा रहोदत्तननुसधानुं गता कथमियमिरेणागतासीति सद्यसा दृष्टासखी तानाह—

दद्वण तरुणसुरअं यिविहविलासेहिं करणसोहिलम् ।

दीओ वि सग्गअमणो गअं पि चेहं ण लक्खेइ ॥ ४७ ॥

[दद्वण तरुणसुरतं यिविधविलासैः करणशोभितम् ।

दीपोऽपि तद्वतमना गतमपि तैठ न लक्षयति ॥]

यिविधविलासैरालितननुम्यनादिभिरुलक्षितम् । करणैस्ताननकतिवैभविपरीतापाश-
मवधैः कामशाश्रोकैः शोभितम् । तरुणी च तरुण्य तदणी । 'पुमान्निद्रया' इत्येक-
शेषः । तयोः सुरवम् । अचेतनो दीपोऽपि यत्र स्पृष्टयालुस्तत्र मद्भिषो जनः कथं की-
तुकादिरमतीति भावः ॥

१. 'हरन्ति पीवरयेणहरहीठ' ग. २. 'कुसुम्भराह' ग. ३. 'छेकानां' घ.
४. 'प्रोदस्तनभारा.' ग. ५. 'मदवन्ति कुसुम्भरागमुत्तकशुकराभरणमात्रा.' ग. 'मन्ते कु-
सुम्भरागमुत्तकशुकराभरणमात्रा' घ. ६. 'आलोक्यमाण' ग. ७. 'गच्छन्' घ.
८. 'पृच्छन्' घ. ९. 'किं त्वया' ग. १०. 'प्रेक्षितेन' ग-घ. ११. 'करणसोहिलम्' घ.

श्रीटकामिनीमुत्पठयितुं इती सर्वेदग्न्य नायकस्य मुरतमात्ममन्यापदेशेनाह—

पुनरुत्तकरष्फालणउहअतडुहिहणवडुणसआइ ।

जूहादिवस्स माए पुणो वि जइ णम्मआ सहइ ॥ ४८ ॥

[पुनरुत्तकरष्फालणोभयतटोहिखनपीडनशतानि ।

यथापिपस्य मात पुनरपि यदि नर्मदा संहते ॥]

पुनरुत्त पुनःपुनरुत्तरेण पुण्ड्रादण्डेन हस्तेन चारुफालन जलादौ पृष्ठादौ च । उभयतट कूलद्वय पार्श्वद्वय च यथापिपस्य गजमुत्थस्य गोष्ठीनावकस्य च । मानरित्या-
धर्यपदैः संरोधनम् । नर्मदा नदी नर्म सुख ददातीति व्युत्पत्त्या क्रीडानुकूला नायिका
च । यद्वा सुन्दरि, कान्तसमीप गच्छेति वदन्तीं सखीं प्रति नायिकाया इवमुक्तिः ।
‘प्रेयमह यदि तस्य मुरतदुर्विदग्धस्य स्तनतटनखस्रुतोरस्ताङ्गनमर्दनशतानि पुनरपि
हियमिति भावः ॥

पूर्वसंकेतितस्य कार्पासीक्षेत्रस्य सापायतां खगदस्यैव खच्छन्दप्रचारयोग्यता च
गर्भं धावयन्ती डुलटा सोद्वेगमाह—

बोडमुणओ विअण्णो अत्ता मत्ता पेई वि अण्णत्थो ।

फलिह व मोडिअ महिसएण फो तस्स साहेउ ॥ ४९ ॥

[डुलटुनको विपन्न श्वश्रूमत्ता पतिरप्यन्यस्य ।

कार्पासपि मग्ना महिषकेण कस्तस्य कथयतु ॥]

बोडो डुलटुनकको वा । ‘बुडुमुणओ’ इति पाठे दृढशुनक इत्यर्थः । अन्यस्थो
देशांतरस्य । कार्पासी कर्पासवाटिका । तस्य निजपत्न्यु । ‘अत्ता मत्ता पेई वि अ-
ण्णत्थो’ इति स्थाने ‘अत्ता मत्तो पेइ णवसुराए’ इति क्वचित्पाठः । तत्र श्वश्रु इति
संरोधनम् । पतिर्नवसुरया मत्त इत्यर्थः ॥

कान्तेन खमुत्तेन इत्ता मदिरा मानिन्या मानमपनयतीति शिक्षयन्नागरिक सहच-
रमाह—

सकअग्गहरहसुत्तानिआणणा पिअइ विअमुइविइण्णम् ।

थोअ थोअ रोसोसइ व वअ माणिणी मैइरम् ॥ ५० ॥

[सकचमहरमसोत्तानितानना पिवति प्रियमुखमितीर्णम् ।

सोक सोक रोणीपधमिव पदय मानिनी मदिराम् ॥]

१ ‘कर्यणशतानि’ घ. २ ‘हसते’ घ. ३ ‘पेइ णवसुराए’ ख. ४. ‘सरअ’ ख.
ग ५ सकचमहोनामितानना पिवत्वाननविस्तीर्णम्’ घ. ६ ‘पदयत मानिनी सर-
कम्’ घ.

सकचप्रहं रमसेनोत्तानितमाननं यस्याः सा । 'सरज' इति पाठे सरकमिश्रमय-
मित्यर्थः ॥

नार्तस्तत्त्वविचारक्षमो भवतीति मध्याह्नवर्णनच्छेदेन प्रदर्शयन्नागरिकः सहवरमाह—
गिरसोत्तो त्ति भुजगं महिसो जीहइ लिहइ संतत्तो ।

महिसस्स कहुवत्थरहरो त्ति सप्पो पिअइ लालम् ॥ ५१ ॥

[गिरियोत इति भुजगं महियो जीहया लेटि सतप्तः ।

महिपस्य कृष्णप्रस्तरसर इति सर्पः पिबति लालम् ॥]

महिपस्य लालामिति संबन्धः ॥

क्षारिकायां रहस्याह्वानतः सलज्जा कुलवधूमांतुलानीमाह—

पञ्जरसारिं अत्ता ण जेसि किं एत्थ रहहरादिन्तो ।

वीसम्भजज्जिआइं एसा लोभाणै पजडेइ ॥ ५२ ॥

[पञ्जरशरीं मैतुलानि न नयति किमन रतिगृहात् ।

विसम्भजतिपतान्येषा लोकानां प्रकटयति ॥]

पञ्जरशरीं पञ्जरबद्धां क्षारिकाम् । विसम्भजत्पितानि गुरतगमयोदितवचनानि ।
लोकानां लोकेभ्यः । प्रकटयति आवयति ॥

दन्तधावनार्थं वरदभिकुञ्जपञ्चवभञ्जकं मिश्राप्यमदन्तं धार्मिकं भीषयन्ती कुलदा
तन्निषेधार्थमाह—

एदहमेत्ते गामे ण पडइ भिक्खर त्ति कीस मं भणसि ।

धम्मिअ करञ्जभञ्जअ जं जीअसि तं पि दे बहुअम् ॥ ५३ ॥

[एतावन्मात्रे ग्रामे न पतति भिक्षेति किमेति मां भणति ।

धार्मिकं करञ्जभञ्जकं यज्जीरसि तदपि ते बहुकम् ॥]

द्वार्पवचननिव्यासेनानुरागं व्यञ्जयन्ती कुलदा वृत्तगुण्येतनमिश्रुषोदकमाह—

जन्तिअ गुलं विमग्गसि ण अ मे इच्छाइ बाहसे जन्तम् ।

अणरसिअ किं ण आणसि ण रसेण विणा गुलो होइ ॥ ५४ ॥

[यान्त्रिकं गुडं विमार्गयसे न च ममेच्छया बाहयसि यद्यम् ।

आमिकं किं न जानामि न रसेन विना गुडो भवति ॥]

यान्त्रिको यन्त्रकर्मकारकः, यन्त्रं चक्षुषीलोचितं मुरलोचिन च । रणे द्रवोऽनुग-

१. 'शरं ति' क-ख. २. 'शधू' घ. ३. 'एतावन्मात्रेऽपि' क. ४. 'द्वार' घ.
५. 'गुलम्ह भग्गति' क-ख. ६. 'अन्वारिष्ठ' घ. ७. 'गुलो' घ.

गन्ध । अस्तिक द्रवस्यानुरागस्य च निधानानभिज्ञ । रसेन द्रवैगानुरागेन च विना गुडो न भवति नोत्पद्यते न प्राप्यते चेत्पर्यः । अतो मय्यनुराग्यस्वेति भावः ॥

ज्ञानोत्तीर्णा श्यामाङ्गी सानुरागं वर्णयन्कथितमहचरमाह—

पत्तणिअम्बप्फंसा ह्माणुत्तिण्णाएँ सामलङ्कीए ।

जलविन्दुएहिँ चिहुरा खअन्ति बन्धस्स व मएण ॥ ५५ ॥

[प्राप्तनितम्बस्पर्शाः ज्ञानोत्तीर्णाया श्यामलाङ्गया ।

जलविन्दुकैश्चिकुरा रुदन्ति बन्धसेव मयेन ॥]

ज्ञानावसरे लम्बमानाधिकुरा, प्राप्तसुन्दरीनितम्बस्पर्शसुप्ता पुनर्वन्धनेन तत्स्पर्श-
मुखविच्छेदं शङ्कमाना गलजलविन्दुच्छलेन रुदन्तीवेति भावः ॥

निर्भयाभिसारयोग्यता जार प्रति सूचयन्ती कुलटा वटप्रशसामाह—

गामङ्गणणिअडिअकङ्कवक्ख वड तुज्झ दूरमणुल्लगो ।

'तित्तिह्वपडिअकभोइओ वि गामो ग उव्विग्गो ॥ ५६ ॥

[ग्रामाङ्गणनिगडितकृष्णपक्ष वट तव दूरमनुल्लभ ।

दौ साधिकप्रतीक्षकभोगिकोऽपि ग्रामो नोद्विष्य ॥]

ग्रामाङ्गणे निगडितो वटः । सर्वदा स्थापित इति यावत् । तत्कार्यं कररत्नात्कृष्णपक्षो
यनेति वटविशेषणम् । निविडच्छायलेनान्धकारबाहुल्यात् । तव दूरमनुल्लभ इति स्व-
याच्छादितत्वादिति भावः । दौ साधिकः प्रतीक्षको यस्य भोगिरस्य स दौ साधिकप्र-
तीक्षकः । तदशो भोगिको भोगासक्तः कामरूपेणो यस्मिन् । एतादृशोऽपि ग्रामो
नोद्विष्य । अनुपलक्षिताभिसारतया राजभयशून्यत्वात् । तिसिन्ने दौ साधिकः । 'त-
न्तिह्वपडिअकभोइओ वि' इति पाठे तु चिन्तापरासहजभोचूकोऽपि । तन्तिचिन्ता
तद्युक्त प्रतिपत्तोऽमहानो भोक्ता ग्रामाधिकारी मन्त्रेत्सर्वं । तथा च यद्यप्येतस्य प्रा-
मस्य प्रभुरतितीक्ष्णो न्यायान्वेषणतत्परश्च तथापि सत्प्रसादाग्रमस्य कुलटाजनो नो-
द्विजत इति भावः ॥

वापि पतिं धारयन्ती सपरन्त्या सोपलम्भं दुधरितमाह—

सुप्पं हवुं चणआ ण मज्झिआ सो जुआ अइअन्तो ।

अत्ता वि घरे खुविआ भूआणें व वाइओ वंसो ॥ ५७ ॥

[सुप्पं दग्धं चणवा न भृष्टं स सुसातिकान्तः ।

अधूरपि गृहे कुपिता भूतानामिदं वदितो वराः ॥]

१. 'उत्तिण्णतिप्पकरभो इओ वि' ख. २. 'पणित' ग, 'निपणित' घ. ३. 'तत्त्वज्ञ-
प्रतिपक्षभोग्योऽपि' ग; 'उत्तीर्णतीक्ष्णभो इतोऽपि' ख. ४. 'दौ साधिके द्वारपालः'
इति विशदशेषः. ५. 'सुप्पं दग्धं' ग. ६. 'व' ग.

॥ इति । यं द्रष्टुं निर्गता सोऽपीत्यर्थः । भूतानां ध्रुतिविकलानाम् । तथा च यधिरा-
णामप्येवं वंशवादनवत्सर्वं तस्याद्येष्टितं व्यर्थमेव संवृत्तमिति भावः ॥

निवृत्तमप्यर्थं विदग्धा बुध्यन्त इति बोधयन्नागमिकः सहचरमाह—

पिसुणेन्ति कामिणीणं जललुकपिआवऊहणसुहेलिम् ।

कण्डइअकवोलुप्फुल्लणिचलच्छीइं वजणाइं ॥ ५८ ॥

[पिसुणयन्ति कामिनीनां जलनिलीनप्रियावगूहनमुखकेलिम् ।

कण्टकितकपोलोरफुल्लनिचलाक्षीणि वदनानि ॥]

पिसुणयन्ति सूषयन्ति जलनिमग्नस्य प्रियस्य यद्वगूहनमालिङ्गनं तेन यत्सुखं तदूषां
केलिमित्यर्थः । कण्टकितौ संजातपुलकौ कपोलौ येषां तानि । तथा हृदयविशेषादुत्कुम्भे
सम्भास्येन सारिवकभावेन निश्चये चाक्षिणी येषु तानि वदनानि ॥

यनमयूरललितं संकेतितलतागूहमहं गता, तं गुणं गत इति पारं भावयन्ती वृत्तदा
वर्षाप्रशंसामाह—

अहिणवपाडसरसिएसु सौहृदं साआइएसु दिअहेसु ।

रहसपसारिअगीवाणं णचिअं मोरवुन्दानम् ॥ ५९ ॥

[अभिनवप्रावृद्धमितेपु शोभते दैवमायितेषु दिवसेषु ।

रमसप्रसारितग्रीवाणां मूलं मयूरवृन्दानाम् ॥]

अभिनवानि प्रावृषो रक्षितानि मेघमञ्जितानि येषु तेषु । मेघान्तरितभारहरतया
दयामायितेषु रात्रिसदृशेषु दिनेषु मूलं शोभत इति संवन्धः । दिवैव संकेतस्थानस्याभि-
सारयोग्यता प्रतिपादयन्त्या दृष्ट्या दयमुक्तिरिति वक्षिम् ॥

महिषशाल्यां रममाणः कापि जातोत्साहनाय दोषं गुणोक्त्याह—

महिषस्वन्यविडग्गं घोडइं सिङ्गाहअं सिमिसिमन्तम् ।

आहअवीणासंकारसइमुहलं मखअवुन्दम् ॥ ६० ॥

[महिषस्वन्यविडग्गं धूर्जते शङ्काहृतं सिमिसिमायमानम् ।

आहृतग्रीणासंकारसन्दमुखरे मखववृन्दम् ॥]

धूर्जते भ्रमति । सिमिसिमायमानमित्यनुकरणम् । सिमिसिमन्तं कुर्वदित्यर्थः । आह-
ताया बीणाया इव श्री शंकरः शब्दस्तेन मुखरम् ॥

१. 'मूषयन्ति' ग. २. 'जललुक्कपिआवऊहणसुहेलिम्' घ. ३. 'कीम' ग.
४. 'कण्टकितकपोलो' पुनः निचललक्ष्मीकानि' घ. ५. 'दयामायमानेषु' ग. 'प्रामाणिकेषु'
घ. ६. 'गुणते' घ. ७. 'सिमिसिमायन्तम्' ग. 'सिमिसिमन्तम्' घ.

कुमुदसरस्तीरलतागृहे चन्द्रोदयपर्यन्तमह स्थित, त्व ■ न गतेति कुलटा धावयन्क-
धिदाह—

रेहन्ति कुमुददलनिघ्नलट्टिआ मत्तमहुअरणिहाआ ।

ससिअरणीसेसपणासिअस्स गण्ठि ठ्व तिमिरस्स ॥ ६१ ॥

• [राजन्ते कुमुददलनिघ्नलट्टिता मत्तमधुकरनिकावा ।

शशिकरानि शेषेप्रणाशितस्य ग्रन्थय इव तिमिरस्य ॥]

शाश्विधेप्रे छुरपत गच्छा सूचयती शाश्विगोपी सुरतसत्वरं जारमन्यमनस्कं कर्तुमाह—

उअह तरुकोडराओ गिंकेन्त पुसुवाणं रिञ्छोलिम् ।

सरिए जरिओ ठ्व दुमो पित्त व्व सलोहिअ वमइ ॥ ६२ ॥

[पश्यत तरुकोटराक्षिकां ता पुंसुकाना पङ्क्तिम् ।

शरदि ज्वरित इव द्रुमं पित्तमिव सलोहितं वमति ॥]

रममाणस्य जारस्य भयलरापनयनार्थं दुर्दिनाभिसारिका दुर्दिनानुबन्धलिङ्गमाह—

धाराधुव्वन्तमुहा लम्बिअवकरा णिउञ्चिअग्गीवा ।

वइवेढेनेसु फाभा सूलाहिणा व्व दीसन्ति ॥ ६३ ॥

[धाराधान्वमानमुखा लम्बितपक्षा निवृक्षितग्रीवा ।

धृतिवैष्टनेषु फाका शूलाभिन्ना इव दृश्यन्ते ॥]

कथ्येप्रसारितशलाघाकारचभुवान्छूटेना समन्ताद्भिन्ना इत्येव । एते च दुर्दि-
नस्य विरकालानुदितिसूचका इति भावः ॥

यद्यभसंभाषणविमुखी कलहातरितां शिक्षयती काविदाह—

ण वि सह अणालवन्ती हिअअ दूमेइ माणिणी अहिअम् ।

जह दूरविअम्भिअगरअरोसमग्गस्यभणिएहिं ॥ ६४ ॥

[नापि तथानालपन्ती हृदयं दुर्नोति मानिन्वधिकम् ।

यथा दूरविजृम्भितगुरुकरोपमप्यस्वमणिते ॥]

रोपपूर्वकाणि यानि मध्यस्थमणितान्युदासीनवचनानि तैरेत्यर्थः । सदुक्ता सारगुप्ता
चार्थे—'निष्ठुराणि न वक्तव्यो नातिशोभ च दर्शयेत् । न वाक्यैर्वाच्यसमिधैरुपात्तव्यो
मनोरमः ॥' इति ॥

१ 'कुमुद' घ. २. 'निघाता' ग; 'विहता' घ. ३ 'प्रसमितस्य' ग. ४ 'प्रणि-
रिव' घ. ५. 'निष्कामति' पुच्छतानां ग. ६. 'श्रोत्रिष्ठताना रिञ्छोलिम्' घ. ७ 'ध-
रापरोन्मुखा' घ. ८. 'न नित्यमनालपन्ती' घ. ९ 'दुर्मनायते' ग.

वर्षामु प्रियतमाविनाशमाशङ्कमानं पथिकमाश्राययंस्तत्सहचर आह—

गन्धं अरघ्यामन्तत्र पक्कलम्बाणं वाहभरिअच्छ ।

आसमु पहिअजुआणअ घरिणिमुहं मा ण पेच्छिहिसि ॥ ६५ ॥

[गन्धयैत्रिमन्यककदम्बानां वाष्पमूर्तस्य ।

आश्वासिहि पैथिकसुखं गृहिणीमुखं मा न प्रेक्षिष्यसे ॥]

न प्रेक्षिष्यस्य इति मा । किं तु प्रेक्षिष्यस एवेत्यर्थः ॥

गर्जितधवनसहितप्रियतमाविनाशः पथिको जलधरमाह—

गज्ज महं चिअ उषारिं सव्वत्थामेण लोहहिअमस्स ।

जलहर लम्बालइअं मा रे मोरेहिसि वराइम् ॥ ६६ ॥

[गर्ज समैवोपरि सर्वस्यान्ना लोहेहृदयस्य ।

जलधर लम्बालनिकां मा रे भारविष्यसि वराकीम् ॥]

सर्वस्यान्ना सर्वकलेन । रे इति संबोधनम् । लोहकन्दोरहृदयस्यावदर्जनं सोढुमहं समर्थः । सा पुनः शिरीषादिव मृद्वरी वर्यं जीविष्यतीति भावः ॥

हेमन्तोपक्रमवर्णनच्छलेन शालिक्षेत्रस्याभिसारयोग्यता धारयन्ती कुलटा का-
बिदाह—

पङ्कमइलेण छीरेकगइणा दिण्णजाणुवडणेण ।

आनन्दिज्जइ हलिओ पुत्तेण च सालिछेत्तेण ॥ ६७ ॥

[पङ्कमलिनेन क्षीरेकपायिना दत्तजानुवर्तनेन ।

आनन्दते हलिकः पुत्रेणैव शालिक्षेत्रेण ॥]

क्षीरे तण्डुलारम्भकं जलं दुग्धं च । जानु कक्षपरं उपकारद्वान्धनात्मन्यपि ॥

प्रातरैवाहं सकेतस्थानं शालिक्षेत्रं गता, एव तु न गत इति आरं धारयन्ती गीर्वाण-
भिसारिका सालेऽपि खलसंबोधनदुद्देशमाह—

कहं मे परिणइआले खलसङ्को होहिइ चि विन्तन्तो ।

ओणअमुहो ससूओ रुइ व माळी सुमारेण ॥ ६८ ॥

[वर्यं मे परिणतिकाटे खलसङ्को प्रविष्यतीति क्लितवत् ।

अग्रतमुगः ससूको रोदितीर शालिगुणारेण ॥]

१. 'आप्रायन्' घ. २. 'भरिनाश' घ. ३. 'पथिकेदानी' घ. ४. 'लोह' घ. ५. 'लोह' ग. ६. 'मारयति' घ. ७. 'वलेने' ख. ८. 'वलेने' घ. ९. 'अनन्दवति' घ. १०. 'भवतीति' घ.

खलस्य धान्यमर्दनस्थानस्य दुर्जनस्य च सङ्गः । अवनतं मुखं शीर्षाग्रं वदनं च यम्य
सः । शूकेन धान्यकण्टकेन सह वर्तत इति सशूकः । अथ च ससूओ सशोकः ॥

अभिसारस्थानगमनाय प्रदोषाभिसारिका स्वरयन्ती दूती प्रशोषवर्णनमाह—

संक्षाराओत्थइओ दीसइ गअणम्मि पडिवआचन्दो ।

रत्तदुऊलन्तरिओ थणणहलेहो व्व णवयहुए ॥ ६९ ॥

[संध्यारागायस्थगितो दृश्यते गगने प्रतिपच्चन्द्रः ।

रक्तदुकूलान्तरितः स्तनमखलेख इय नववध्वाः ॥]

अर्धचन्द्रावलोकनार्थं तु वादाकारं पश्यन्त देवरे कापि सपतिहासमाह—

अइ विअर किं ण पेच्छसि आआसं किं मुहा पओएसि ।

जाआइ बाहुमूलम्मि अद्धअन्दाणं परिवाडिम् ॥ ७० ॥

[अयि देवर किं न प्रेक्षसे आकाश किं मुधा प्रलोकयसि ।

जायाया बाहुमूलेऽर्धचन्द्राणां परिपाटीम् ॥]

जायाया बाहुमूलेऽर्धचन्द्राणां परिपाटीं परम्परां किं न प्रेक्षसे इति योजना ॥

वक्ष्यसि मनुष्येण मरिप्रियमेवमिति प्रोषितभर्तृका प्रियसमीपगामिनं पान्थमाह—

वाआइ किं भणिज्जउ केत्तिअमेत्तं व डिक्खए लेहे ।

तुइ विरहे जं दुक्खं तस्स तुमं चेअ गहिअत्थो ॥ ७१ ॥

[धौचया किं भण्यतां विद्यन्मात्रं धौ लिख्यते लेखे ।

तय विरहे यदु खं तस्य त्वमेव गृहीतार्थः ॥]

बहुत्वाद्दुःखानां किं वक्तव्यं क्रियद्वा लेख्यमित्यर्थः । गृहीतार्थो ज्ञाता । गृहीतो-
ऽर्थो ज्ञेनेति व्युत्पत्तेः । मद्भिरहेण त्वया यावद्दुःखमनुभूतमस्ति तेनैवानुमीयता मनुष्य-
मिति भावः ॥

कौऽपि कस्याश्चि-केशपाशप्रक्षेपां साभिलाषमाह—

मअणगिगणो व्व धूमं मोहणविच्छि व ओअदिट्ठीए ।

जोव्वणधअं व मुद्धा वहइ सुअन्धं चित्तरमारम् ॥ ७२ ॥

[मदनाभेरिव धूमं मोहनविच्छिक्वामिव लोकेट्टये ।

यौवनव्यजमिव मुग्धा वदति सुगन्धं चितुरमारम् ॥]

मोहनेति । अन्योऽप्येन्द्रजालिका विच्छिक्त्वा मोहं करोतीति भावः ॥

१. 'रागस्थगितो' घ. २. 'प्रतिपदाचन्द्रः' घ. ३. 'आयास' घ. ४. 'वाचा किं भ-
णिष्यति' घ. ५. 'व' घ. ५. 'गृहीतात्र' घ. ७. 'दितीअ' ख. ८. 'लोकेट्टयाः' ग-घ.

सखि, कथय तस्य रूपमिति पृच्छन्तीं संखीमन्या काचिदाह—
 रूअं सिद्धं चिअ से असेसपुरिसे णिअत्तिअच्छेण ।
 वाहोहेण इमीए अजम्पमाणेण वि मुहेण ॥ ७३ ॥

[रूपं शिष्टमेव तस्यासेपपुरुषे निवर्तिताक्षेण ।

भाणार्देणासा अजल्पतापि मुखेन ॥]

शिष्टमेव कथितमेव ॥

श्रियेण मह कीडारसादविदितनिशावसानां सखीं प्रबोधयन्ती सखी प्रभात-
 वर्णनमाह—

रुन्दारविन्दमन्दिरमभरन्दाणन्दिआलिरिञ्छोली ।

झणझणइ कसणमणिमेहल व्व महुमासलच्छीए ॥ ७४ ॥

[वृहदरविन्दमन्दिरमकरन्दानन्दिताल्पिक्रिः ।

झणझणायते कृष्णमणिमेखलेन मधुमासलक्ष्म्या ॥]

रुन्द वृहदरविन्दं तदेव मन्दिरं तत्र मकरन्देन पुष्परसेनानन्दितेत्थयः । उदीपन-
 विभाषप्रतिपादनेन संकेतस्थानलुपिपरं दृष्ट्वा इदं वचनमिति कथितम् ॥

जाताभिलाषः कथिद्विलासी कामपि कामिनीमाह—

कस्स करो बहुपुण्यफलेकतरुणो तुहं विसम्मिहइ ।

थणपरिणाहे मम्महणिहाणकलसे व्व पारोहो ॥ ७५ ॥

[कसं करो बहुपुण्यफलैकतरोत्तरं निभमिष्यति ।

स्तनपरिणाहे मन्मथनिधानकलश इव प्ररोहः ॥]

परिणाहो विशालता । विशालस्तन इत्यर्थः । पूर्वनिपातानियमात् । प्ररोहः पङ्कजः ।
 मन्मथनिधानकलशे तव स्तनपरिणाहे बहुपुण्यफलैकतरोः कस्य करः प्ररोह इव निभ-
 मिष्यतीत्यन्वयः ॥

यो यच्छीलः स साषायादपि तन्मात्मनो निवर्तयेत्तुं न शक्नोतीति निदर्शयमाण-
 रिक्तः सहचरमाह—

चोरा सभअमैतहं पुणो पुणो पेसअन्ति दिट्ठीओ ।

अहिरकिरअणिहिकलसे व्व पोडवइआयणुच्छे ॥ ७६ ॥

[चोराः समयसमृष्णं पुनः पुनः श्रेष्यन्ति दृष्टी ।

अहिरक्षितनिषिकलश इव प्रौढैरतिकामनोन्मत्तैः ॥]

प्रौढः दूरः पतिर्यस्यां सा प्रेङ्गतिः । चोराः परस्त्रीहारकाः परस्त्रापहारकाश्च ।
तथा च सर्वप्रायोऽस्या पतिरन्त्यातयिष्यतीति मया स्प्रष्टुमसमर्था अपि साभिलाष
पश्यन्तीत्यर्थः ॥

प्रवासोन्मुखस्य कान्तस्य गमनप्रतिषेधाय कापि वर्षावर्षेनच्छलेनाह—

उद्धहृद् नवतण्डुररोमाश्चपसाहिमाँई अङ्गाई ।

पाउसलच्छीअ पओहरेहिं परिपेहिओ जिञ्जो ॥ ७७ ॥

[उद्धहृदि नवतण्डुररोमाश्चपसाधितान्वहानि ।

प्राष्टुल्हस्या पयोधरैः परिप्रेरितो विन्ध्य ॥]

पयोधरैर्भेधै । अन्योऽपि कामुक कान्तया पयोधराभ्या स्तनान्यां परिप्रेरितं स-
रोमाश्चमुद्धहृतीति च नि ॥

कोऽपि प्रियाया साभिलाषमन्यापदेशेन प्रशंसामाह—

आम बहला वणाली मुखला जलरङ्गुणो जल शिसिरम् ।

अण्णजईणं वि नेवाह तह वि अण्णे गुणा के वि ॥ ७८ ॥

[सित्य बहला वणाली मुखला जलरङ्गुणो जल शिसिरम् ।

अन्यनदीनामपि रेवायास्तथाप्यन्ये गुणा केऽपि ॥]

आमेति स्त्रीकारे । बहला विस्तृता घनपक्षियेष्वादिस्थानीया । मुखला सशब्दा ज-
लरङ्गुण पक्षिविशेषा नूपुरादिस्थानीया । शिसिर अलमङ्गुलस्पर्शस्थानीयम् । गुणा
गाम्भीर्यादय सौभाग्यादयश्च । अन्ये इतरविलक्षणाः । नायकप्ररोचनाय वृत्त्या इयमु-
क्तिरिति पथित ॥

कोऽपि कस्याधिरसाभिलाष स्तनौ वर्णयन्सहचरमाह—

एह इमीअ जिअच्छह परिणअमालूरसच्छे धणए ।

तुक्के सत्पुनिसमणोरहे व्व हिअए अमाअन्ते ॥ ७९ ॥

[आगच्छतांसा निरीक्ष्य परिणतमालूरसदृशौ स्तनौ ।

तुक्कौ सत्पुरुषमनोरथाविध हृदये अमान्ती ॥]

मालुरो विल्व । प्राकृते द्विवचनबहुवचनयोरैक्यान्मनोरथानिवेल्लर्प । अतएव व-
चनभेदनिवन्धन उपमादोषोऽप्यत्र नेति ध्येयम् । पूर्ववद्वत्या उक्तिर्वा ॥

मेधागमस्य अमोक्षपक्तां सूचयन्ती कापि कान्तानवनाय सखीं त्वरयितुमाह—

इत्याहत्तिअ अहमहमिआइ चासागमन्मि मेहेहिम् ।

अठवो किं पि रहस्स छण्णं पि णहङ्गण गलइ ॥ ८० ॥

[हेसाहसि अहमहमिकया वर्षागमे मेपे ।

आश्रये निमिहि रहस्य छयमपि नमोद्वय गन्ति ॥]

नेपेदुप्रमयीनि भोचना ॥

गरी, हिमेवमरिचयलं प्रिय नानुवयसोति वदन्तीं सखीं वाचिहाह—

केसिअमेसं होहिइ सोदग्गं पिअअमस्स भमिरस्स ।

महिलामअणछुहाउल्लहइपरसविसरेवधेप्पन्तम् ॥ ८१ ॥

[नियन्माथ भविष्यति सीमाय प्रियतमस्य अमणशीलस्य ।

महिलामदनमुधातुल्ययस्यविशेषैर्गृह्यमाणम् ॥]

मदनलक्षणधुपयावृत्तेन महिलानां कटाक्षविधेरेण गृह्यमाणमिषयं । कगधुपस-
धैर्यस्य स्वत एवास्य वामस्य यासति । हिमस्य प्रियाधरणेनेति भावः ॥

वापि परवृत्त सर्वदापरगृहपरधीसभोगलम्पट स्वच्छात रात्रिद्वेपे कुट्टशब्देन
पारयतिराहृषा पलायनेच्छुमाह—

निअधणिअ उवउहसु कुकुइसदेन ससि वड्डिबुद्ध ।

परयसदियाससङ्किर निअप वि परम्मि मा भासु ॥ ८२ ॥

[निर्गृहीणीर्मुपगन्तुं कुकुटशब्देन हाटिति प्रतिबुद्ध ।

परवसतिपासशङ्किमिजकेऽरि गृहे वा भेपी ॥]

धणिभाशब्द सभायावचनो देसी । परवसति परगृहम् । पासोऽवस्थानम् ॥

तुर्दिनाभितारिका कान्तमन्यमनस्क वक्तुमाह—

सरपवणरअगलत्थिअगिरिऊडावड्ढणभिण्णदेहस्स ।

धुषाधुसइ जीअ व विज्जुआ कालमेहस्स ॥ ८३ ॥

[सरपवनरयगन्हसितगिरिकूटापतनभिन्नदेहस्य ।

धुक्धुवायते जीर्ण इव विपुलालम्बस्य ॥]

सरपवनेन रयेण वेगेन गलहसितं प्रेरितं अत एव गिरे कूटाच्छृङ्गाधदापतनं तेन
भिन्नदेहो विशीर्णदेहो वा कालम्बस्य जीव इव विपुलधुक्धुवायते । कम्पत इत्यर्थः ।
लोवेऽपि बलवता केनापि गन्हसितस्योच्चस्थानात्पतितस्य विशीर्णदेहस्य हृदये कम्पो
भवतीति भावः ॥

२. 'हसाहसिकाभि' ग. २. 'मात' ग, 'अहो' घ. ३. 'अवत' ग. ४. 'विशे
पान्द्रुत' ग, 'विशेषवैज्जानम्' घ. ५. 'धम्मा' ग. ६. 'उपगृहस रे' ग घ. ७. 'गि-
रिचूडा' ॥ ८. 'जीवमिव' क ख.

विनाशहेतुमपि मुग्धाः सुखहेतुं कलवन्तीत्यन्यापदेशेन कोऽपि सहचरमाह—
तैन्मिरपसरिअहुअवहजालापलीविण वणाहोए ।

किंसुअवणन्ति कलिउण मुद्धहरिणो ण णिकमइ ॥ ८८ ॥

[तौप्रवर्षप्रसृतहुतपहज्जालावलिप्रदीपिते वनाभोगे ।

निंसुकवनमिति कलयित्वा मुग्धहरिणो न निष्कामति ॥]

अत्र स्वतःसंघविना भ्रान्तिमदलंकारेण परस्त्रीलम्पटः कश्चिद्दिनाशहेतुमपि परस्त्री-
संसर्गं मुधाप्राप्य मन्दमानस्तद्ब्रह्म नि.सरतीति वस्तु व्यज्यते ॥

कापि आरं प्रत्यात्मनो वैदग्ध्यं स्थापयन्ती सखीमाह—

णिहुअणसिप्पं वैह सारिआइ उह्वाविअं म्ह गुरुपुरओ ।

जह तं वेळं माए ण आणिमो कथं वच्चामो ॥ ८९ ॥

[निधुवनशिल्पं तेषां शारिकयोऽपितमसाकं गुरुपुरतः ।

यथा तां वेलां मातर्न जानीमः कुत्र व्रजामः ॥]

निधुवनशिल्पं सुरतवैशिष्यम् । तां वेलां तस्यां वेलायाम् । 'कालकाव्यनोरसन्तसं-
भोगे' इति सप्तम्यर्थे द्वितीया । न जानीम इति ग्रीष्मवशादिति भावः ॥

कापि कवयुवत्यनुरक्तचित्तं कान्तमन्यापदेशेनाह—

पच्चगाफुल्लदल्लुल्लसन्तमअरन्दपाणलेह्लओ ।

तं णत्थि कुन्दकलिआइ नं ण अमरो मइइ काउम् ॥ ९० ॥

[प्रत्यग्रोफुल्लदल्लोलसन्मकरन्दपावतुंन्व ।

तस्मास्ति कुन्दकलिकाया यत्र अमरो धान्छति कर्तुंन् ॥]

नुग्रहादिकं सर्वं कर्तुमिच्छतीत्यर्थः ॥

कापि कस्याधिग्रवयुक्त्वाः सौभाग्यातिशयमन्यापदेशेनाह—

सो को वि गुणाइसओ ण आणिमो मांसि कुन्दलइआए ।

अच्छीहिं थिअ पाइं जेहिस्सइ जेष अमरेहिम् ॥ ९१ ॥

[स कोऽपि गुणातिशयो न जानीमो भौतुल्लविं कुन्दलटिकायाः ।

अश्विभ्यामेव पातुममिलध्यते येन अमरैः ॥]

अन्यासां लतानां पुष्पं मुखैः पीयते, इयं तु स्तनैवाश्विभिधेतुल्यैः ॥

१. 'अविरल' ग. २. 'अविरत' ग.; 'तपनशीलहुतवह' घ. ३. 'मुद्' ग. ४. 'तव'
न घ. ५. 'असाव' ग. ६. 'पाटम्' क. ७. 'लोलुपः' ग.; 'लम्पटः' घ. ८. 'मइति'
ग.; 'इच्छति' घ. ९. 'पातुम्' घ. १०. 'बहिणि कुन्दकलिआए' ग. ११. 'अहिल-
जइ' क-ग. १२. 'जानामि अणिति कुन्दकलिकायाः' ग. १३. 'मातुति' घ.

नायरूपलोभनाय दूती कम्पाधि सौन्दर्यातिशयमाह—

एष क्षिअ रूअगुणं गामणिधूआ समुन्वहइ ।

अणिमिसणअणो सअलो जीए देवीकओ गामो ॥ ९२ ॥

[एकैव रूपगुणं गामर्णादुहिता समुद्रहति ।

अनिमिपनयनं सैरुलो यथा देवीकृतो गामः ॥]

न निमिषतीत्यनिमिषम् । अनिमिषं नयनं यस्य स । गामस्यो जनोऽवलोकादौषु
आदेता पश्यन्कोऽपि निमेषं न करोतीति भावः ॥

अधरपानाभिलापं सूचयन्कोऽपि सदैवमध्यमभियोज्यामाह—

मण्णै आसाओ क्षिअ ण पाविओ पिअअमाहररसस्स ।

तिअसेहिं जेण रअणाअराहि अमअं समुदरिअम् ॥ ९३ ॥

[मन्ये आस्ताद् एव न प्राप्तं प्रियतमाधररगसं ।

निदर्शयेन रक्षाकरादमृतं समुद्रतम् ॥]

प्राणालयहेतुरपि न तथा व्यथयति यथा प्रियविरह इत्यन्यापदेष्टेन ज्ञेयशिक्षार्थं को
ऽपि प्रियमाह—

आअण्णाअद्धिअणिसिअअेहमम्माहआइ हरिणीए ।

अइसणो पिओ होहिइ त्ति बलिउ चिर दिट्ठो ॥ ९४ ॥

[आकर्णाकृतनिशितर्भहृदममाहृतया हरिण्या ।

अदर्शनं प्रियो भविष्यतीति धैलित्वा चिरं दृष्ट ॥]

न विद्यते दर्शनं यस्येयदर्शनं । दर्शनागोचरं इति यावत् । 'अइसण' इति कवि-
त्पाठः । तत्र दुर्दर्शनो दुर्लभदर्शन इत्यर्थः ॥

कस्मचिदाह शौर्यं दयापयन्ती सेवाकुशला श्री राजानमुद्दिश्याह—

विसमट्ठिअपिकेअअदसणे तुअस सत्तुपरिणीए ।

को को ण पत्थिओ पहिआण डिम्मे कअन्तम्मि ॥ ९५ ॥

[विपक्षस्थितपक्षैकाग्रदर्शने तव शत्रुगृहिण्या ।

कः को न प्रार्थितः पथिकानां डिम्भे रुदति ॥]

डिम्भे बालके रुदति सति तव शत्रुगृहिण्या पथिकानां मध्ये कः को न प्रार्थितः ।

१ 'सूआ गइवदणो महिलत्थ' ग. २ 'सुताएहपतेमहिलत्थ' ग. 'हपगुणा' घ.

३. 'सर्वो' ग. ४. 'मउसमुदाहआइ' ग. ५. 'अइसणो' ग. ६. 'महसमुदाहृतया' ग.

७. 'बलित' घ. ८. 'बालके' ग.

अपि तु सर्व एवेत्यर्थः । अथमाश्रय — वदाममनसद्वासापातवेषधुस्संश्लितचरणसचारम
शपपरिवारं विहाय बालकमादाय तव धनुर्विलासिनी महारथ्य प्राविशत् । तत्र च घन
घनायमानघनच्छदच्छायतघनिकरनिराकृतदिनकपोत्करदशमायिते वर्त्मनि गच्छती
धुपीडितस्य बालकस्याकन्दितमाकुर्य्य निपुणतरं निरीक्षमाणा विषमशाया तगतम
कमाघफलमद्राक्षीत् । तत्पातनार्थं च पा शानयाचतेति ॥

कोऽपि सौन्दर्यदिगुणयुक्ता मालाकारस्त्रिय साभिजाय पश्य सहचरमाह—

मालारी ललितलुलितबाहुमूलेहि तरुणहिअमाइ ।

उद्धरइ सज्जुद्धरिआइ कुसुमाई दावेन्ती ॥ ९६ ॥

[मालाकारी ललितोललितबाहुमूलाभ्या तरुणहृदयानि ।

उद्धुनाति संधोज्ज्वलनानि कुसुमानि दर्शयन्ती ॥]

मालाकारी मालाकारस्त्री । ललिताभ्या सुन्दराभ्यामुल्लङ्घिताभ्या चक्षुःशब्दाभ्या बाहुभू
लाभ्यामुपलक्षिता । उद्धुनाति व्याकुलीकरोति ॥

कोऽपि व्यापक्षिया स्तनोद्गम साभिजाय वणय सहचरमाह—

मज्झो पिओ कुअण्डो पहिनुमाणा सबत्तीओ ।

जह जह वड्डन्ति थणा तह तह झिज्जन्ति पत्थ बाहीए ॥ ९७ ॥

[मध्य म्रिय कुटुम्ब पत्नीयुवान सफल्य ।

यथा यथा वर्धते स्तनौ तथा तथा क्षीयन्ते पथ व्याप्या ॥]

व्याप्या व्यापक्षिया ॥

यो वदमित्युक्तं स च्छलेनापि स्व(तत्)कार्यं साधयतीति निदक्षयन्कोऽपि सह
चरमाह—

मालारीए वेहहलवाहुमूलावलोकनसमझो ।

अलिअ पि भमइ कुसुमघपुच्छिरो पमुल्लुआणो ॥ ९८ ॥

[मालाकार्या सुन्दरबाहुमूलावलोकनसमृष्ण ।

अलीकमपि भ्रमति कुसुमार्घ्यप्रक्षाल पासुल्लुआ ॥]

पासुल्ल परस्त्रीरम्पट । अर्घ्यो मूल्यम् । वेहहल इति सुन्दरार्थं देशी ॥

प्रसृतपूववृत्तमुरतसंवेतस्यानादिक तवाह न कोऽपीति वदत्त नायक कापि सोप
लम्भमाह—

अकअण्णुअ घणवण्ण घणअण्णन्तरिअतरणिअरणिअरम् ।

जइ रे रे वाणीर रेवाणीर पि णो भरस्ति ॥ ९९ ॥

१ मालाकारस्त्री ग २ 'व्याकु'यति ग ३ 'मध्यस्थितानि घ. ४ 'ददती
ग ५ कुसुममूल्यप्रक्षाल' ग, कुसुमार्घ्यप्रक्षाल घ.

[अवृत्तश्च घनवर्णं घनवर्णान्तरिततरणिकरनिकरम् ।

यदि रे रे वानर रेवानीरमपि न स्मरति ॥]

घनवर्णं मेघश्यामम् । घनैर्निविडैः परैरन्तरित आच्छादितस्तरणिरनिकरः सूर्यर-
दिसम्पूहो येनेति वानीरमपिमेघवचम् । रे रे इति साक्षेपसंनोधनम् । वानीर वेतसकुञ्ज यदि
न स्मरति तर्हि या स्मर । रेवाया नर्मदाया नीरं तलमपि कथं न स्मरसीत्यर्थः ॥

कापि गृहपतिमुना हलिकमुत्तानुरागं विरहवैधुर्यं च प्रतिपादयन्ती हलिकमुतोपाल-
गमपुर सरवाह—

मन्दं वि ण आणइ हलिकमनन्दणो इह हि उड्डुगामम्मि ।

गहवइमुया विधज्जइ अबेज्जए कम्म साहामो ॥ १०० ॥

[मन्दमपि न जानाति हलिकमनन्दन इह हि दग्धपात्रे ।

गृहपतिमुता विपद्यतेऽनेषके कस्य कथयाम् ॥]

मन्दमन्त्रमपि । अवैद्यके वैद्यरहिते । हलिकपुत्रनिमित्तमनन्दपञ्चगणपानमहारम-
नैरितद्वया प्राप्तौकुता विपद्यते । हलिकपुत्रश्च पशुकल्पः । अतः कस्य कथयामी-
त्यर्थः ॥

रसिमज्जणहिअजवइए कइवच्छलपमुहसुकइणिम्मइए ।

सत्तसजम्मि समत्तं सट्ट गाहासहं एअम् ॥

[रसिमज्जनद्वयदयिते करिस्तत्प्रमुखमुकविनिर्मिते ।

सप्तशतके समाप्त पञ्च गाथाशतकमेतत् ॥]

सप्तमं शतकम् ।

पशुद्वन्द्वस्याध्वैकमन्योव्यानुरागो न पुनस्तथेति वृत्ती मन्दलेह नावरमुपालब्धुमन्या-
पदेनोवाह—

एअज्जमपरिरक्खणपहारसमुहे कुरज्जमिहुणम्मि ।

वाहेण मण्णुविअलन्तवाहधोअं धणुं मुक्कम् ॥ १ ॥

[अन्योन्यपरिरक्षणप्रहारसमुत्थे कुरज्जमिथुने ।

ध्याधेन मन्थुनिर्गेलद्वाप्पघोत धनुर्मुक्तम् ॥]

प्रहारसमयेऽन्योन्यस्य परिरक्षणार्थं कुरज्जमिथुने समुत्थे स्थिते सति मन्थुना द्वेन्येन
विगलन्यो बाणस्तेन घोतः प्रकालितः धनुर्व्याधेन मुक्तम् । लक्षमित्यर्थः । 'मन्थुर्द्वेन्ये
वृत्ती वृत्ति' इति हेमचन्द्रः ॥

१ 'सुत' वा. २. 'अवैद्ये' वा. ३. 'एककम्' वा. ४. 'प्रसरद्वाण' वा.

मन्दभेद नायकमनुकूलयितुं दत्ती नायिकाया विरहवैधुर्यमाह—

ता सुहृअ विलम्ब खण भणामि कीअ वि कएण अलमह वा ।

अविआरिअकज्जारम्मआरिणी मरउ ण भणिस्सम् ॥ २ ॥

[तत्सुमग विलम्बख क्षण भणामि कस्या अपि कृतेनालमघ वा ।

अविचारितकार्यारम्भकारिणी प्रियता न भणिष्यामि ॥]

सेष्यां काचिद्भूतुं प्रेमव्यापारिकमद्विलानुराग सूचयन्ती सखीमाह—

भोइणिदिण्णपहेणअचक्खिअदुस्सिक्खिअओ हलिअउत्तो ।

एत्ताहे अण्णपहेणआणँ छीवोहअ देई ॥ ३ ॥

[भोगिनीदत्तप्रेहेणकात्सादनदु शिक्षितो हलिकपुन ।

इदानीमन्यप्रहेणकाना छी इति वचनं ददाति ॥]

भोगिनी प्रामव्यापारिकी । सया दत्तानि यानि प्रहेणकानि मोदकादिवाचनकानि तेषां चवखणमात्सादनं तेन दु शिक्षित । 'प्रहेणअ वाचनकम्' इति शारावली । छी इति निन्दानुकरणं लोके प्रसिद्धम् ॥

अज्ञातरत्नविरामा कीडाप्रसक्ता सखीं प्रबोधयितुं कापि प्रभातं वर्णयति—

पञ्चूसमऊहावलिपरिमलनसमूत्तसन्तवत्ताणम् ।

कमलाणँ रअणिविरमे निजलोअसिरी महम्महइ ॥ ४ ॥

[प्रत्यूषमयूखावलिपरिमलनसमुच्चुत्तसन्नाणम् ।

कमलानां रत्नविरामे जितलोकश्रीर्मह्यहावते ॥]

प्रत्यूषे या मयूखावलिर्भादादित्यस्य । पञ्चूहश्चन्द आदित्यवचनो देशीति कश्चित् । जिता लोका यया सा यया । जीवलोकधीरिति वाध । महमहावतेऽतिदुरभिर्भवतीत्यर्थः ॥

कापि कस्याधिपरिहासव्याजेन सौभाग्यस्तुतिमाह—

वाउत्वेहिअसाउलि यएसु पुडदन्तमण्डल जईणम् ।

चहुआरअ पइ मा हु पुत्ति जणहासिअ सुणसु ॥ ५ ॥

[वातोद्वेहितवस्त्रे स्वगय स्फुटदन्तमण्डल जघनम् ।

चतुकारकं पतिं मा सद्धं पुनि जैनहास्यं कुरु ॥]

जनैर्हंसत इति जनहास्यः । जनहासास्पदमित्यर्थः । साउलीति वस्त्रवाचको देशी ॥

१ 'भणिष्ये' ग घ. २ 'मोदकभक्षण' घ. ३ 'एतावताशेषप्रहेणकानां मुख विधूतनं ददाति' ग, 'इदानीमन्यमोदकानामपि विकारं ददाति' घ. ४ 'छीवोदय मुखविकार' इति कुलबालदेव. ५. 'जीवलोकधी' ग, 'आमोदधी' घ. ६ 'प्रिय' ग. ७ 'जनदक्षिण' ग.

कामुजजगत्कान्तनिरासाय दूती वध्वा पूर्ववृत्तान्यथाभावमाह—

वीसत्यहसिअपरिसक्किआण पढम जलअली दिण्णो ।

पच्छा बहुअ गहिओ छुडम्बमारो निमज्जन्तो ॥ ६ ॥

[विषम्वहसितपरिक्रमाणा प्रथम जलाञ्जलिर्दत्त ।

पश्चाद्बध्वा गृहीत कुटुम्बमारो निमज्जन् ॥]

परिषदित परिक्रमणम् । कुटुम्बमारानुरोधाद्विसम्वहसितादिरप चायत्नं क्षण-
मिति भावः ॥

वापि सद्यः उपरिहास सौन्दर्यप्रशंसामाह—

गम्मिहिसि तस्स पास सुन्दरि मा तुरअ बहुउ मिअङ्को ।

हुद्धे हुद्ध मिअ चन्दिआइ को पेच्छइ मुह दे ॥ ७ ॥

[गमिष्यसि तस्य पार्श्वं सुन्दरि मा त्वरस्व वर्धतां मृगाङ्क ।

दुग्धे दुग्धमिव चन्द्रिकाया क प्रेक्षते मुख ते ॥]

वापि प्रामाणीपुत्र प्रसन्नुरागातिशय सूचयन्ती समानशीलं मातुलानीमाह—

जइ जूरइ जूरउ णाम मामि परलोअवसणिओ लोओ ।

तह वि थला गामणिणन्दणस्स वअणे बलइ दिट्ठी ॥ ८ ॥

[यदि श्लिषते श्लिषता नाम मातुलाणि परलोकव्यसनिको लोकः ।

तथापि थलाङ्गामणीन दनस्य वदने बलते दृष्टिः ॥]

नायिकाया अत्रागातिशय प्रतिपादयन्ती दूती नायकमाह—

गेह व वित्तरहिअ णिअरकुहर व सल्लिमुण्णनिअम् ।

गोहणरहिअ गोट्ट व तीअ वअण तुह विओए ॥ ९ ॥

[गृहमिव वित्तरहित निर्झरकुहरमिव सल्लिलशून्यम् ।

गोपनरहित गोष्ठमिव तस्या वदनं तव वियोगे ॥]

न शोभत इति शेषः ॥

कस्याधिष्ठानापातन्त्यमनुरागातिशय च प्रतिपादयन्ती दूती नायकमाह—

तुह दसणेण जणिओ इमीअ लज्जाउलाइ अणुराओ ।

दुग्गाअमणोरहो विअ हिअअ शिअ जाइ परिणामम् ॥ १० ॥

१ 'विषम्वहसितपरिक्रियिताना' ग, 'विषम्वहसितपरिक्रियिताना' घ. २ 'सि-
पति श्लिषतु नाम भविनि' ग, 'कुप्यति कुप्यतु नाम मातुलि' घ. ३ 'सल्लिलशून्य-
रुतम्' ग.

[तव दर्शनेन चनितोऽस्या लज्जालुकाया अनुरागः । •

दुर्गतमनोरथ इव हृदय एव याति परिणामम् ॥]

तज्जवाशालुकापि न बदतीत्यर्थः ॥

किमिति कृशासीति विदेशादागत्य हासपूर्वकं पृच्छन्तं कान्तं प्रति नायिकाया उक्ति-
होतालं कापि सखीशिक्षार्थमाह—

जं तणुआअइ सा तुह कएण किं जेण पुच्छसि हसन्तो ।

अह गिम्हे मह पअई एव्वं मणिऊण ओरुणा ॥ ११ ॥

[या तन्नूयते सा तव कृतेन किं येन पृच्छसि हसन् ।

असौ ग्रीष्मे मम प्रवृत्तिरिति^१ भणित्वारुदिता ॥]

या महिला तन्वी भवति सा सर्वा त्वचिमितमिति नियमो नास्तित्वर्थः । किमिति
तर्हि तव कार्यं तन्माह—असाविति । अह इत्यसावित्यर्थे देयी ॥

अविच्छिन्नप्रियालिङ्गनाभिलाषमगमनः प्रकाशयन्ती काव्यन्यापदेशेन वक्ष्यमाह—

घण्णक्कमरहिअस्स वि एस गुणो णवरि चित्तकम्मस्स ।

णिमिस्स पि जं ण सुखइ पियो जणो गाढमुपज्जो ॥ १२ ॥

[वर्णक्रमरहितस्याप्येष गुणः केवलं चित्तकर्मणः ।

निमिषमपि यत्र सुखति प्रियो जनो गाढमुपगूढः ॥]

वर्णक्रमो हरितपीतादिवर्णविन्यासः । चित्रकर्मण आलेह्यस्य । चित्रे प्रिययोपगूढः
प्रियः प्रियां क्षणमपि न मुञ्चतीत्यर्थः । यद्वा वर्णक्रमो गुणविशुद्धिपरम्परा तद्वद्विहितस्य ।

चित्रस्य विचित्रस्य कर्मणः । धर्माधर्मादिरूपस्येत्यर्थः । आत्मा धर्माधर्मादिक क्षणमपि
न मुञ्चतीत्यर्थः । केचित्तु प्राज्ञाणादिवर्णक्रमरहितस्यापि चित्तभग्मणो चित्तजन्मनो
मनमयस्यायं कोऽपि गुणो येन प्रियः प्रियो क्षणमपि न त्यजतीत्यर्थ इति व्याचक्षते ॥

कोमला नवोदामविदग्धः कोऽपि रमयतीत्यन्यापदेशेन कापि सखीमाह—

अविहत्तसंधिवन्धं पदमरमुद्धमेअपाणलोहिलो ।

एव्वेलिडं ण आणह खण्डइ कलिआमुहं भमरो ॥ १३ ॥

[अविमत्तसंधिवन्धं प्रथमरसोद्भेदपानर्तुन्धः ।

उद्भेदलितुं न जानाति खण्डयति कलिकामुखं भ्रमरः ॥]

अत्र कलिकामशुपुष्पान्तन्यानेनाशुद्धिरवयव-संधि नायिकामविदग्धः कोऽप्युपमो-

१. 'लज्जालो.' ग, 'लज्जावत्या.' घ. २. 'तन्वीभवति' ग. ३. 'कृते' ग-घ.
४. 'अप' ग, 'एपा' घ. ५. 'एव्वं भणित्वा रोदितुं एवम्' ग. ६. 'चित्तभग्मस्स'
ग. ७. 'चित्तजन्मनः' ग. ८. 'लोमिष्ठ.' ग, 'लोमकात्' घ. ९. 'उद्भेदयितु' ग.

कुमिच्छति । न च जानाति केवलं पीडयतीति वस्तु व्यज्यते । उद्वेगितुं विहासयि-
शुम्, पक्षे संमुखीकर्तुम् ॥

विपरीतरताय प्रियमुत्साहयितुं कविदाह—

दरवेविरोरुजुअलासु मउलिअच्छीसु लुलिअचिहुरासु ।

पुरिसाइरीसु कामो पिआसु सज्जाउहो वसइ ॥ १४ ॥

[इपेद्वेपनरीलोरुपुगलासु मुकुलितायीसु लुलितविपुरासु ।

पुरुषायितशीलासु कामः प्रियासु सज्जापुषो वसति ॥]

ममाप्रियं कर्तुं नाईषीति वदन्तं वान्तं मानिनी सोद्वेगमाह—

जं जं ते ण सुहाअइ तं सं ण करेमि जं ममाअत्तम् ।

अहमं चिअ जं ण सुहामि सुहअ त किं ममाअत्तम् ॥ १५ ॥

[यद्यत्ते न मुँछायते तत्तन्न करोमि यन्ममायत्तम् ।

अहमेव यत्त मुँछाये मुगम तत्किं यमायत्तम् ॥]

न मुँछाये न मुखायामि ॥

कपोलादाय प्रियं समुत्साहयितुं कुलटा लज्जास्वभावमाह—

वावारविसंवाअं सअलावअवाणं कुगइ हअलज्जा ।

सवणाणं उणो गुरुसंणिहे वि ण पिरुब्झइ पिओअम् ॥ १६ ॥

[व्यापारविसंवाद सवल्लययवाना करोति हस्तलज्जा ।

श्रवणयो पुनर्गुरुसंनिधावपि न निरुणद्धि नियोगम् ॥]

विसंवादो व्यापातः । नियोगो व्यापारः । त्वदासकृतया नेत्रादिव्यापारः सर्व ए
विसंवादं प्राप्तः । केवलं श्रुतुरादिसंनिधावपि त्वत्कथाश्रवणे श्रवणौ व्यापारयतीति ना
यक प्रति दूतीयवनमिदमिति कथितम् ॥

आगतप्रायस्ते प्रेयानिति सखीभिराश्रयिता प्रेषितमर्तुका सनिर्वेदमाह—

किं मणह मं सहीओ मा मर दीखिइह सो जिअन्तीए ।

फज्जालाओ एसो सिणेहमग्गो तेण ण होइ ॥ १७ ॥

[किं मणय मा सख्यो मा प्रियस द्रक्ष्यते स जीवन्त्या ।

कार्यालाप एष जेहमार्ग पुँनर्न भवति ॥]

भवतीभिर्बुध्यते तत्कार्यपर्यालोचनयानुष्ठानं शक्यते । न च स्नेहः कार्यं पर्यालोच-
यतीत्यर्थः ॥

मन्दस्नेहं निष्करणं च नायकमुपालब्धमन्यापदेशेन कानिदाह—

एकलमओ दिट्ठीअ मइअ तह पुलइओ सअद्धाए ।

पिअजाअस्स जह, धणुं पडिअं वाहस्स हत्थाओ ॥ १८ ॥

[‘एकाकी मृगो दृष्ट्वा मृग्या तथा प्रत्येकितः सतृष्णया ।

प्रियंजायस्य यथा धनुः पतितं व्याघस हस्तात् ॥]

मृग्याथधुर्निभालनेनाभीयप्रियाविलोचनमनुस्मरतो व्याघस हस्तारुहणया धनुः
पतितमित्यर्थः । अतिशयमरस इति तस्य व्याघस्याप्येवं कथना स्नेह, ननु तवेति
भावः ॥

नायिकायाः सौन्दर्यातिशयं प्रतिपादयन्ती दूती बलवत्तं नायकमन्यापदेशेन सोपा-
लम्भमाह—

गैलिणीमु भमसि परिमलसि सत्तलं मालई पि णो मुअसि ।

तरलत्तणं तुह अहो महुअर जइ पाँडला हरइ ॥ १९ ॥

[‘नैलिनीषु भ्रमसि परिमृद्वासि सत्तलं मालतीवपि नो मुबसि ।

तरलत्वं तनाहो मधुकर यदि पाँडला हरति ॥]

‘सत्तला नवमालिका’ इत्यमरः । कस्याचिन्निष्ठे भ्रमस्येव कानिपीड्यस्येव का-
चिद्वचनमात्रेण संभावयति । एतच्च तत्र आद्यत्वं पाँडलवर्णा सैवापहर्तुं समर्था ना-
भ्येति भावः ॥

कामुकजनप्रलोमनाय दूती नायिकायाः स्तनौ वर्णयति—

दोअहुलअरुपालअविणद्धसविसेसणीलरुअइआ ।

दावेइ धणत्थलवणिअं व तरुणी जुअज्जणाणम् ॥ २० ॥

[‘द्विधहुलककपाटकपिनद्धसविशेषनीलकण्ठमुकिका ।

दर्शयति स्तनखलवर्णिकामित्र तरुणी युवजनेभ्यः ॥]

महुलपरिमितं सुविजन्मस्थले कपाटवत्पार्श्वद्वये बद्धवति तत्कपाटकम् । तेन पि-
नद्धो नीलकण्ठो यस्याः सा । तथा च तत्र स्तनैकदेशदर्शनाद्वर्णिकामिव दर्शयतीत्यु-
त्प्रेक्षा । दक्षुपरीक्षार्थं यद्वत्प्रेक्षादेशप्रदर्शनं तद्वर्णिकेत्युच्यते ॥

१. ‘एकाकिमृगो’ घ. २. ‘प्रियजानेतिवचितम्’. ३. ‘कमलेषु’ ग. ४. ‘कह-
त्थपाडला’ ख. ५. ‘कमलेषु’ ग. ६. ‘कपित्थपाटला’ घ. ७. ‘महुलकृतजालक’
घ. ८. ‘कमुका’ ग. ९. ‘यूव.’ ग, ‘यूनाम्’ घ.

प्रतीकारोऽपि कविदपकाशय मवतीति निर्दशयन्त्वाधिसयायमाह—

रक्तेऽ पुत्तमं मत्स्यपण ओच्छोममं पढिच्छन्वी ।

अंसुहिं पदिअघरिणी ओद्धिज्वन्तं ण लक्खेइ ॥ २१ ॥

[रक्षति पुत्रकं मस्तकेन पेटलप्रान्तोदकं प्रैतीच्छन्ती ।

अश्रुभिः पयिकगृहिणी आर्द्रमिवन्त न लक्षयति ॥]

ओच्छोधध इति च्छदिप्रान्तजलार्थको देशीशब्दः । प्रतीच्छन्ती गृह्णती ॥

सरातीरस्य पयिकाकान्तरत्वेन सचेतस्थानमहं जारं श्रावयन्ती वापि शरद्वर्षेणच्छले-
नाह—

सरए सरम्मि पदिआ जलाइँ कन्दोदसुरदिगन्धाइँ ।

धवलच्छाइँ सज्झा पिअन्ति दइआपँ व मुहाइँ ॥ २२ ॥

[शरदि सरसि पयिका जलानि नीलोत्पलमुरमिवन्धीनि ।

धवलच्छानि सत्पुष्पा विवन्ति दयितानामिव मुखानि ॥]

कन्दोऽ नीलोत्पलम् । तेन मुगन्धीनि । पक्षे वद्वत्पुष्पगन्धीनि । धवलानि च तान्य-
च्छानि च । पक्षे धवलच्छाणि । धवलनयवानीलवर्णं । सत्पुष्पा. सपिपासा । पक्षे सा-
भिलाषा ॥

कर्ममयादानागच्छन्तं नायके प्रति वृत्तीमार्गस्य मुगमत्प्रतिपादनच्छलेन नायि-
काया भवुरागातिशय प्रतिपादयन्ती आह—

अवभन्तरसरसाओ उघरिं पव्वाअवद्धपद्माओ ।

वद्धम्मन्तम्मि जणे समुत्ससन्ति व्व रच्छाओ ॥ २३ ॥

[अभ्यन्तरसरसा उपरि प्रैवातवद्धपद्मा ।

वद्धममाणे जने समुच्छसन्तीव रैवा ॥]

प्रवातेन प्रवृद्धवातेन वद्धः पक्षे वासु ताः । अत्र समासोपत्यसंभारेण प्रवातप्रायमु-
द्वजमभयेनोपरि वृक्षत्वेऽभ्यन्तरतुरक्ष्व नायिकाया व्यज्यते ॥

विष्टकक्षादकीर्णौ कस्याचित्स्वनौ सामिगार्यं वर्णयन्नागरिकः सहचरमाह—

मुहुपुण्डरीमलाभाइ संठिआ उअह राअहंसे व्व ।

छणपिट्टुकुट्टणुच्छलिअधूलिधवले धणे बहइ ॥ २४ ॥

१. 'अच्छोदकं' ग घ. २. 'प्रतीक्षमाणा' घ. ३. 'वमल' घ. ४. 'धवलानि'
५. ६. 'आन्यावद्धपद्मा' ग, 'मुच्छसदपद्मा' घ. ६. 'वद्धयति' ग. ७. 'प-
नात' ग. .

[मुखपुण्डरीकच्छायाया सस्थितौ पश्यत राजहंसाविव ।
क्षेपिष्टकुट्टनोच्छलितधूलिधवलौ स्वनौ वहति ॥]

क्षण उत्सवः ॥

कयोधिदन्योन्यासुरार्गं प्रकटयन्नागरिकः स्ववैदग्ध्यव्यापनार्थमाह—

तद् तेणवि सा दिद्धा तीज वि तद् तस्स पेसिआ दिट्ठी ।

जह् वोण्ह वि समअं चिअ णिव्वुसरआई जाआई ॥ २५ ॥

[तथा तेनापि सा दृष्टा तयापि तथा तैस्त्रे प्रेषिता दृष्टिः ।

यथा द्वौवपि सममेव निर्वृत्तरतौ जातौ ॥]

सममेव एककालमेव ॥

जारं प्रत्यभिसाररसिकता सूचयन्ती कुलटा ग्रीष्मवर्णनमाह—

माउलिभापरिसोसण कुंडङ्गपसलणसुलहसंकेअ ।

सोहरगकणअकसवट्ट गिण्ह मा कह वि सिजिहिसि ॥ २६ ॥

[स्वल्पस्वातिदापरिशोषण निकुञ्जपत्रकरणसुलभसवेत ।

सौमान्यकनकवपपट्ट ग्रीष्म मा कथमपि 'क्षीणो भविष्यसि ॥]

बाउलिभाशब्द स्वरूपस्वातिदाया देशी । स्वल्पस्वातिकान्ता परिशोषणेन निकुञ्जानां
पत्रसपत्न्या च सुलभं संकेतो यत्र स त्रयेति ग्रीष्मसंबोधनम् ॥

दुर्जनसंसर्गादुद्भिन्नं गुणशालिनं विदग्धा काप्यन्यापदेशेन प्रवृत्तिपाठवार्थमाह—

दुस्सिक्खिअरअणपरिक्खएहिं चिट्ठोसि पत्थरे तावा ।

जा तिलमेत्त वट्टसि मरगअ का तुम्ह मुल्लकहा ॥ २७ ॥

[द्वि शिक्षितरत्नपरीक्षकैर्धृष्टोऽसि प्रसरे तावत् ।

यावत्तिलमानं वर्तसे मरकतं वा तव मूल्यकथा ॥]

द्वि शिक्षिता अतत्त्वज्ञा दुर्बेदग्धाश्च । अहं त्वतिशयितव्युत्पन्ना सर्वे तत्त्व जानामीति
भावः ॥

पत्नीनिवासिन्या विलासिन्या द्यूती पत्नीमत्तसङ्ख्यानाभ्युच्चन्ते तत्त्वान्तं तत्समीपगम-
नायोत्साहयितुमाह—

जैह चिन्तेइ परिअणो आसङ्कुइ जह् अ वस्म पडिवक्खो ।

घालेण वि गामणिणन्दणेण सैह रक्खिआ पड्डी ॥ २८ ॥

१. 'वन' घ. २. 'तस्य' घ. ३. 'द्वयोरपि सममेव निर्वृत्तरतानि जातानि' घ.

४. 'णिउज्ज' ख. ५. 'दापिका' घ. ६. 'क्षयिष्यसि' घ. ७. 'तद्' ग. ८. 'तद्'

नास्ति.

[यथा चिन्तयति परिजन आशङ्कते यथा च तस्य प्रतिपद्यते ।

वालेनापि ग्रामणीनन्दनेन तैश्च रक्षिता पत्नी ॥]

कथमेव वालेन रक्षा कर्तव्येति परिजनचिन्तयति । बाळोऽयमस्माभिर्प्राप्त इति प्र-
तिपद्यन्त्यतीत्यर्थः ॥

पत्युर्विक्रमयुगं व्यापयन्ती व्याधवधू पृथक्त्वमं पृच्छन्त पथिकमाह—

अण्णेषु पहिअ पुच्छसु वैहअपुच्छेसु पुसिअचन्माइ ।

अम्ह वाइजुआणो हरिणेषु घणुं ण णामेइ ॥ २९ ॥

[अन्येषु पथिक पृच्छन्त्याधकपुत्रेषु पृथक्त्वमिति ।

अस्माकं व्याधयुवा हरिणेषु घनूर्न नामयति ॥]

पृथक्त्वमं पृथक्त्वमं । 'गोवर्णपृथक्त्वमं पृथक्त्वमं मृगा' इत्यमरः । प्रवण्डदोर्ण्ड-
बलमदोर्दोऽयं कथयथा मृगाश्च इति । किंतु मत्तमातङ्गाविति भावः ॥

वधू प्रति सामूया व्यापमाता वन्धुजनमाह—

गजवहुवेह्वअरो पुत्तो मे एक्काण्डविणिताई ।

तह सोह्माइ पुँछइओ जह वण्डवरण्डअ वहइ ॥ ३० ॥

[गजवधूवैधव्यकर पुत्रो मे एक्काण्डविनिपाती ।

तथा क्षुपया प्रैलेवितो यथा वण्डसमूह वहति ॥]

'विण्डिओ' इति कचित्पाठः । तत्र विलङ्घित शेषित इत्यर्थः । वरण्डक समूहः ।
अयमर्थः—पूयमसौ मत्पुत्र एवेदं चारेण मत्तमातङ्गा इत्यादिद्वयं वैधव्यं कृतवान् ।
सप्रति वधूतक्त वारसमूहमेव वहति, नतु किमपि कर्तुं क्षम इत्यर्थः ॥

ग्रामणीभार्या शत्रु विजित्य सङ्ग्रामादागतस्य शत्रुभित्तस्य भर्तृभक्तितो मानस-
निधवणाभरणमावाहमाना तन्निवारणाय परिजनमाह—

विब्बहाइहणालाव पत्ती मा कुणउ ग्रामणी ससइ ।

पथजिविओ जइ कह वि सुणइ ता जीविअ मुजइ ॥ ३१ ॥

[विन्ध्यारोहणालाव पत्नी मा करोतु ग्रामणी अशितिः ।

प्रत्युज्जीवितो यदि कथमपि शृणोति तज्जीवितं सुधति ॥]

पत्नीनिवर्जितो भयादि-ध्यारोहणकथां मा करोतु । अस्मिन्नोचति कुतो भयमिति

१ 'तथा' घ. २ 'तथा' ग पुस्तकं नास्ति ३ 'बाहकुड्मेषु' ग ४ 'व्याधकु-
ड्मेषु' ग ५ 'विलङ्घितो' ग ६ 'विनिपाती' घ. ७ 'विलङ्घितो' ग, वि-
तो घ. ८ 'काण्डक' घ. ९ 'वधा' घ.

भाव । श्रुतिरिति जीवति । प्रत्युज्जीवितः प्रत्यागतप्राणो यदि शृणोति तदा पक्षीनिवासि-
जनपलायनश्रवणत्रातमानमज्ञो जीवितमेव जज्ञादित्यर्थः ॥

यो यस्य क्षिप्रं च क्षियमाणोऽपि तस्य हितमेवोपदिशतीति निदर्शयन् कोऽपि सह-
चरमाह—

अप्याहेह मरन्तो पुत्तं पक्षीवई पअत्तेण ।

मह णामेण जह तुमं ण लज्जेसे चह करेज्जासु ॥ ३२ ॥

[क्षिप्यति क्षियमाण पुत्र पक्षीपति प्रयत्नेन ।

मम नाम्ना यथा त्व न लज्जेसे तथा करिष्यमि ॥]

अप्याहेह शिक्षयति सदृशतीति वार्थः । य खलु निगुणो भवति सोऽमुकस्य पुत्रो-
ऽयमिति व्यपदिश्यते पूज्यते चेति नाम्नो कम्पाहेतुत्वम् । पुत्रबालु स्वपौत्रवेणैव दयातो
भवतीति भावः ॥

अनुकूले निधावमङ्गलान्यपि मङ्गलानि भवन्तीति निदर्शयन्कोऽपि सन्धानमाह—

अणुमरणपत्तिआए पञ्चागजजीविए पिअअमस्मि ।

वेहृध्वमण्डणं कुलबहूअ सोहृगगणं जाअम् ॥ ३३ ॥

[अनुमरणप्रस्विताया प्रत्यागतजीविते प्रियतमे ।

वैधव्यमण्डन कुलवध्या सौभाग्यक जातम् ॥]

दन्तचिह्न दृष्ट्वा परासीसङ्गच्छया पशुकल्पानां पामरीणामपीर्ष्या भवति निरपराधे
पक्षौ, किं पुनरस्या महाकुलीनाया शीलादायांस्थिगुणवपमाया सावराधे त्वयि । अत्र
पादयो पतित्वेना प्रसप्तयेत्यनुनयविमुख नावक प्रति दृष्ट्वाह—

महुमच्छिआह दट्टं दट्टूण मुहं पिअस्स सृणोठुम् ।

ईसाळुई पुलिन्दी रुक्खच्छाअं गभा अण्णम् ॥ ३४ ॥

[मधुमक्षिकया दट्ट दृष्ट्वा मुहं विर्येक्षोच्छूनोष्ठम् ।

ईर्ष्यालु पुलिन्दी वृक्षच्छाया गतान्याम् ॥]

पक्ष्या सह कृतकल्हा सा त्वत्प्रमागमाभिवाषिणी विष्ठतीति जारं प्रति दृष्ट्वा ह्यमु-
फिरिति कथित ॥

गिरिग्रामप्रक्षाल्येनासती जारं प्रति खच्छदामिसारस्पर्शमाह—

धण्णा वसन्ति णीसङ्कमोहणे वहलपत्तलवईम्मि ।

वाअन्दोलणओणविअवेणुगहणे गिरिग्गामे ॥ ३५ ॥

[धन्या वसन्ति नि शङ्कमोहने बहलपत्रलघुतौ ।

घातान्दोलनावनामितवेणुगहने गिरिप्रामे ॥]

निःशङ्क मोहन मुरत यन् ॥ । तथा बहलैवचतरे पत्रले पत्रबहुलैरर्षादुक्षैरिति वचनं यन् ॥

गिरिप्रामगमनाय नायकमुत्साहयती दूती वर्षागमनकृतं तेषां रामणीयकादिश-
यमाह—

पप्फुल्लवणकलम्बा णिद्धोमसिलाभला मुद्गमोरा ।

पसरन्तो ज्झरमुहला ओसाहन्ते गिरिगामा ॥ ३६ ॥

[प्रोत्फुल्लवणकदम्बा निर्घोतशिलातला मुदितमयूरा ।

पसरन्निर्झरमुखरा उत्साहयन्ति गिरिगामा ॥]

अत्र प्रथमविशेषणेन सभोगोरीयनविमानं, द्वितीयेन शयनस्थलम्, तृतीयेन संभो-
गानन्तरं विनोदसभारं, चतुर्थेन स्तनितमणितादिष्वनिनिह्वयश्च प्रतिपाद्यते ॥

मीरसायामपि रसोत्पादकत्वमन्यापदेशेन कथयन्ती दूती नायकस्य मुरतोपचारपा-
सुर्यं कामिनीजनानुरक्षणायमाह—

तद् परिमलिता गोत्रेण तेण हृत्थ वि जा ण ओल्लेइ ।

स थिअ थेणू एहिं पेच्छसु कुडदोहिणीं जाआ ॥ ३७ ॥

[तथा परिमलिता गोत्रेण तेन हस्तमपि यार्द्रयति ।

सैष धेनुरिदानीं प्रेक्ष्य कुटदोहिनी जाता ॥]

तथा तेन प्रकारेण स्तनपृष्ठादिपरामर्शेन, पक्षे परिहृतादिविभ्यासेन । पुनो घट ।
घटपूर्णं दुग्धं ददातीत्यर्थः । पक्षे बहुतरं स्तरणल क्षरतीत्यर्थः ॥

कापि कस्यापि जीभाग्यातिशयमन्यापदेशेनाह—

धवलो जिअइ तुह कए धवलस्स कए जिअन्ति गिद्धीओ ।

जिअ तम्ये अम्ह वि जीविण्ण गोठु तुमाअत्तम् ॥ ३८ ॥

[धवलो जीरति तत्र कृते धवलस्य कृते जीरति गृष्टय ।

जीव हे गौ अस्माकमपि जीरितेन गोष्ठं त्वदायत्तम् ॥]

तस्यां गौ, धवलो घृष्टगृष्टः । 'धवला मयि । वृष्टगृष्टे पुमान्' इति मेदिनीकोषः ।
गृष्टिरेकवारप्रयुक्ता गौ । 'अथ गृष्टिं सकृत्प्रयुक्तमपि' इति मेदिनीकोषः ॥

१. 'वने' ग घ. २. 'घाता' दोलनचन्द्रेशु' ग. ३. 'उभगाहन्त', ग ४. 'पसरन्तो
क्षर' घ. ५. 'गृष्टय' ग.

यो यस्य प्रियस्तस्य तदवयवानुकारिणि प्रीतिर्भवतीति निदर्शयन्कोऽपि ।
माह—

अगधाइ छिवइ चुम्बइ ठेवइ हिअअम्मि जणिअरोमञ्चो ।

जाआकवोलसरिसं पेच्छइ पहिओ महुअउप्फम् ॥ ३९ ॥

[आजिघ्रति स्पृशति जुम्नति स्थापयति हृदये जनित्रोमाश्वः ।

आयाकपोलसदृशं पश्यत पथिको मधूकपुष्पम् ॥]

मातेस्तरवविचारणक्षमो भवतीति दर्शयन्कोऽपि मध्याह्नवर्णनमाह—

उअ ओसिज्जइ मोहं मुअंगकित्तीअ कडअलग्गाइ ।

ओग्गरधारासद्मालुएण सीसं वणगएण ॥ ४० ॥

[पश्योर्द्राकियते मोघं मुजंगकृत्तौ कटकलमायाम् ।

निर्झरधारासद्मालुकेन शीघ्रं वनगजेन ॥]

‘अपिज्जइ’ इति पाठे अप्येत इत्यर्थः । मोघं निरर्थकम् । कृत्तौ कण्ठके । क-
नार्थात्प्रवृत्तातपततेन । आरस्थान्यमनस्कतासंपादनार्थं मध्याह्नाभिगारिकाया उचि-
पूर्वतायिकां विहाय गुणान्तरलोभेन नायिकान्तरगाभिर्न नायक काव्यन्य-
थेनाह—

कमलं मुअन्त महुअर पिक्कइत्त्याण गन्धलोहेण ।

आलेक्खलहुअं पामरो व्व छिविऊण जागिहिसि ॥ ४१ ॥

[कमलं मुच्यन्मधुकर एककपित्थानां गन्धलोभेन ।

आलेख्यलङ्घकं पामर इव स्पृष्टा शासति ॥]

यथा क्षणमिहः पामरश्चित्रस्थं मोदकादिक्मालोक्यन्मोदमानः करस्थं भक्ष्यमा-
ह्विष्यत्या गतः स्पृष्ट्वा तत्स्वरूपमवधार्य क्षिप्रते, एवं त्वमरि नीरसवर्कशस्पर्श-
स्पृष्ट गन्धेनाकृष्टचेताः कमलं मुच्यन्स्पर्शेनसमनन्तरमेतयोन्तरं शास्यतीति भावः
काव्यातत्प्रविवाहाया सखीजनं स्मरिहासमाह—

गिज्जन्ते मङ्गलगाइआहिं वरगोत्तदिण्णअण्णाए ।

सोउं व जिग्गओ उअह होन्तवहुआइ रोमञ्चो ॥ ४२ ॥

[गीयमाने मङ्गलगोयिकाभिर्वरगोत्रदत्तकर्णयाः ।

ओतुमिव निर्गतेः पश्यत सविष्यद्गंधूकाया रोमाश्च ॥]

गोत्रं नाम ॥

आयसविवाहा व्यभिचारशीला काचित्पुष्पितं संकेतवेतसनिकुञ्जमालोक्योत्प्रेक्षते—

मण्णे 'आअण्णन्ता आसण्णविआहमङ्गलुग्गाइम् ।

तेहिं जुआणेहिं समं हसन्ति मं वेअसकुड्ढा ॥ ४३ ॥

[मैन्ये आकर्णयन्त आसन्नविआहमङ्गलोद्गीतम् ।

तैर्युवभिः समं हसन्ति मां वेतसनिकुञ्जाः ॥]

यैः समं पूर्वं सुरतसौहृदमनुभूतं तैः सममित्यर्थः ॥

अनुजनप्रीतये काचिदचिरवृत्तविवाहयोर्दैन्योरन्योन्यानुरागमाह—

अअगअअउत्थिमङ्गलहोन्तविओअसविसेसलग्गेहिं ।

तीअ वरस्स अ सेअंसुणहिं रुण्णं च हत्थेहिं ॥ ४४ ॥

[तैपगतचतुर्थीमङ्गलमविप्यद्वियोगमविशेषलघाम्याम् ।

तस्मा वरस्य च स्वेदायुमी ददितमिव हस्ताभ्याम् ॥]

उपगते चतुर्थीमङ्गले वियोगो मविध्यतीति मयेन सविशेष लघाम्यामित्यर्थः । चतुर्थी

कृत्वा जामाता स्वग्रह गच्छतीति शोकव्यवहारः ॥

नववधूस्तंगमस्यालौकिकचमरकारिणं प्रतिपादयन्त्येवमिह चरमाह—

ण अ दिट्ठिं णेइ मुहं ण अ छिवित्तं देह णालरइ किं पि ।

तह बि हु किं पि रहस्सं णववट्ठसप्पो पिओ होइ ॥ ४५ ॥

[न च दृष्टिं नयति मुहं न च स्पर्शं ददाति नालपति निषति ।

तथापि खलु विमपि रहस्यं नववधूस्तंगः प्रियो भवति ॥]

अत्र प्रियस्वहेतुमन्तरेणापि प्रियत्वमिति विभावनासंस्कारः । 'मियाया. प्रतिरेपेअरी
फलव्यक्तिविभावना' इति तद्वक्ष्यमाणम् ॥

बालाया बाम्भेन उपरितं वरं प्रगादयितुं कापि नववधूः सभावमाह—

अलिअपमुत्तवलन्तम्मि णववरे णववट्ठअ येवन्तो ।

संवेद्धिओरुसंजमिअवप्पगण्ठि मओ हाथो ॥ ४६ ॥

[अलीरप्रमुगवट्ठमानं नववधूः नववधूः वेगमानः ।

संवेष्टितोरुगं यविनवपुष्पं च गतो हस्तः ॥]

अलीरप्रमुगवट्ठमानो वणमानश्च स्वपादने गतीत्यर्थः । संवेष्टितोऽप्यन्येनैव संवेष्टितो

१. 'चेअसि' म. ग. २. 'जामा' म. ३. 'जाम' म. ४. 'जाम' म. ५. 'जाम' म. ६. 'जाम' म. ७. 'जाम' म. ८. 'जाम' म. ९. 'जाम' म. १०. 'जाम' म.

भ्यामूह्या सयमितस्य वधस्य प्रन्वि नववध्या द्रुतो गत इति सुबन्ध । समाव एवार्थं
बालानाम् । ननु कोपेनेति भावः ॥

नववधूविद्यमभयानमिद्रेण कान्तेन कोपिताया वस्याधिदवस्थां कापि सखीमाह—
पुच्छिजन्ती ण भणइ गहिआ पप्फुरइ चुम्बिआ रुअइ ।
तुङ्गिका णववहुआ वआवराहेण चवउढा ॥ ४७ ॥

[पुच्छपमाना न भणति गृहीता प्रस्फुरति चुम्बिता रोदिति ।
मूलीका नववधू कृतापरधेनोपगृह्णा ॥]

समलभावेऽपि नववधूर्धलादुपभोक्तव्येति नायक प्रति इत्या उक्तिर्षा ॥
पुन पुन वस्यचित्तया कुर्वती वामपुपद्वसती कापि मातृभगिनीमाह—
तत्तो चिअ होन्ति कहा विअसन्ति तहिं तहिं समप्पन्ति ।
किं मण्णे माउच्छा एक्कजुआणो इमो गामो ॥ ४८ ॥

[तेत एव भवति कथा विकसन्ति तत्र तत्र समाप्यन्ते ।
किं मन्ये मातृपुत्रस एकयुवकोऽय माम् ॥]

किमन्यो युवा नास्ति येन तत्कथैव मुखरो लोक इत्याशयः ॥
विरहोत्पिष्टता वाचिद्वल्लभवचनस्य वचनातरादिसेपमनुभवसिद्ध प्रदर्शयति—
जाणि वजरणाणि अम्हे वि जम्पिओ साइं जम्पइ जणो वि ।
ताइ चिअ तेण पजम्पिआइ हिअअ सुहारेन्ति ॥ ४९ ॥
[यानि वचनानि वयमपि जल्पामस्तौनि जल्पति जनोऽपि ।
तान्येव तेन प्रजल्पितानि हृदय सुखयन्ति ॥]

जारसगमायोसाहयन्ती इती पत्न्या सह कृतकल्हा नायिकामाह—
सव्वाअरेण भग्गइ पिअ जण जइ सुहेण वो कज्जम् ।
ज जरस हिअअदइअ चं ण सुइ ज तहिं णत्थि ॥ ५० ॥
[सर्वदारेण मूर्धन्यध्व प्रिय जन यदि सुखेन व कार्यम् ।
यवस्य हृदयदयित तन्न सुख र्यत्तत्र नास्ति ॥]

तथा च यत्रानुराग स एव नायक सुखहेतुरिति भावः ॥

१ 'तत्रैव निगच्छति' ग. २ 'तत्रैव तत्रैव ग, 'तस्मिन्तस्मिन्तमर्प्यते' घ.
३ 'वयं जल्पामहे' ग ४ 'तान्येव' ग ५ 'सुखापयति' घ ६ 'यस्यादारेण ज
ल्पत' घ. ७ 'मार्गयत' ग ८ 'यत्र तत्र' ग, 'यत्तस्मिन्' घ

तथैवापरगायामाह—यद्वा प्रसाधन विनैव कान्तदर्शनायागता दुहितरं प्रति कुप्यन्तीं
सय कथिदाह—

दीप्तन्तो दिदृमुओ चिन्तिज्जन्तो मणवहो अत्ता ।

उल्लावन्तो मुइसुहो पियो जणो णिच्चरमणिज्जो ॥ ५१ ॥

[दृश्यमानो दृष्टिमुखश्चिन्त्यमानो मनोबलम श्रेश्ठ ।

उल्लाप्यमान धुतिमुख प्रियो जनो नित्यरमणीय ॥]

उल्लाप्यमान कीर्त्तमान । नित्यसि । तयाचाळ प्रसाधनायासेनति भाव ॥

क्षीणघनत्वात्पूर्वं निष्कासित पुनरुपार्जितवनो दुहितृस्नेहमुपदर्शय त्या दृष्ट्यानुनीय
मानो भुवग सोपाक्रमप्रसारायानमात्मनिन्दाव्यापेनाह—

ठाणव्भट्टा परिगलिअपीणआ उण्णईअ परिचत्ता ।

अम्हे उण ठेरपओहर व्व उअरे चिअ णिसण्णा ॥ ५२ ॥

[स्थानन्नष्टा परिगलितपीनत्वा उन्नत्या परित्यक्ता ।

वय पुन स्वविरापर्योधरा इवोदर एव निषण्णा ॥]

धनवत् एष युष्माकमनुरूपा । वय तु हारितधनत्वादुदरभरणमात्रव्यापृता । तकि
मन्याभिर्युष्माक प्रयोजनमिति भाव ॥

खण्डिता कानि सूर्यनमस्कारच्छलेन वा तमुपाकभवे—

पखूसागअ रजितदेह पिआलोअ लोअणाणन्द ।

अण्णत्तखविअसव्वरि णहभूसण दिणवइ णमो दे ॥ ५३ ॥

[प्रत्यूषागत रजितदेह प्रियालोक लोचनानन्द ।

अन्यत्रक्षपितशरीरक नमोभूषण दिनपते नमस्ते ॥]

प्रत्यूषे प्रभाते आगतो द्वीपात्तरात्, पक्ष महिगात्तरात् । रक्त आरक्त, पक्षे
उदुरक्त । अन्यमहिलायामिष्यर्थात् । देहो यस्य स । तथा प्रिय आलोको यस्य स ।
पक्षे प्रियालोकस्य महिलाजनस्य शौचवान दो वस्त्रात् । अन्यत्र द्वीपात्तरे, पक्षे अ
न्यस्मार्थे क्षपिता शर्वरी येन । नभसो मूषण, पक्ष परस्त्रीदत्तनसम्भूषण । दिनपते नमस्ते ।
भास्वानिव द्वादेवाभिव दनीयस्त न स्वमिमम्ब इत्यर्थ । अत्र सूर्यनायकयोदयमानोर
नेयभावो व्यङ्ग्य ॥

किं गर्भवती भवती इति प्रियेण पृष्टा कचिदाह—

विवरीअसुरअलेह्ल पुच्छसि मह कीस गभसभून्म् ।

ओअत्ते कुम्भमुहे जल्लवकणिआ वि किं ठाइ ॥ ५४ ॥

[विपरीतसुरतलम्पट पृच्छति भग्न विमिति गर्भसमूतिम् ।

अपहृते कुम्भमुने जललवणिकापि किं तिष्ठति ॥]

अपहृतेऽधोमुखीकृते ॥

यामातां स्वाजन्यमप्यपत्न्यतीति निदर्शयन्विदाह—

अध्यासण्यविवाहे समं जसोमाह तरुणगोवीहि ।

यद्वन्ते महुमहणे संचन्धा निद्रुबिज्वन्ति ॥ ५५ ॥

[अत्यासक्तविवाहे समं यशोदया तरुणगोपीभि ।

वर्धमाने मधुमधने सवन्धा निद्रुयन्ते ॥]

यशोदया सम ये सवन्धास्ते निद्रुयन्त इत्यन्वयः ॥

अनुरूपनायकालाभेन निर्वेणा कापि सोपारम्भ विधिमाह—

ज ज आलिङ्ग्य मणो आसावट्टीहिं हिअअफन्अम्मि ।

त त वालो व्व विही गिहुअ हसिऊण पम्हुसइ ॥ ५६ ॥

[यद्यदालिङ्गति मन आसावर्तिकाभिर्हृदयफलके ।

तत्तद्गोल इव विधिर्निभूत हसित्वा शोभ्यते ॥]

राष्ट्रिस्ता कान्धन्वापदेशेन कान्त सचमत्कारमाह—

अणुहुत्तो करफसो सजलअलापुण्ण पुण्णविअहम्मि ।

वीआसङ्गकिसङ्गअ एहिं तुह वन्दिमो चळणे ॥ ५७ ॥

[अनुभूत करस्पर्श सकलकलापूर्ण पूर्णदिवसे ।

द्वितीयासङ्गवृक्षाङ्ग इदानीं तव धन्द्वामहे चरणौ ॥]

कत निरणा, पक्षे कते हस्त । एतत्कलाभि योदशकलाभि पूर्ण, पक्षे अनु
पष्टिकलामि पूर्ण । पूर्णदिवसे पूर्णयादिवसे, पक्षे पुष्पदिवसे । द्वितीया तिथि, पक्षे
द्वितीया श्री । तस्या सङ्गेन वृक्षाङ्ग । 'द्वितीया सहपार्श्विणी' इत्यमर । अत्र समासो-
पल्लवकारेण चन्द्रकातवीर्यमानोपमेयभावो व्यङ्ग्यः ॥

विरहोत्कण्ठिता हृत्तीमाह—

दूरन्तरिए वि पिए कह वि जिअत्ताई मज्झ णअणाई ।

हिअअ उण तेण सम अज्ज वि अणिवारिअ ममह ॥ ५८ ॥

१ 'हृत्प' ग. २ 'अज्ज' ग. ३ 'आसावर्तिकाभि' ग. ४ 'आसावर्तिकाभि' ग.

४ 'पालक इव' ग. ५ 'श्रुपति' घ.

[दूरान्तरितेऽपि प्रिये कथमपि निर्वर्तिते मम जयने ।

हृदयं पुनस्तेन सममघाप्यनिवारितं भ्रमति ॥]

मानं कर्तुमसमर्थो नायिका प्रति दूती सप्रणयकोपमाह—

तस्स कहाकण्टइए सहाअण्णणसमोसरिअकोवे ।

समुहालोअणकैम्पिरि उवऊढा किं पेवज्जिहिसि ॥ ५९ ॥

[तस्य कथाकण्टकिते शैब्दाकर्णनसमपसृतकोपे ।

समुहालोवनकम्पनशीले उपगूढा किं प्रपंरससे ॥]

संवासमयसूचनव्याजेन दूती काचिदभिसारेका एवरयितुमाह—

भरणमिअणीलसाहग्गखलिअर्चलणद्विहुअवक्खण्डडा ।

तरुसिहरेसु विहंगा कह कह वि लहन्ति संठाणम् ॥ ६० ॥

[भरणमितनीलशाखाप्रखलितचरणार्धविधुतपक्षपुटा ।

तरुशिखरेषु विहगा कथं कथमपि लभन्ते सखानम् ॥]

नीलेलनेनार्द्रतया क्षिप्यत्वम् । तस्य पदस्यनने हेतुरिति सूचितम् ॥

अद्यतीं प्रशसता केनापि समता काचिदसती समाह—

अहरमहुपाणघारिह्मिआइ जं च रमिओ सि सविसेसप् ।

असइ अलज्जिदि बहुसिक्खिरि त्ति मा णाह मण्णुहिसि ॥ ६१ ॥

[अधरमधुपानलात्सया यच्च रमितोऽस्ति सविशेषम् ।

असती अलज्जाशीला बहुशिक्षितेति मा नाथ मस्या ॥]

असतीरक्षणस्य दुःशकतामसती पतिं धावयन्ती काचिदाह—

खाणेण अ पाणेण अ तह गहिओ मण्डलो अडअणाए ।

जह जारं अहिणन्दइ मुक्कइ घरसामिए एन्ते ॥ ६२ ॥

[खादनेन च पानेन च तथा गृहीतो मण्डलोऽसौत्या ।

यथा जारंभेयिनन्दति मुक्कति गृहस्तामिन्वेति ॥]

गृहीतो बशीकृतः । मण्डलं कुक्कुरः । 'मण्डलं परिधौ कुष्ठे देशे द्वादशराजसु । स्त्री-

- १ 'निरुतेऽस्माकं' ग. 'निरुतानि मम जयनानि' घ. २. 'वहति' ग. ३. 'वेवरि' ग. ४. 'विलिज्जिहिसि' ग. ५. 'शब्दायमाने' ग. ६. 'वेपिते' ग. 'वेपनशीले' घ. ७. 'विलायिष्यसि' ग. ८. 'चलणम्' ग. ९. 'चरणम्' ग. १०. 'भक्षणम्' ग. ११. 'स्त्रीणां' घ. १२. 'अभिनन्दयति शब्दायति सामिन्यागच्छमाने' ग.

वेऽथ निवहे विम्वे त्रिषु पुसि तु कुङ्कुरे ॥' इति मेदिनीशेषः । भुङ्क्ते शब्दायवे । एति आगच्छति । सतिसप्तमी ॥

नायिकान्तरानुरक्तजामातृदर्शनेन सदुहितरमनुसोचन्ती व्याधश्चू दृष्टा का विदाह—

कण्डन्तेण अकण्डं पल्लीमज्झमि विजडकोअण्डम् ।

पइमरणाहिं वि अहिअं चाहेण रआविआ अत्ता ॥ ६३ ॥

[कण्डूयता अकण्डे पल्लीमध्ये विकटकोदण्डम् ।

पतिमरणादप्यधिक व्याधेन रोदिता श्वधू ॥]

कण्डूयता तक्षणेन सूक्ष्म कुर्वता ॥

किमेति रोदिषीति सरया पृष्टा काविदाह—

अन्हे उज्जुअसीला पिओ वि पिमसहि विआरपरिओसो ।

ण हु अण्णा का वि गई चाहोहा कह पुसिअन्तु ॥ ६४ ॥

[अथ उज्जुकशीला प्रियोऽपि प्रियसखि विहारपरितोष ।

न खल्वन्या कापि गतिर्नाप्नोषा कथ प्रोच्छ्रयताम् ॥]

विकारेषु हावभावानिषु परितोषो यस्य स । हावभावशमिहामिनामिकाभिरपहतह-
दयोऽयम् । मया तु किमपि न हन्यत इत्यतो ह्यत इति भावः ॥

अनुरक्तायामपि मयि नानुरक्तोऽसीति कापि नायक सोषालम्भमाह—

धवलो सि जह वि सुन्दर यह वि तुण मज्झ रज्जिअं हिअअम् ।

राअभरिए वि हिअए सुहअ णिहिस्सो ण रत्तो सि ॥ ६५ ॥

[धवलोऽसि यद्यपि सुन्दर तथापि त्वया मम रज्जित हृदयम् ।

रागभ्रंतेऽपि हृदये मुमग निहितो न रक्तोऽसि ॥]

धवल शुभ्र श्रेष्ठ । रागो लीहिसमनुसगद्य ॥

उज्ज्वलकुङ्कुमादिपरिमलसमुज्ज्वलनेपथ्या गुणहोषा कामव्यनुवर्तमान कामिजनमुपह-
सन्ती काविदाह—

चञ्चुपुहाहअविअलिअसहआररसेण सिचदेहस्स ।

कीरस्स मंगलग मन्धन्धं ममइ मसरउलम् ॥ ६६ ॥

१. 'दर्पता च कट' ग. २. 'वाण्येण रुदिता' घ. ३. 'माता' ग. ४. 'उज्ज्वल-
शीला' ग. ५. 'विकारक्षयी' ग, 'विहारपरितोष' घ. ६. 'प्रसार्यते' घ. ७. 'भ-
रिते' घ.

[चमुपुटाहतविगैलितसहकाररसेन सिक्तदेहस्य ।

कीरस्य मार्गलस्य गन्धान्ध भ्रमति भ्रमरकुलम् ॥]

जातानुरागा वृद्धिणी विदितभिप्रायं प्रवासिजनमाह—

एत्थ णिमज्झइ अत्ता एत्थ अह एत्थ परिअणो सअलो ।

पैनियअ रत्तीअन्धअ मा मह सअणे णिमज्झिहिसि ॥ ६७ ॥

[अत्र निर्भोजति श्वश्रुराहमनं परिजनं सकलं ।

पथिकं रात्र्यन्ध[क]ं मा मम शयने निर्भोजयामि ॥]

नियजति स्वपिति ॥

विरहानलस्य दुःसाहस्य प्रतिपादयन्ती विरहिणी वदति—

परिओससुन्दराइ मुरएसु लहन्ति जाहँ सोकराइ ।

ताहँ छिअ उण विरहे सौअग्गिण्णाहँ कीरन्ति ॥ ६८ ॥

[परितोषसुन्दराणि सुरतेषु लभन्ते यानि सौरयानि ।

तान्येव पुनर्विरहे सौन्दितोद्गीर्णानि कुर्वन्ति ॥]

लभन्ते । कामिन्य इति शेषः । तान्येवेति । तथा च नेमानि विरहदुःखानि किं
पूर्वं भुज्जानि सुखान्येवोद्गीर्णानि । एतद्वेषेण परिणतानीत्यपहृत्यकारो व्यास्य ॥

कीडपि साभिलाष कस्यापि पीनोन्नतपयोधराया हारं वर्णयति—

मग्गं चिअ अलहन्तो हारो पीणुण्णआणँ थणआणम् ।

उब्बिअगो भमह उरे जमुणाणइपेणपुसो क्व ॥ ६९ ॥

[मार्गमिश्रालभमानो हारं पीनोन्नतयो स्तनयो ।

उद्भिन्नो भ्रमरयुग्मि यमुनानदीकेर्नृपुण इव ॥]

अत्र यमुनाकेनसादृश्येन स्तनमुत्तरवामना न्वन्यत । तथा च शरवाधानम्, तेन
चानुपभोग्यतेति स्वममूदनीयम् ॥

रात्रसेनिधौ विद्यता तेन मम मिश्रेण किं उपादितमिति केनापि शृष्टं वदिद्व्याप-
देशोनाह—

एपेण वि वड्डीअङ्गुरेण सअलणराइमज्झम्मि ।

ताह तेण कओ अप्पा जह सेसदुमा तले वस्स ॥ ७० ॥

१. 'प्रकटित' ग. २. 'वक्षिण' घ. ३. 'हे परिअ रत्तिअ-धम' ग. ४. 'निरीदति
श्वश्रुराहं पिपीदामि' ग. ५. 'निरीदयति' ग. 'निनानो भू' घ. ६. 'मरिगिण-
णानि' ग. ७. 'मरितोद्गीर्णानि कीरन्ते' ग. 'उपमन्निभानि कीरन्ते' घ. ८. 'एव'
ग घ. ९. 'पीनोन्नतानां स्तनानां' ग घ. १०. 'पुपुष' घ.

[एकेनापि वटवीनाङ्कुरेण सकलवनराजिमध्ये ।

तथा तेन कृत आत्मा यथा शेषद्रुमास्तले तस्य ॥]

एकाकिनापि तेन सकलविपक्षमध्ये तथोत्कर्षं संपादितो यथा तत्प्रभावेण सर्वऽपि
विपक्षास्तिरस्त्वता इति भावः । मूदेनापि तरुणा उत्कर्षाय चेतित त्व पुनर्महावशमभव-
यथ न यतसे इति निरवयोग कवित्प्रयुपदेशो व्यङ्ग्य इति कथित ॥

गुणिन प्रायो दग्निरा भवन्तीति प्रतिपादयन्कविहारीश्वरं सर्वोच्चाह—

जे जे गुणिणो जे जे अ चाइणो जे विट्ठुविण्णाणा ।

दारिद्र रे विअकरण ताण तुम साणुराओ सि ॥ ७१ ॥

[ये ये गुणिनो ये ये च त्यागिनो ये विदग्धविज्ञाना ।

दारिद्र्य रे विचक्षण तेषा त्व साणुरागमसि ॥]

कोऽपि साभिलाष कस्यापि मुखचन्द्र वर्णयति—

जइ कोत्तिओ सि सुन्दर सहलतिहीचन्दसणसुहाणम् ।

ता मसिण मोइजन्तफनुअ पेक्खसु मुह से ॥ ७२ ॥

[यदि कौतुकिकोऽसि सुन्दर सकलतिथिचन्द्रदर्शनमुखानाम् ।

तन्मैसुण मोन्यमानकक्षुक प्रेक्षस्त मुख तैसा ॥]

सखाय प्रति सरयुरुक्ति । दूता वा नायक प्रत्युक्ति ॥

ग्रीष्मालयेऽपि नायकस्यानामने समाधासयन्तीं सखीं प्रति सशूरमुक्ता नायिके
दमाह—

समविसमणिठिवसेसा समन्तओ मन्दमन्दसचारा ।

अइरा होदिन्ति पहा मणोरहाण पि दुल्लहा ॥ ७३ ॥

[समविषमनिर्विशेषा समन्ततो मन्दमन्दसचारा ।

अचिराद्भविविध्यन्ति पन्थानो मनोरथानामपि दुर्लभा ॥]

अथवा रुकेतस्थलान्तराभावेन मार्गासनकुशादौ दत्तचंकेतां कर्षां विना जनसंचारेण
तत्स्थलं सप्रति न संकेतयोग्यमिति बोधयन्ती कविदिदमाह ॥

१ 'विट्ठ' स्त २ 'अयाचका ये ये विट्ठसधद्रावा' घ. ३ 'कौतुकोऽसि' ग
४ 'मणोरहाण' ग ५ 'असा' ग ६ 'अइहीहा होन्ति' ग ७ 'अतिदीर्घा
भवन्तीव' ग.

पराकुपे दत्तसचेताया पुत्रवध्वाक्षत्र गत्वा श्रियं समुज्य परादृतौ तत्पत्रादिसन्धेन
स्फुटेऽपराधे तामुग्रहस्तत्त्वा श्रुत्वा प्रति बन्दिमुत्थेन (२) वधूनिदमाह—

अद्दीहराँ वहुए सीसे दीसन्ति वसवत्ताई ।

भणिप भगामि अत्ता तुम्हाणं वि पण्डुरा पुढी ॥ ७४ ॥

[अतिदीर्घाणि वध्वा शीघ्रं दृश्यन्ते वरापत्राणि ।

भणिते भगामि शैत्र युष्माकमपि पण्डुरं पृष्ठम् ॥]

अत्ता इति शत्रूस्सजोषने देशी । पृष्ठपदस्य स्त्रीलिङ्गत्वमनुशासनात् ॥

मानवत्त्वा नायिकाया विरक्षा सेति विरज्यन्त नायक बोधयती शूनीदमाह—

अत्यक्लृप्तस्य रत्नपसिञ्जण अलिम्वभणणिन्नन्धो ।

उन्मच्छरसंतापो पुत्तअ पअवी सिणेहरस ॥ ७५ ॥

[आवक्षिकरोपकरणं क्षणप्रसादनमलीकवचननिर्वन्ध ।

उन्मत्सरस्यताप पुनक पदवी जेहस ॥]

अत्यक्तेति आवक्षिके अद्भुते वा देशी । उन्मत्सरेति बहुले । 'उन्मूर्छनं प्रतिकूल-
वाचा प्रकोपनम्' इति प्राचीनटीका । तथा च जेहवहुलतया त्वयि सा नानाविधान्मा-
नमार्गानाचरताति न सद्भिरक्षिसमावनापीति यथापूर्वं त्वया तस्या व्यवहर्तव्यमिति
दूष्ता उक्तिः ॥

अनसमर्द्धं जातदशना वटाक्षादिमविक्षिपन्तीं नायिकामनुरक्तेतिसदिहान नायक
प्रोत्साहयन्ती सखी दूती चेदमाह—

पिज्जह कण्णअलिहिं जणरवमिलिअ वि तुज्ज सलावम् ।

दुद्ध जलसमिलिअं सा बाला राजहसि व्व ॥ ७६ ॥

[पिबति कर्णाक्षलिभिर्नरवमिलितमपि तव सलापम् ।

दुग्धं जलसमिलितं सा बाला राजहंसीन ॥]

अत्र पिबतीति कर्त्रर्थे पीयत इति कर्मप्रलयः । प्रादृते निर्वचनमन्त्रमिलाद्यनु-
शासनात् । अथ वा सा बाला राजहंसी वेति प्रथमा तथा राजहस्येवेति तृतीयार्थे ।
तथा च पीयत इति यथाश्रुतमेव व्याख्येयम् । तथा च कोलाहलप्रविष्टस्यापि भवद्-
चसो वैताल्य प्रेमातिसयेन युमुत्सया शृङ्गीत्वा त्वदुक्तशब्दार्थं मभिरुटे वर्णयामासेति
त्वयि सात्त्वन्तमनुरक्तेति यथापूर्वं ज्ञेयो विषेय इति सङ्गुक्तिः ॥

प्रियगुणविशेषादूर्त्ता प्रति पृच्छन्ती नायिका प्रति काचित्सखी वदति—

अइ उज्जुए ण लज्जसि पुच्छिज्जन्ती पिअस्स चरिआइ ।

सद्यद्गमसुरहिणो मरुवअस्स किं कुसुमरिद्धीहिं ॥ ७७ ॥

[अयि ऋजुके न लज्जसे पृच्छन्ती प्रियस्य चरितानि ।

सर्माङ्गसुरभेर्मरुवस किं कुसुमर्द्धिभि ॥]

‘विण्डीतको मरुव’ प्रस्थपुण्य ‘पणिज्जक’ इत्यमरः । तथा च सहजसौ गुणगणालङ्कृतस्य किं गुणान्तरं पृच्छतीति भावः ॥

स्वाभाविकलौहित्यवन्तौ वरौ धातुरागेण रक्षाविति विभ्रमेण वारं वारं प्रश्नं मुग्धा निवारयन्ती इत्याह—

मुग्धे अपत्तिअन्ती पवाअअङ्कुरअवण्णलोहिअए ।

णिद्धोअघाउराए कीस महत्थे पुणो धुअसि ॥ ७८ ॥

[मुग्धेऽप्येत्ययं ती प्रचालाङ्कुरवर्णलोहिता ।

निधौतधातुरागौ किमिति स्वहस्तौ पुनर्चावयसि ॥]

अप्रत्ययन्ती प्रत्यय विश्वासमकुर्वाणा । चावयसि प्रक्षालयसि । नायिकामुग्धस्तयो साहजिकरागवत्त्व तटस्थ नायक प्रति ख्यापयन्त्या दूत्या सटया वा उर्ध्वपार्श्वगमनेन दुःखिता नायिका शरत्कालोपगमनेन च शीघ्रमायास्यतीति समाश्रयसौन्दर्याह—

उअ सिन्धवपव्वअसन्छहाई धुअतूलपुअसरिसाइ ।

सोहंन्ति सुअणु मुक्कोअआई सरए सिअम्भाइ ॥ ७९ ॥

[पश्य सिन्धुपर्पतसदृशानि ध्रुवतूलपुञ्जसदृशानि ।

शोभन्ते सुतनु मुक्कोदकानि शरदि मिताभ्राणि ॥]

‘सुअण’ इति पाठे सुखनेति पान्थसमुद्धिः । वर्षाकालोपगमनेन पद्मा यान्ताभ्राणामुपगमनेन द्रव्यादिनमर्जनीय गृहे न स्वयमेत्यादि भङ्गा कथिताहेति १६ ॥

सर्वेनस्थानकुञ्जाना महिषसानिध्वेन दुरासदत्वात्सिन्धुत नायकं शिष्यन्ती यिका प्रोक्ताहुयन्ती कानिदाह—

आउच्छन्ति सिरेहिं विवलिणहिं उअ संहिणहिं णिज्जन्ता ।

णिप्पच्छिमवलिअपलोइएहिं महिसा कुडङ्गाइ ॥ ८० ॥

१. ‘अतिऋजुके’ ग. घ. २. ‘अप्रतियन्ती’ घ. ३. ‘किम्पलोहिता’ घ. ४. ‘इति व’ ग. ५. ‘धौततूलराशिगमानानि’ ग. ६. ‘पुण्यन्तीव मुक्को’ ग. ७. ‘एहिं’ ग.

[आपृच्छन्ति शिरोभिर्विलितैः पश्य [खड्गिकैः] नीयमानाः ।

निःपश्चिमवलिप्रलोकितैर्महिषाः कुञ्जान् ॥]

महिषापगमेन कुञ्जा इदानीं निराधरसंकेतस्थानतामुपगताः । पशवोऽपि महिषा
भीमादौ यत्र स्थित्वा छायामुपलभ्य सुखमासादितवन्तस्तत्परित्यागे तेषामपि दुःखं
भवति परानृत्य पुनस्तत्पश्यन्तीति सदयमाना (सहृदयाना) सुखसन्निधानस्थलमवश्यं वि-
श्लोकनीयमत्याज्यं चेति भावः । निःपश्चिमानि चरन्माणि यानि वलितानि परावर्तनानि
प्रलोकितानि च तैः ॥

निजदारिद्रेणाधु विमुञ्चन्तीं नायिकां समाश्रासयन्ती दूत्याह—

पुसउ मुहं ता पुत्ति अ वाहोअरणं विसेसरमणिज्जम् ।

मा एअं चिअ मुहमण्डणं ति सो काहिइ पुणो वि ॥ ८१ ॥

[प्रोच्छस्य मुखं तैत्पुन्रि च (पुन्रिके) बाष्पोपरारणं विशेषरमणीयम् ।

आ इदमेव मुखमण्डनमिति करिष्यसि पुनरपि ॥]

मण्डनाभावेन त्वमधु विमुञ्चसि किन्तु सहजसौन्दर्यशालिन्यास्तव अश्रु एव मण्डनं
भवतीति किं मण्डनान्तरेण । अथवा वरिद्रेयं मण्डनमिच्छतीति धनिनो मण्डनादिदानेन
सुखसाध्येति तदस्थ प्रति दूत्या उक्तिः ॥

पश्चि कर्दमबाहुत्येन त्वद्गृहे कवमाण्तव्यमिति शिशुसु नायकं नायिका वा बोध-
यन्ती काचिदाह—

मञ्जे पअणुअपङ्कं अवहोवासेसु साणचिक्खिरहम् ।

गामस्स सीससीमन्तअं च रच्छामुहं जाअम् ॥ ८२ ॥

[मध्ये प्रतनु[क]पङ्कमुर्मयोः पार्श्वयोः श्यानकर्दमम् ।

ग्रामस्य शीर्षसीमन्तमिव रक्ष्यामुखं जातम् ॥]

प्रतनु स्वरपं कं जलं यस्मिन्नेतादशः पङ्को यत्र तादृशम् । तथा च रक्ष्योभयपार्श्वयोः
श्यानकर्दमत्वम् । दिवः निरीक्षितेन पथा रात्रावागन्तव्यमिति काचिद्वोधयति ॥

काचन नायिका पितृगृहे स्थिता कचिदासक्ता । तद्वर्तरे समागते व्याकुलचित्तं
नायकं समादधती दूत्याह—

अवरह्मागअजामाउअस्स विउणेइ मोहणुकण्ठम् ।

बहुआइ घरपलोहरमज्जणपिसुणो वलअसहो ॥ ८३ ॥

१. 'खड्गिकैः' ग. २. 'निजपश्चिम' ग. ३. 'तावत्सुन्दरि बाष्पाचरणपरिशेष' ग,
'तावत्पुन्रक बाष्पावतरण' घ. ४. 'मातस्त्वैव' घ. ५. 'उभयपार्श्वयोः सरस' घ.
६. 'सीमन्तकमिव' घ.

[अपराह्णागतजामातुर्द्विगुणयति मोहनोत्कण्ठम् ।

वध्या गृहपश्चाद्भागमज्जनपिशुनो वलयशब्दः ॥]

मोहनं सुरतम् । मज्जनं शयनमद्वयसंमार्जनं वा । तस्य पिशुनः सूचकः । अपराह्णागते
स्वनेन दिनसत्त्वे जामाता श्वशुरारित्यादिध्वेन यथागृहे न गमिष्यति । सा ॥ दिनशे
एव तत्र स्वपिति त्वया तत्र गन्तव्यं तत्र सा मुलभेति भावः ॥

कृतकर्मण आरभ्यदीर्घनेनेव परे पलायन्ते तत्र भीरवस्तु सुतरां पलायन्त इ
भीरता न कर्तव्येति कथितकचिद्वोधयति—

जुञ्ज्वलेदामोडिअजजरकण्णस्स जुण्णमहस्स ।

कच्छावन्धो चिअ भीरुमहद्दयं समुत्तरणइ ॥ ८४ ॥

[युद्धचपेटामोटितजर्जरकर्णस जीर्णमहस्य ।

कक्षावन्ध एव भीरुमहद्दयं समुत्तरयति ॥]

पूर्वं सत्पतिरतिशूरः समर्थश्च स्थितः । सप्रति वार्धकेन क्षीणशक्तिरिति यथापूर्वं तद्वै
धारणमात्रेण तन्मात्रं भूतव्यम् । क्षीणशक्तिर्येन तस्या एव स न रोचते । सर्वत्रां
धारणमर्थं त्वयि सा जेहमापरिष्यतीति भोदतामपहाय तस्या तया प्रवर्तितव्यमि
भावः ॥

काचन पट्टमुन्दरी ह्यातगुणवती च प्रियापमानितायि न लज्जिता दीर्माग्यस्य
चिरकालानवस्थाविरागेन हर्षितेव तां योषयन्ती सत्याह—

आणत्तं सेण तुमं पइणो पइएण पट्टहसरेण ।

महि ण उज्जसि णससि दोहग्गे पाअडिज्जन्ते ॥ ८५ ॥

[आइतं तेन त्वां पत्या प्रहतेन पट्टहस्येन ।

महि न उज्जसे नृत्यसि दीर्माग्ये प्रकटीक्रियमाने ॥]

पत्या भर्त्रा पट्टहस्येन डिङ्डीरवेण यदीर्माग्यमाहतं तेन ॥ लज्जिता न भवति, नृत्य-
हस्येवेति क्षमापयति स्वमति । अथवा व-युर्विरागायि नृत्यधीत्यनेन परमगुन्दरीयं व्यधीन्द-
येगन्विता मुदताद्येति तटस्थं कामुकं प्रति प्रलोभनोक्तिरुदाः ॥

सलस्य वात्साधुर्यमात्रेण विधातो न विधेय इति कथिराह—

मा वण्ह वीसम्भं इमाणं यहुचाडुक्कम्मजिउण्णाम् ।

जिज्वत्तिअकज्जपरम्मुहाणं मुण्णआणं च सलामम् ॥ ८६ ॥

१. 'भीरुमहानां हृदयं समुत्तरयति' ग. 'पलायमानानामहृदयं समुत्तरयति' घ.
२. 'आणन्दीअ तुमं' ग. ३. 'आनन्दयन्ती त्वं पशुः' ग-घ. ४. 'प्रकटावन्ते' ग.

[मा व्रजत विसम्भमेषा बहुचाटुकर्मनिपुणानाम् ।
निर्वर्तितकार्यपराङ्मुखाणां शुनकानामिव खलानाम् ॥]

सल्लभाबोक्तिरियम् ॥

ग्रामान्तरं गच्छन्तीमसतीमनु व्याजेन सह प्रस्थितान्वहून्कासुबान्दृष्ट्वा कापि परि-
सपूर्वमिदमाह—

अण्णगामपउत्था कडुन्ती मण्डलाणँ रिञ्छोलिम् ।

अकरण्डिअसोहग्गा वरिससअं जिअउ मे सुणिआ ॥ ८७ ॥

[अन्यग्रामप्रस्थिता कैरप्यन्ती मण्डलाना पङ्क्तिम् ।

अखण्डितसौभाग्या वर्षशतं जीनतु मे शुनी ॥]

मण्डला कुटुरा १ रिञ्छोलीति पङ्क्ता देशी ॥

काचन देवरेऽनासत्ता, तेन च प्रियवाक्यशते प्रलोभ्य बलीकृता । ततश्च कु-
तश्चिन्मिताद्विरज्यति तस्मिन्नुपास्यभूमिदमाह—

सचं साहसु देअर तह तह चडुआरण सुणएण ।

जिअवत्तिअकजपरम्मुहत्तणं सिक्खिअं कत्तो ॥ ८८ ॥

[सत्यं वक्ष्य देवर तथा तथा चाटुकारेण शुनकेन ।

निर्वर्तितकार्यपराङ्मुखतः शिक्षितं वंसात् ॥]

तथा च स्वत एवेदं तेन शिक्षितमिति मत्पराङ्मुखत्वं सर्वथा हेयमिति भावः ॥

तस्या एहेऽनादिसमृद्ध्या रात्री च तत्पतिर्गन्धर्वलीलनेन सप्ततिसान्निध्येन चन्द्रि-
शोभिचेन च रात्रेरप्य सा न मुखसाध्येति कावित्वविद्वोधयति—

णिप्पण्णसरसरिद्धी सच्छन्दं गाइ पामरो सरए ।

दलिअणवसालितण्डुलधवलमिअङ्गामु राईमु ॥ ८९ ॥

[निष्पन्नमसरुद्धि स्वच्छन्दं गायति पामरः शरदि ।

दलितनवशान्तिण्डुलधवलवृगाङ्गानि रात्रिषु ॥]

शरत्काले शालीनां पार्श्वे इन्द्रिका सगृहे विवृति, तदपार्श्वे तदपार्श्वे सय देवराशौ
पृथगीति इतिवधू, शरत्कालानिद्रिकाले मूलमेति रुद्धि रुद्धिद्वोधयतीति वा ॥

१. 'इमान्—सालान्' ग. २. 'इदन्ती' ग घ. ३. 'अवतु मण्डलिका' ग.

४. 'शुना' ग घ. ५. 'कुत.' ग घ.

वर्षाकाले पूर्ववत्सरीयकलमगोपीपदाङ्कितक्षेत्रवर्षणं दृष्ट्वा कथित्पान्य आह—

अलिहिज्जइ पट्टअले हलालिचैलणेण कलमगोवीए ।

केआरसोअरैम्भणतंसट्टिअ कोमलो चलणो ॥ ९० ॥

[अलिख्यते पट्टतले हलालिचलनेन कलमगोप्याः ।

केदारस्रोतोर्वोषतिर्यक् (व्यंश) स्थित कोमलशरणः ॥]

द्वितीयपाठे 'अभिलष्यते पट्टजलुब्धालिचलनेन' ॥

अथेन भागत्रयेण स्थितः । असंपूर्ण इति यावत् । यदा पूर्ववत्सरे क्षेत्रमध्यस्थितजलस्य शोष आरब्धस्तदा कलमगोप्याः शालिपात्रेण सचेतस्य लाभावबोधेन दुःखोपशये संपूर्णशरणो न पट्टमध्ये प्रतिविम्बितः । स च वर्षान्तरे वर्षणावसरे दृष्टः । तेनाक्षेत्रे कलमोत्पत्तिमारभ्य तत्पारपर्यन्तं कलमगोपी पान्यादिसुलभा स्यात्सतीति तत्प्राप्त्याशा पान्यो निवेदयति स्मरति वा पूर्वानुभूतमपमिति भावः ॥

दिअहे दिअहे सूसइ सकेअअभङ्गवट्ठिआसट्टा ।

आवण्डुरोणअमुही कलमेण समं कलमगोवी ॥ ९१ ॥

[दिवसे दिवसे शुष्यति संकेतकभङ्गवर्धिताशङ्का ।

आवाण्डुराननतमुखी कलमेन समं कलमगोपी ॥]

यथा यथा कलमक्षेत्रमावाण्डुर भवति, तथा तथा कलमगोपी सचेतस्यलापगमनिन्तदावनतमुखी भवतीति कलमक्षेत्रकाले मुखसाध्येति तदस्थ प्रति कस्याधिदुक्तिः ॥

णवर्कम्पिण्ण हंअपामरेण दट्टूण पैउहारीओ ।

मोक्तब्बे जोत्तैअपग्गहम्मि अबहासिणी मुक्का ॥ ९२ ॥

[नवर्कम्पितेन हतपामरेण दृष्ट्वा पैउदपङ्की ।

मोक्तुं वै एतावद्वसित्वा व्याक्रोशिनी मुक्ता ॥] (२)

विचार्यमेतत् ॥

१. 'अलिहिज्जइ' ग. २. 'वलण्ण' ग. ३. 'हन्धण' ग. ४. 'अभिलष्यते' ग. 'अभिलीयते' घ. ५. 'पट्टजलुब्धालिचलनेन' ग घ. ६. 'स्रोतोन्तरोधनतिर्यक्' ग. 'स्रोतोरोधनतिर्यक्' घ. ७. 'स्थितकोमलौ चरणौ' ग. ८. 'कम्मिण्ण' ख. ९. 'उअ' ग. १०. 'पाणिहारीओ' ग. ११. 'नेविअपग्ग' ग. १२. 'कर्मणा पश्य' ग. 'कर्मिणेण हत' घ. १३. 'पानीयमच्छहारिकाम्' ग. 'अच्छादाहारी' घ. १४. 'मोक्तव्येन मुक्ता' ग. 'मोक्तव्ये योक्तृकप्रग्रहेऽवकाशिनी' घ.

[धन्या बधिरा अन्धास्त एव जीवन्ति मानुषे लोके ।

न शृण्वन्ति पिशुनवचन खलानामृद्धिं न प्रेक्षन्ते ॥]

असह्यनां कस्याचिदासक्तः बधिरुत्तम एव सद्यः कार्यमाणः सामूखं त
दति—

एहिं वारेइ जेगो तइआ मूइछओ व्व गओ ।

जाहे विसं व जाअं सव्वङ्गपहोलिरं पेम्म ॥ ९६ ॥

[इदानीं वारयति अनसूदा मूलकः कुनापि वा गतः (आसीत्) ।

यदा विपमित्र जातं सर्वाङ्गघूर्णित प्रेम ॥]

कस्याचित्सखी सद्यः अनुरागातिशयं नागकमिषये सूचयन्ती नायकाग्रे कथयति—

कह तं पि तुइ ण णाअं जह सा आसन्दिआणें बहुआणम् ।

काऊण उच्चवचिअं तुइ वंसणछेइत्ता पडिआ ॥ ९७ ॥

[कथ तदपि त्वया न ज्ञातं यथा सा आसन्दिकानां बहूनाम् ।

कुर्या उच्चावचिका तव दर्शनलालसा पतिता ॥]

रात्रिरोषे कुट्टः शब्दं करोतीति कुट्टानां स्वाभाविक रूपम् । तच्छ्रुत्वा तस्य
भजनमुत्प्रेक्ष्य पिशुनोति कथित—

चोराणें कामुआणें अ पामरपदिआणें कुकुडो वअइ ।

रे रमह बहइ वाइयह एत्थ तणुआअण रअणी ॥ ९८ ॥

[चोरान्कामुकांश्च पामरपयिकाश्च कुकुटो वदति ।

रे रमत बहइ वाइयत अत्र तन्वी भवति रजनी ॥]

यथायोगमन्वयः, न तु यथासंख्यम् ॥

कयोश्चिन्नायिक्योरन्योन्यं कतहं कृतकतो कटाद्यान्तरेण निरीक्षणं कुर्वतोऽन्यत्र
नन्योन्यं कटाद्ययोः संनिपाते सम प्रदक्षितयोर्धेयितमेका परयाः कथयति—

अण्णोण्णकइस्सन्तरपेसिअमेटीणविट्ठिपसराणम् ।

दो, चिअ मण्णे कअभण्णजाइँ समअं पइसिआइँ ॥ ९९ ॥

[अन्योन्यकटाद्यान्तरेपिनिलितदक्षिणस्यै ।

द्वावपि मन्वे कृतकतद्वै समक प्रदक्षितौ ॥]

मण्डनशब्दः कतहविशेषे कर्तते ॥

७ शतकम्]

गाथासप्तशती ।

२०७

अथ समाप्ता हरनमस्काररूपं मङ्गलमाचरति—

संज्ञागहिजलजललिपट्टिमासंकन्तगोरिसुहकमलम् ।

अलिभं चिअ फुरिओठुं विअलिअमन्वं हरं णमह ॥ १०० ॥

[सध्यागृहीतजलाञ्जलिप्रतिमासङ्क्रान्तगौरीमुखकमलम् ।

अलीकमेव स्फुरितोष्ठं विगलितमेघं हरं नमत ॥]

हरस्यापि गौरीमुखकमलप्रतिबिम्बं दृष्ट्वा सध्यारूपनित्यकर्माहमन्त्रलोपो भवति, किं नरस्मदादेलोकस्य प्रियासानिध्ये व्याकुलचित्ततेति सर्वथा लीसङ्गः परिहरणीय इति ज्ञातव्यार्थः ॥

इअ सिरिहालविरइए पाउअकव्वम्मि सत्तसए ।

सत्तमसअं समत्तं गाहाणें सहावरमणिज्जम् ॥

[इति श्रीहालविरचिते प्राकृतकाव्ये सप्तशते ।

सप्तमशतं समाप्तं गाथानां स्वभावमणीयम् ॥]^३

हाल इति राज्ञः शालिवाहनस्य सङ्क्रान्तरम् । गाथेति च्छन्दः । इतिशब्दो प्रत्यय-
रिसमाप्ता ॥

इति गङ्गाधरभट्टविरचिता प्राकृतगाथासप्तशतीटीका समाप्ता ।